॥ महामुनि व्यास ॥

कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी

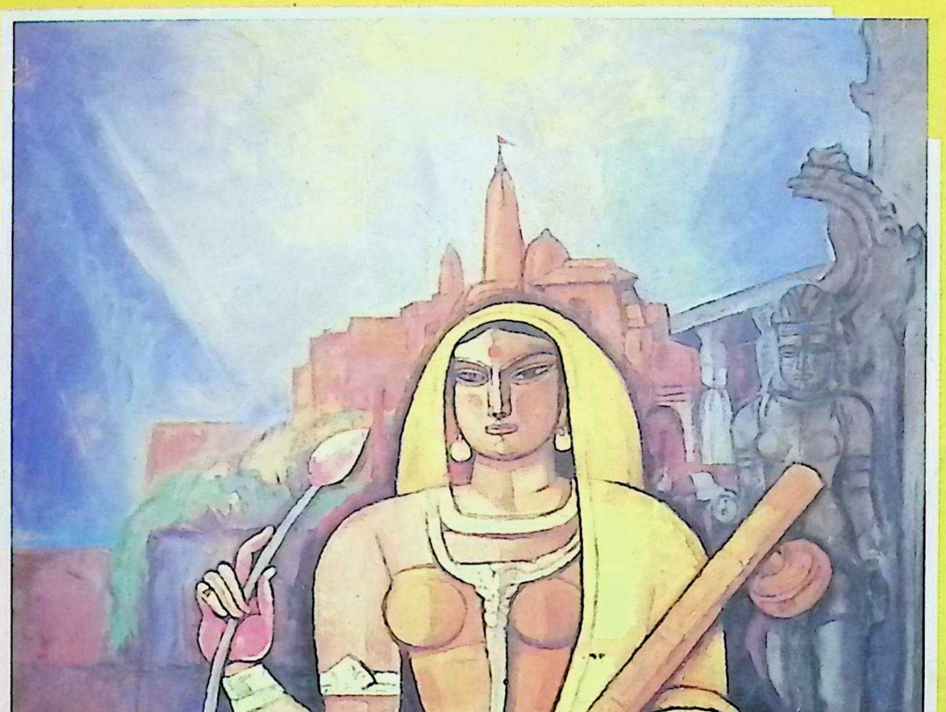

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कृष्णावतार-6

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

महामुनि व्यास

कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी

गुजराती के सुप्रसिद्ध कथाकार, इतिहास और संस्कृति के मर्मज्ञ तथा प्राच्य विद्या के बहुश्रुत विद्वान।

जन्म : 30 दिसम्बर, 1887, भड़ौंच (गुजरात)।

शिक्षा : बी.ए., एल-एल.बी., डी.लिट्., एल-एल.डी.।

प्रारम्भ (1915) में 'यंग इंडिया' के संयुक्त सम्पादक, सन् 1938 से आजीवन भारतीय विद्या भवन के अध्यक्ष और 'भवन्स जर्नल' के सम्पादक। सन् 1937-57 के दौरान दस वर्षों तक गुजराती साहित्य परिषद की अध्यक्षता की। सन् 1944 में हिंदी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष। सन् 1951 से मृत्युपर्यंत वह संस्कृत विश्व परिषद के भी अध्यक्ष रहे। सन् 1952 से 1957 तक उत्तर प्रदेश के राज्यपाल का पद-भार सँभाला। उसी दौरान सन् 1957 में उन्होंने भारतीय इतिहास कांग्रेस की अध्यक्षता की।

प्रमुख प्रकाशित कृतियाँ : लोमहर्षिणी, लोपामुद्रा, जय सोमनाथ, भगवान परशुराम, तपस्विनी, पृथ्वीवल्लभ, भग्नपादुका, पाटण का प्रभुत्व, कृष्णावतार के सात खंड—बंसी की धुन, रुक्मिणी हरण, पाँच पाण्डव, महाबली भीम, सत्यभामा, महामुनि व्यास, युधिष्ठिर (उपन्यास); वाह रे मैं वाह (नाटक); आधे रास्ते, सीधी चढ़ान, स्वप्नसिद्धि की खोज में (आत्मकथा के तीन खंड)।

देहावसान : 8 फरवरी, 1971

आवरण-चित्र : बिजन चौधुरी

जन्म : सन् 1931। बिजन चौधुरी के चित्र संगीत और रंगों का मेल हैं जो सदा प्रसन्नता और सुन्दरता का अनुभव कराते हैं। भारत और विदेशों में अनेक एकल एवं सामूहिक प्रदर्शनियों का आयोजन। चैनल 4 ने आपके ऊपर फिल्म भी बनाई है। आपकी चित्र-कृतियाँ विश्व-भर के सम्मानित कला संग्रहालयों में सुरक्षित हैं। अकादमी ऑफ फाइन आर्ट्स एवं रवीन्द्र भारती आदि की ओर से सम्मानित बिजन चौधुरी कला और शिक्षा की विभिन्न संस्थाओं व संगठनों से सम्बद्ध रहे हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी

कृष्णावतार-6

महामुनि व्यास

अनुवादक
शिवरतन थानवी

राजकमल पेपरबैक्स

आ. सुबोध

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पहला-पुस्तकालय संस्करण
राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड द्वारा
1983 में प्रकाशित

© भारतीय विद्या भवन, मुम्बई

राजकमल पेपरबैक्स में
पहला संस्करण : 1986
बारहवाँ संस्करण : 2015

© भारतीय विद्या भवन, मुम्बई

राजकमल पेपरबैक्स : उत्कृष्ट साहित्य के जनसुलभ संस्करण

राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.
1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज
नई दिल्ली-110 002
द्वारा प्रकाशित

शाखाएँ : अशोक राजपथ, साइंस कॉलेज के सामने, पटना-800 006
पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-211 001
36 ए, शेक्सपियर सरणी, कोलकाता-700 017

वेबसाइट : www.rajkamalprakashan.com
ई-मेल : info@rajkamalprakashan.com

बी.के. ऑफसेट
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110 032
द्वारा मुद्रित

मूल्य : ₹ 200

आवरण-चित्र : बिजन चौधुरी

MAHAMUNI VYAS
Novel by K.M. Munshi

ISBN : 978-81-7178-111-9

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्राक्कथन

भागवत ने जिसे 'भगवान स्वयं' कहा है और जिसने भगवद्गीता का हमें सन्देश दिया है उस श्रीकृष्ण भगवान का नाम किसने नहीं सुना होगा?

बचपन के दिनों का जहाँ तक मुझे स्मरण है तब से श्रीकृष्ण मेरी कल्पना की दुनिया में छाए रहे हैं। छोटा था तब मैं इनके पराक्रम की बातें सुन-सुनकर चकित हो जाया करता था। तभी से मैं इनके विषय में लिखे गए काव्य और कथा ग्रन्थ पढ़ता रहा हूँ, इनकी लीला के पद गाता आ रहा हूँ और स्वयं भी इनका गुणगान करता आ रहा हूँ। अनेक मन्दिरों में मैंने इनकी पूजा की है, प्रत्येक जन्माष्टमी को अपने घर के आँगन में इन्हें मैंने स्वयं अर्घ्य दिया है। दिन-प्रतिदिन, वर्ष-प्रतिवर्ष, इनका सन्देश मेरे जीवन की प्रबल शक्ति बनता चला गया है।

इनके आकर्षक व्यक्तित्व की झाँकी मूल महाभारत में उपलब्ध है, लेकिन दुर्भाग्य से उस पर तीन हजार वर्षों की दन्तकथाओं, चमत्कारों और भक्तिभाव से प्रेरित स्तुतियों की गर्द चढ़ गई है।

श्रीकृष्ण बुद्धिमान और बलवान थे, स्नेह करते थे और स्नेह पाते थे; उनकी जीवनचर्या अद्भुत थी–दूरदर्शी थे लेकिन समसामयिक को समर्पित थे; सन्त की तरह निःस्पृह थे पर पूरी तरह से मनुष्य का उल्लास भी उनमें था; एक कूटनीतिज्ञ, सन्त और कर्मयोगी मनुष्य के गुणों से परिपूर्ण उनका व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली था कि वह दैवी दीप्ति से युक्त लगता था।

इनके जीवन और पराक्रम की कथा नए सिरे से रचने की इच्छा मुझे कई बार होती रही है। बहुत असम्भव था यह काम, लेकिन भारत के असंख्य साहित्यकार सदियों से जैसा करते आए हैं वैसे ही मैं भी, मेरे पास जो कुछ रचनात्मक सृजनशक्ति और कल्पना है उसकी नन्ही-सी अंजलि उन्हें अर्पित किए बिना नहीं रह सका।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इस पूरी ग्रन्थमाला को मैंने 'कृष्णावतार' नाम दिया है। कंस वध के साथ समाप्त होनेवाले इनके जीवन के प्रथम खंड को मैंने 'बंसी की धुन' नाम दिया है क्योंकि कृष्ण का पूरा बचपन बाँसुरी से जुड़ा था। इस बाँसुरी ने पशु-पक्षियों और मनुष्यों को समान रूप से सम्मोहित किया है। असंख्य कवियों ने इसकी मोहक मधुरिमा को गाया है।

दूसरा खंड 'रुक्मिणी हरण' के साथ पूरा होता है। उसे मैंने 'सम्राट का प्रकोप' शीर्षक दिया है। उसमें मगध के सम्राट जरासन्ध के प्रति श्रीकृष्ण के सफल विरोध की घटना को प्रमुख रूप से चित्रित किया गया है।

तीसरे खंड को मैंने 'पाँच पांडव' शीर्षक दिया है। वह द्रौपदी स्वयंवर के साथ पूरा होता है।

चौथा खंड है 'भीम की कथा'—वह युधिष्ठिर के वचन-पालन के साथ पूरा होता है और उसमें श्रीकृष्ण की सलाह पर भीम व अन्य पांडव खांडवप्रस्थ की ओर प्रयाण करते हैं।

पाँचवाँ खंड है 'सत्यभामा की कथा'—वह सत्यभामा व श्रीकृष्ण के विवाह के साथ पूरा होता है। इसमें मैंने विविध पुराणों में वर्णित हुई स्यमन्तक मणि की घटना का वर्णन किया है। यह घटना श्रीकृष्ण के जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध रखती है। मैंने इसे प्रतीक रूप में लिया है।

प्रस्तुत छठे खंड में 'महामुनि व्यास की कथा' है और सातवें खंड में 'युधिष्ठिर की कथा' होगी।

मेरी इच्छा है कि मैं इस पूरी कथा को वहाँ तक ले लूँ जहाँ तक कुरुक्षेत्र के रणक्षेत्र में 'शाश्वत धर्मगोप्ता' श्रीकृष्ण अर्जुन को विश्वरूप का दर्शन कराते हैं। इस आठवें खंड का शीर्षक रहेगा 'कुरुक्षेत्र की कथा'।

'पुरन्दर पराजय' नाटक में मैंने च्यवन और सुकन्या का चित्रण किया था; 'अविभक्त आत्मा' में मैंने वसिष्ठ और अरुन्धती को चित्रित किया था; अगस्त्य, लोपामुद्रा, वसिष्ठ, विश्वामित्र, परशुराम और सहस्रार्जुन को 'लोपामुद्रा' के चार भागों में, 'लोमहर्षिणी' में और 'भगवान परशुराम' में प्रस्तुत किया था; और अब श्रीकृष्ण तथा महाभारत के अन्य पात्रों को 'कृष्णावतार' के इन खंडों में रूपायित कर रहा हूँ। इनमें से कोई भी कृति प्राचीन पुराणों का अनुवाद नहीं है, यह मैं कई बार स्पष्ट कर चुका हूँ।

श्रीकृष्ण भगवान के जीवन और पराक्रम का चित्रण करते वक्त, अपने कई पूर्वजों की भाँति, उनके व्यक्तित्व, आचरण तथा दृष्टिकोण को सुसंगत बनाने के लिए मैंने कई घटनाओं का पुनर्निर्माण कर लिया है, महाभारत में वर्णित कई अल्पज्ञात चरित्रों को पुनः मूर्तिमान करने का प्रयत्न किया है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इस प्रयत्न में कई बार 'महाभारत' के पुराने परम्परित प्रसंगों को मैंने नए अर्थ में प्रस्तुत किया है। आधुनिक रचनाकार जब प्राचीन जीवन का निरूपण करता है तो उसे कल्पना का आश्रय लेना ही पड़ता है।

मुझे विश्वास है कि मैंने जो छूट ली है उसके लिए भगवान श्रीकृष्ण मुझे क्षमा करेंगे लेकिन मुझे श्रीकृष्ण को उसी रूप में अभिव्यक्त करना चाहिए जिस रूप में मैंने उन्हें अपनी कल्पना की दृष्टि से देखा है।

'कृष्णावतार' ग्रन्थमाला के प्रत्येक खंड को स्वतन्त्र कथा की तरह भी पढ़ा जा सकता है।

—कन्हैयालाल मुंशी

भारतीय विद्या भवन
चौपाटी रोड, बम्बई-7
जनवरी 25, 1971

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भूमिका

'कृष्णावतार' का 'महामुनि व्यास की कथा' नामक यह खंड पूरी ग्रन्थमाला की प्रस्तावना के समान है।

महाकाव्य और पुराणों में वर्णित कृष्ण के जीवन को फिर से जोड़-जोड़कर देखने की जब मैं कोशिश कर रहा था तब मुझे लगा कि महर्षि वेदव्यास के जीवन में श्रीकृष्ण के जीवन और उपलब्धियों की प्रस्तावना विद्यमान है।

महाभारत में द्वैपायन व्यास का थोड़ा उल्लेख है। उसके साठ वर्ष बाद वे एक महामुनि के रूप में, वेदों के रचयिता और धर्मावतार के रूप में प्रकट होते हैं। कुरुओं के बुजुर्ग लोग तथा पांडवगण उनकी सलाह लेते थे, यह उल्लेख मिलता है।

इन दो समय-खंडों के बीच बहुत कम सामग्री उपलब्ध है, इसलिए मुझे ही इस सारी कथा की रचना करनी पड़ी है।

भरतों के महायुद्ध के बाद भी व्यास जिन्दा रहे और कहते हैं कि मूल 'महाभारत' की रचना उन्होंने की थी, जिसमें बाद में कई क्षेपक जुड़ते गए और इससे यह जिस रूप को प्राप्त हुआ, आज वह हमारे सामने है।

पुराणों की रचना में भी व्यास का बड़ा योगदान है। कहते हैं कि अधिकांश पुराण व्यास मुनि द्वारा रचे हुए हैं। इन सभी में व्यास के जीवन की कई घटनाओं का उल्लेख आया है। कई जगह उल्लेख परस्पर विरोधी भी हैं। जो भी हो, कुल मिलाकर यह सही है कि अपने जीवनकाल में वे धर्म के महान निर्माता और भगवान वेदव्यास के नाम से प्रसिद्ध हो गए थे।

ये सब उल्लेख तो मिलते हैं लेकिन इस स्थिति तक वे किस तरह पहुँचे इसका उल्लेख कहीं नहीं मिलता।

श्रोत साहित्य में एक तरफ त्रयी विद्या—ऋक्, यजुर् और साम—तथा दूसरी

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तरफ अथर्वण-आंगिरस के बीच संघर्ष का वर्णन मिलता है।

त्रयीविद्या शाखा, अथर्वण शाखा को थोड़ा तिरस्कार की दृष्टि से देखती थी क्योंकि अथर्वण शाखा में यातुविद्या (जादू, कामण), चिकित्सा कार्य (भिषग कर्मणी) तथा राज-काज (राज कर्मणी) आदि का भी समावेश कर दिया था। यज्ञों में ब्रह्मा के आसन पर बैठने का अथर्वण ऋषि को अधिकार नहीं था।

इस सारे संघर्ष का अन्त अथर्वणों के पक्ष में हुआ। अथर्वण मन्त्रों को वेदों में स्थान मिला। अथर्वण ऋषियों को यज्ञों में ब्रह्मा का आसन मिलने लग गया। यज्ञों में उनके द्वारा अथर्वण मन्त्र बोलने पर प्रतिबन्ध फिर भी लगा रहा।

पुराणों में वेदव्यास की शिष्य-परम्परा भी दी गई है। वेदव्यास ने वेद की विविध शाखाओं को व्यवस्थित किया जिनके कारण श्रौत विधियों में अथर्वण मन्त्रों को स्थान मिला और अथर्वण शाखा का सुमन्तु वेदव्यास का प्रथम शिष्य बना।

वेदव्यास की दूसरी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि यह है कि 'शब्द' या 'श्रुति' को उन्होंने एक प्रामाणिक रूप दिया। पिछले तीन हजार वर्षों से उनके द्वारा की गई यह वेद-व्यवस्था आज तक अटूट चली आ रही है।

स्कन्द पुराण में जाबालि ऋषि की पुत्री और व्यास की पत्नी वाटिका का उनके पुत्र शुकदेव के साथ हुआ संवाद दिया गया है। वाटिका इस संवाद में शुकदेव को गृहस्थाश्रमी बनने के लिए समझाती है।

यों तो शुकदेव को बाल संन्यासी माना जाता है किन्तु हरिवंश तथा देवी भागवत सहित कई अन्य पुराणों में उन्हें विवाहित व सन्तानवान बताया गया है। देवी भागवत के अनुसार उनकी पत्नी का नाम पीवारी था और इनसे उन्हें चार पुत्र तथा एक पुत्री प्राप्त हुए थे।

शुकदेव ने पिता से प्रेरणा प्राप्त कर जो संन्यासियों की व्यवस्था और प्रणाली प्रारम्भ की थी वह करीब 30 शताब्दियों से आज तक सनातन धर्म की आधारशिला बनी हुई है। आदि शंकराचार्य ने इस प्रणाली का पुनर्निर्माण किया और इसे दशनामी सम्प्रदाय की संज्ञा प्रदान की।

वेदव्यास की प्रेरणा से स्थापित संन्यासियों की इस प्रथा ने सनातन धर्म को जीवित रखने में और भारत व अन्य देशों में इसकी आध्यात्मिक सुवास फैलाने में बहुत बड़ा योगदान दिया है।

आधुनिक युग में रामकृष्ण परमहंस, दयानन्द तथा विवेकानन्द जैसे जिन संन्यासियों ने सनातन धर्म की ज्योति जाग्रत रखी है, वे इसी परम्परा के हैं।

पूरे महाभारत में जब-जब भी कोई कठिनाई में पड़ा है उसे व्यासजी ने तीर्थ स्नान द्वारा शुद्धि करने की सलाह दी है। इससे लगता है कि भगवान वेदव्यास ने समूचे देश को संगठित करने के लिए ही इस 'तीर्थ भावना' का विकास किया

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

था। इस 'तीर्थ संस्कृति' के वे ही जनक थे। लेकिन, यदि नहीं थे तो भी तीर्थों की महिमा बढ़ाने में तो उनका बहुत बड़ा हाथ था।

वेदव्यास के जीवनकाल में ही चतुर्वर्णी समाज व्यवस्था—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—जन्म ले रही थी लेकिन तब यह वर्ण-व्यवस्था इतनी सख्त नहीं थी।

महान् ऋषि वसिष्ठ का जन्म एक अप्सरा की कोख से हुआ था। विश्वामित्र क्षत्रिय होते हुए भी ऋषि बन गए थे।

वेदव्यास स्वयं मछुआरे के पुत्र थे। श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव तथा कुन्ती का जन्म नागकन्याओं से हुआ था। ऐसे कई पूर्वजों ने नागकुल में विवाह किया था। भीम ने हिडिम्बा नाम की राक्षसी से विवाह किया था। अर्जुन की पत्नियाँ भी नाग-परिवार से थीं।

देश में आर्य संस्कृति का प्रसार हुआ, तब सभी लोगों ने सनातन धर्म स्वीकार कर लिया था और उन्हें सामाजिक प्रतिष्ठा भी प्राप्त हो गई थी।

धर्म की रक्षा करने में व्यास का व्यक्तित्व प्रचंड था। श्रीमद्भगवद् गीता में श्रीकृष्ण स्वयं को और व्यास को एक ही मानते हैं। पत्नी और पुत्र होने के बावजूद उन्हें वीतरागी माना गया है।

उन्हें चार की बजाय दो हाथवाला विष्णु, चार की बजाय एक मुखवाला ब्रह्मा और तीन की बजाय दो नेत्रवाला शिव माना जाता है। कुछ पुराण उन्हें विष्णु का अवतार मानते हैं।

—क. मुंशी

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रस्तावना

पश्चिमी तट पर अनूप देश में राजा महिष्मत राज करता था। वह जिद्दी और सिरफिरा था। अपनी राजधानी माहिष्मती में बैठा-बैठा वह पूरे प्रदेश में भय व त्रास का साम्राज्य फैलाता था। काले समुद्र के उस पार रहनेवाले पाताललोक के निवासी भी उसके नाममात्र से काँपते थे।

महिष्मत पर सत्ता का मद चढ़ा हुआ था। इस मद में चकनाचूर वह अपने पुरोहित ऋचीक ऋषि की सलाह भी नहीं सुनता था जो योद्धा ब्राह्मणों की एक जाति भृगु-वंश के थे।

महिष्मत के शासन में उसकी हैहय प्रजा आर्यों के लिए भगवान वरुण द्वारा नियत ऋत् के ब्राह्मांड नियम की भी अवहेलना करती थी।

अथर्वण विद्या का पंडित ऋचीक ऋषि हैहयों के, तथा उनके राजा महिष्मत के, भ्रष्टाचारों से त्रस्त हो गया था, इसलिए उसने महिष्मत तथा हैहयों को शाप दिया था और खुद अनूप देश छोड़कर चला गया था।

अपने शिष्यों, अनुयायियों, गायों और अभूतपूर्व शक्तिवाले घोड़ों के साथ वह उस आर्यावर्त (अविभाजित पंजाब) में जा पहुँचा था जहाँ संस्कारवान आर्य बसते थे।

आर्यावर्त में गंगा, सरस्वती और यमुना नदी के तटों पर बड़ी संख्या में आश्रम बने हुए थे। उनमें शिष्यों को जीवन के उत्तम आचरण सिखानेवाले नीति-गुणसम्पन्न ऋषि रहते थे। वे देवों के साथ देवों की भाषा में संवाद भी किया करते थे।

आर्यावर्त जाकर ऋचीक ने राजा गाधि की पुत्री सत्यवती के साथ ब्याह किया। सत्यवती से ऋषि को जमदग्नि नामक पुत्र हुआ। इस पुत्र ने विद्वत्ता एवं सरल सन्त स्वभाव की श्रेष्ठता के कारण सात महान ऋषियों—सप्तर्षियों में स्थान प्राप्त किया।

महिष्मत के बाद उसका पोता सहस्रार्जुन उसकी गद्दी पर बैठा। उसके प्रचंड

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

बाहुबल के कारण ही उसे 'सहस्र भुजाओंवाले अर्जुन' की संज्ञा दी गई थी। यह एक विरुद था, प्रशंसा में दिया गया एक नाम। वह आर्यावर्त आया और अपने पुरोहित के पुत्र जमदग्नि से अनूप देश वापस चलकर अपने पिता ऋचीक द्वारा महिष्मत व अनूप देश की प्रजा को दियां गया श्राप वापस समेट लेने की प्रार्थना की।

जब जमदग्नि ने वापस लौटने और पिता द्वारा दिया गया श्राप वापस लेने से इनकार कर दिया तो सहस्रार्जुन ने जमदग्नि के सबसे छोटे पुत्र राम का अपहरण कर लिया और उसे लेकर अनूप देश चला गया।

आर्यों की आचारसंहिता के अनुसार चलना सहस्रार्जुन के लिए सम्भव नहीं था। जब ऐसा करने के लिए उस पर दबाव पड़ा तो उसे इसमें अपना अपमान होता नजर आया। गुस्से में आकर उसने ऋषियों से बदला लेने की ठान ली।

परशु धारण करनेवाले राम नन्हे थे, फिर भी वीर और प्रतापी माने जाते थे। उन्होंने अर्जुन की सत्ता को चुनौती दे दी और जो हैहय अर्जुन से दुखी हो गए थे, उनका नेतृत्व स्वीकार कर उन्हें बड़ी संख्या में आर्यावर्त ले आए।

सहस्रार्जुन आर्यावर्त को नष्ट करने और ऋषियों के आश्रमों को जड़मूल से उखाड़ फेंकने के लिए अपने निर्दयी साथियों के साथ तूफान की तरह टूट पड़ा।

अर्जुन आर्यावर्त पर आक्रमण करने की तैयारियाँ कर रहा था, तब वसिष्ठ के पौत्र ऋषि पराशर आश्रम-आश्रम में गए और देश-देश के राजाओं से मिले। उन्होंने उनसे इकट्ठे होकर अर्जुन का मुकाबला करने के लिए कहा। लेकिन आर्यावर्त के राजा अपने को अजेय मानते थे। सोचते थे कि उनका कोई बालबाँका भी नहीं कर सकता। परिणाम यह हुआ कि पराशर ऋषि की एकता की प्रार्थना किसी ने नहीं सुनी।

अर्जुन पूरी ताकत के साथ पराशर के आश्रम पर टूट पड़ा। यमुना-किनारे बसे इस आश्रम में उसने आग लगा दी, इसमें रहनेवाले अन्तेवासियों का वध कर दिया, स्त्रियों पर बलात्कार किया, उत्तम पशुओं को बाँध ले गया और बाकी पशुओं को आहार बना लिया।

पराशर वापस अपने आश्रम लौटे तब मात्र भस्मीभूत आश्रम के अवशेष मिले और बची-खुची आग का धुआँ देखा।

पराशर ने अनुभव किया कि इस हमलावर के सामने जाकर उसमें छिपी मानवता को जगाना चाहिए। भयंकर गुस्सेवाले अहंकारी अर्जुन को उन्होंने वर्षों पहले अपने दादा के आश्रम में देखा था।

आज एक बार पुनः वे उसी अर्जुन का सामना करने को तैयार हुए। शक्तिशाली अश्वों द्वारा खींचे जा रहे रथ में वह आ रहा था। समूचा मार्ग रथ की

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

धूल से ढँक गया था! सहस्रार्जुन के रथ के पीछे करीब सौ वैसे ही रथ बराबरी में दौड़ते चले आ रहे थे। प्रचंड तूफान आ रहा हो, ऐसा दृश्य उपस्थित हो गया था।

अर्जुन का चेहरा भयानक था। उसकी आँखों में सत्ता का मद था।

पराशर आगे बढ़े। भगवान भरोसे छोड़ी गई सारी हिम्मत बटोरी, रास्ते के बीच खड़े हो गए और परस्पर रगड़ खाते हुए दौड़ते घोड़ों की लगाम पकड़ ली।

हाथों से पकड़कर अकेले ही दौड़ते रथ को रोक लेनेवाले इस मनुष्य को देखकर अर्जुन दंग रह गया। उसके साथियों ने तलवारें खींच लीं। ऋषि पराशर के चारों ओर चमकते हुए शस्त्रों का एक घेरा बन गया।

''मूरख, तू क्या कर रहा है, इसका तुझे भान है?'' अर्जुन ने पूछा, ''तू जानता है कि मैं कौन हूँ?''

ऋषि पराशर दृढ़ और अडिग खड़े थे। उन्होंने धीर-गम्भीर आवाज में कहा, ''मैं जानता हूँ कि आप हैहय नरेश, बलवान योद्धा हैं। आप वापस मुड़ जाइए। आप क्या कर रहे हैं इसका आपको भान नहीं है। आपके द्वारा गिराई जानेवाली आर्यों के रक्त की एक-एक बूँद में से आपका नाश करनेवाला एक-एक वीर पैदा होगा।''

इसके बाद वे अनुनयपूर्ण स्वर में बोले, ''हे हैहयराज, आप जगत के स्वामी हैं। आप किस कारण सर्वनाश का आग्रह कर रहे हैं? द्वेष से किसी का भला नहीं हुआ करता। आपका भी नहीं होगा। यह वह भयंकर अग्नि है जो सबसे पहले पैदा करनेवाले का ही भक्षण करती है। जरा रुको, सोचो और मैं जो कहता हूँ उस पर ध्यान दो, अपने देश वापस चले जाओ।''

अर्जुन ने तिरस्कार के साथ इन शब्दों को सुना। उसे लगा कि इस तरीके से उसके साथ बात करनेवाला आदमी तो पागल ही हो सकता है। उसने क्रूर हँसी के साथ ऋषि पर चाबुक चला दिया। दूसरे रथवाले ने ऋषि के पैरों पर प्रहार किया। ऋषि अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। उनके मुख से रक्तधारा फूट चली। अर्जुन और उसके साथियों ने अट्टहास किया।

गिरे हुए ऋषि की ओर देखे बिना आततायी आगे बढ़ा। रातभर वे गाँवों में डाके डालते रहे, आश्रम जलाते रहे और स्त्रियों का शील लूटते रहे।

एक बार कभी जहाँ उनका आश्रम था, उसके पास मार्ग के बीच में ऋषि पराशर अचेत पड़े हुए थे।

सूर्योदय होने के थोड़ी देर बाद, पराशर जहाँ मूर्च्छित पड़े थे उस किनारे पर एक मछुआरे की नाव आ निकली।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मछुआरा जरूथ जब-जब यमुना नदी में मछली पकड़ने के लिए निकलता था तब-तब वह पराशर ऋषि के आश्रम में जरूर आया करता था।

आश्रम को जब उसने जलता हुआ देखा तो पहले तो उसकी उधर आने की हिम्मत ही नहीं पड़ी। दूसरे दिन सवेरे जब आततायी वहाँ से चले गए तब जरूथ अपनी नाव में आया और अपने परिवारवालों के साथ किनारे पर उतरा। उनका हृदय अभी भी भय से काँप रहा था।

इन लोगों में जरूथ की पुत्री मत्स्या भी थी। एक अच्छे से वस्त्र से उसका कटिभाग और स्तन ढँका हुआ था। उसके हाथ-पैरों में चाँदी व शंख के गहने थे।

उसके समूचे शरीर पर लावण्य दमक रहा था। कुसुम-कली के जोड़े के समान उसके उरोज थे। वह साँवले रंग की थी और सूर्य के प्रकाश में जैसे चमकते ताँबे की बनी हो, ऐसी लगती थी। उसके मनोहर गालों पर सुख और आनन्द की लालिमा थी।

उसके पिता और चाचा-ताऊ जब भोजन पकाने के लिए आग तैयार कर रहे थे तब मत्स्या की इधर-उधर घूमती नजर मार्ग पर पड़े एक आदमी पर गई। वह दौड़कर वहाँ पहुँची।

पराशर अभी तक अचेत थे। मुख के कोने पर लहू चू रहा था।

मत्स्या डर गई। नीचे झुकी और यह जानने की कोशिश की कि वह कौन था। ऋषि पराशर को उसने पहचान लिया।

वह हमेशा पिता के साथ ऋषि के आश्रम में आया करती थी और उनको प्रणाम किया करती थी। ऋषि उसके सिर पर हाथ रखकर उसे आशीर्वाद दिया करते थे। ऋषि का चेहरा विनयपूर्ण था और उनकी आँखें करुणा से दीप्त रहती थीं।

ऐसे दयालु ऋषि को मत्स्या ने जब यों बेहोश पड़े देखा तो उसका दिल रो उठा। उसने ऋषि को आवाज दी पर कोई उत्तर नहीं मिला। किसी ने इनको मार दिया? जीवित हैं या मृत यह जानने के लिए उसने उनके हृदय पर कान रखकर सुनने की कोशिश की और फिर वह जोर-जोर से चिल्लाकर रोने लगी। उसका रुदन सुनकर उसकी माता चन्दोदरी दौड़ी हुई आई और पूछा, ''क्या बात है?''

''माता, पूज्य ऋषि मार डाले गए हैं!'' मत्स्या ने रोते-रोते कहा।

माता ने ऋषि की आँखों पर हाथ रखा। ऋषि ने आँखें खोलीं और तुरन्त बन्द कर लीं। 'ये जीवित हैं!' सचमुच जीवित हैं! चन्दोदरी बोल उठी।

उसकी पुकार सुनकर सभी मछुआरे मृत्यु के भय से भागे-भागे वहाँ आए और ऋषि को घेरकर खड़े हो गए।

जरूथ ने मत्स्या और चन्दोदरी से कहा, ''चलो, नाव में वापस चले जाओ। राक्षसों ने आश्रम जला डाला है। अब यहाँ मनुष्य नहीं, दैत्य ही बसेंगे। चलो,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हमें चले जाना चाहिए।''

मत्स्या बोली, ''पिताजी, हमारे ऋषि अन्तिम श्वास ले रहे हैं!''

जरूथ ने पराशर को पहचाना, ''अरे, ये तो हमारे ऋषि हैं!'' वह ऋषि के नजदीक गया। उसने कहा, ''जिन राक्षसों ने आश्रम जलाया है उन्होंने ही इन्हें मार डाला है।''

चन्दोदरी बोली, ''नहीं, ये अभी जीवित हैं। इन्हें हम साथ ले लें। शायद जी जाएँ।''

उन्होंने उठाकर पराशर को नाव में रखा, तब माँ-बेटी ने मिलकर उन्हें पानी पिलाया, उनके समस्त शरीर को धोकर खून के दाग दूर किए। नाव को कल्पी के पास के एक टापू पर ले गए। वहाँ ऋषि को उन्होंने गीले पत्तों की बिछावन पर सुलाया।

दो दिन तक उन्होंने ऋषि की सभी तरह से सेवा की।

तीसरे दिन चन्द्रमा खूब तेजी से चमक रहा था और कलकल बहती नदी में उसकी किरणें जगमगा रही थीं, तब पराशर को होश आया। मन में अभी भी बेचैनी थी।

थोड़ी देर तक मत्स्या ऋषि की ओर निहारती रही, फिर ऋषि के पास आई। उनके सिर को अपनी गोद में लिया और धीमे स्वर में मत्स्य-कन्याओं का गीत गाने लगी।

शरीर से घायल और, मनुष्य की मनुष्य के प्रति घृणा देखकर, मन से व्याकुल पराशर को इस तरुण मत्स्य-कन्या का यह गीत अद्भुत सान्त्वनादायक लगा।

पिताजी, जल्दी आइए

शाम हो गई थी। यमुना नदी का तेज बहता पानी पिघले हुए सोने-जैसा चमक रहा था।

सँकरी-सी खाड़ी से अलग हुए एक टापू के किनारे पर एक छह साल का बालक खड़ा था। वहाँ से वह पश्चिमी क्षितिज पर नजरें टिकाए देख रहा था और वहाँ परस्पर मिलते समुद्र व आकाश को जैसे हाथ हिला-हिलाकर बुला रहा था।*

वह लड़का साँवले रंग का और पिचकी गेंद-जैसा था। अपनी माता के

* मैंने यह स्थान देखा है जिसे परम्परा से वेदव्यास का जन्मस्थान कहा जाता है और यहाँ मैंने महर्षि वेदव्यास के स्मारक का शिलारोपण भी किया है। पता नहीं वह स्मारक कभी निर्मित भी हुआ या नहीं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

चाचाओं के साथ इस टापू पर वह रहता था। उसका पूरा परिवार मछुआरों का ही परिवार था। उनका मुख्य व्यवसाय नाव में यात्रियों को पार उतारना तथा मछलियाँ पकड़कर कल्पी के बाजार में बेचना था। ये मछुआरे यमुना को जीवित देवी समझकर पूजते थे। यह देवी उनके जीवन-निर्वाह की जरूरतें पूरी करती थी।

यह लड़का मछली पकड़ने में, उन्हें साफ करने में तथा जाल गूँथने में दादी की मदद करके अपना समय बिताता था। वह आज्ञाकारी बालक था। उसके काम का अन्त नहीं था। माँ या दादी जब मछलियाँ बेचने बाजार में जातीं तब वह खुद की पकड़ी हुई मछलियों की टोकरी लेकर उनके साथ जाता। वह अपनी उम्र के अन्य लड़कों के साथ नहीं रहता था और न उनके खेल-कूद में शामिल होता था। जब कभी उन दूसरे बालकों के साथ वह हो भी जाता तो वह असाधारण तरीके से शान्त रहता। वह अपनी ही दुनिया में खोया रहता। उसकी उम्र के गाँव के बालक सोचते कि वह पागल है।

अकेला होता तब वह उसके किनारे खड़ा होकर पश्चिम के क्षितिज को देखा करता, ऐसा लगता मानो वह अपने पिता की प्रतीक्षा किया करता है। कभी वह पिता को आवाज देता, वे जहाँ हैं वहाँ बैठे जैसे वे उसकी बात सुनते हों। ऐसे विश्वास के साथ वह अपने पिता को बुलाया करता था।

आनेवालों को सामनेवाले किनारे पर लेने गई नाव थोड़ी देर में वापस आई। इस बालक की माँ नाव को चला रही थी। उसने माँ की ओर देखा ही नहीं। हाथ ऊँचा करके बोलता रहा, "पिताजी, जल्दी जाइए। आप कब आएँगे?"

उसकी माँ मत्स्यगन्धा नाव पर से बाहर कूदी। उस नाव को उसने लकड़ी के एक खूँटे से बाँध दिया और अधीर कदमों से अपनी कुटिया में चली गई। जहाँ वह अपने माँ-बाप और पुत्र के साथ रहती थी।

मत्स्या लगभग बीस बरस की होगी। वह पतली और आकर्षक थी। प्रकृति की गोद में पली होने के कारण उसका सौन्दर्य खिल उठा था। उसकी गति में लालित्य था और आँखों में चमक। उसकी कमर पर एक कपड़ा लिपटा हुआ था और गले में पड़ा हुआ शंख व चाँदी का हार उसकी ऊपरी देह का आवरण था।

वह दौड़ती हुई घर में गई और 'कृष्ण, कृष्ण' कहते हुए पुत्र को आवाज देने लगी। उसकी माता चन्दोदरी रसोई बना रही थी। वह बोली, "यह पागल लड़का तो रोज की तरह अपने बाप को बुला रहा है।" और फिर टीका के रूप में बोली, "पर वह क्या आनेवाला है?"

मत्स्यगन्धा कृष्ण के पास गई, उसे गोद में उठाया और प्यार करके गले लगाते हुए पूछा, "कृष्ण, तू किस कारण अपना समय बरबाद करता है? तेरा पिता तेरी आवाज नहीं सुनेगा।"

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कृष्ण ने निरीह भाव से माँ की तरफ देखा। माँ रोज उसे ये शब्द कहती थी। फिर भी ऐसा भाव उसके चेहरे पर होता था, मानो उसने पहली बार ये शब्द सुने हों।

"तेरी बात गलत है।" कृष्ण ने अनन्य विश्वास के साथ कहा, "वे आएँगे, माँ! मैं सो रहा होता हूँ तब वे हमेशा आते हैं और कहते हैं कि तू बुलाएगा तो मैं जरूर आऊँगा।"

"अरे कृष्ण," मत्स्यगन्धा ने हताश होकर कहा, "तू कितना समझदार लड़का है! क्यों ऐसी भोली बातें करता है?"

बालक का यह विश्वास माँ के हृदय को विदीर्ण कर देता। माँ और पुत्र के बीज रोज यही संवाद होता।

"मैं अपने पिताजी के पास जाना चाहता हूँ," बालक ने जिस विश्वास के साथ यह कहा वह इस आयु के बालक में प्रायः नहीं हुआ करता।

मत्स्यगन्धा ने बालक को प्यार से थपथपाते हुए कहा, 'मैंने तुझसे कितनी बार कहा है कि वह कहाँ रहता है यह मैं खुद भी नहीं जानती। मैं तुझे उसके पास कैसे ले जाऊँ?"

बालक के पास जवाब तैयार था। बोला, "वे नहीं आएँगे तो अपनी नाव में बैठकर उन्हें ढूँढ़ने निकलूँगा। यमुना माता की कृपा का पार नहीं है। वह हमें रास्ता बताएगी।"

मत्स्या की आँखों में आँसू छलक आए। उसने कहा, "मैं तुझे हमेशा नहीं कहती हूँ कि वह कभी नहीं आएगा और कभी हमें अपने साथ नहीं ले जाएगा।"

"लेकिन क्यों?" कृष्ण की मासूम आँखों में विस्मय की चमक उठी, "मुझे विश्वास है कि वे जरूर हमें ले जाएँगे।"

"मैं तुझे इसका कारण नहीं बता सकती।" मत्स्या ने रुदन को दबाते हुए रुँधे गले से कहा, "तू बड़ा होगा तब मैं तुझे यह बताऊँगी...।"

"अभी क्यों नहीं कहतीं? गाँव का हर लड़का अपने पिता के साथ ही रहता है!" उसने खाड़ी पार के मछुआरों के गाँव की तरफ इंगित करते हुए दर्द-भरे स्वर में कहा।

कृष्ण का मुखमंडल खुली पुस्तक के समान था। उसको अपने पिता पर कितना विश्वास था, इसे उसके चेहरे पर पढ़ा जा सकता था।

"पिछली बार जब पिताजी आए थें तब दादा ने कहा था कि वे अगली आषाढ़ी पूर्णिमा को आएँगे। उसी दिन सवेरे मेरा जन्म हुआ था, सही है न? दादा कहते हैं कि पिताजी कभी मुझे जरूर अपने साथ ले जाएँगे।"

"मैं भी चाहती हूँ कि कभी तेरे दादा की इच्छा पूरी हो जाए।" मत्स्या ने

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यह कहा और सुबकने लगी।

कृष्ण माँ से लिपट गया। "माँ, दादा तो तेरे जैसे नहीं हैं। मैं जब भी तुमसे पिताजी की बात करता हूँ तभी तुम रो पड़ती हो। पर दादा तो कहते हैं कि पिताजी सबकुछ जानते हैं। चाँद, तारे, मछली, वृक्ष, मगर और दूर-दूर के स्थान व राजा लोग जो हाथियों पर बैठते हैं, सभी के बारे में वे जानते हैं। दादा मुझसे कहते थे कि आषाढ़ी पूर्णिमा को पिताजी जरूर आएँगे। तू यों रो मत।" कहकर कृष्ण ने माँ के आँसू पोंछ दिए।

"मैं नहीं रोऊँगी कृष्ण, मैं तुझे वचन देती हूँ," मत्स्या ने कहा। "हमें उनके आने की प्रतीक्षा करनी चाहिए। अब तो केवल तीन दिन की ही प्रतीक्षा करनी है।" मत्स्या ने निःश्वास छोड़ते हुए कहा।

"मैं जानता हूँ।" कृष्ण बोला, "दादा ने मुझसे कहा था कि यदि मैं सच्चे मन से उन्हें पुकारूँगा तो वे जरूर आएँगे। माँ, क्या तुम्हें ऐसा लगता है कि दादा झूठ बोलते हैं?"

"नहीं, नहीं," मत्स्या ने कहा, "तेरे पिता सबकुछ जानते हैं।" वह चाहती थी कि वह दुखद वार्तालाप जल्दी ही समाप्त हो जाए।

वह जानेवाली थी कि तभी कृष्ण ने प्रौढ़ आयु के व्यक्ति की तरह पूछा, "माँ, हम यहाँ यों क्यों प्रतीक्षा करें? हम ही उनके पास न चले चलें?" कृष्ण को ऐसा लगता था कि पिताजी कहाँ हैं, यह माँ जानती है।

"लेकिन कहाँ?" मत्स्या ने पूछा।

"और कहाँ? पिताजी के पास।"

मत्स्या ने सुबकना बन्द कर दिया। वे कहाँ थे, इसका मत्स्या को पता नहीं था। वे तलवार की धार पर चल रहे थे लेकिन जिन्दा थे। मत्स्या को यह कोई भरोसा नहीं था कि वे अभी आएँगे कि कब आएँगे। वह जानती थी कि एक समय आएगा जब वे कल्पी आना बन्द कर देंगे और तब बालक का दिल टूट जाएगा।

परिस्थिति बहुत करुण थी। उसे शब्दों में नहीं बाँधा जा सकता था। मत्स्या का पिता मत्स्या का विवाह अपने समाज के किसी युवक के साथ कर देना चाहता था। उसने इसके लिए कोशिश भी की थी। लेकिन मुख्य सवाल कृष्ण पर आकर अटक जाता था। वर्ष में केवल तीन-चार ही दिन जो उसे मिलते थे, उनके लिए इतना प्यार रखनेवाले इस कृष्ण जैसे अवैध बेटे की माँ मत्स्या को स्वीकार करने को शायद ही कोई तैयार होता। और कोई युवक तैयार भी हो जाता तो ऐसे पिता को कृष्ण कभी स्वीकार नहीं करता।

वह जानती थी कि उसके पिता इस उलझन से परिचित थे और चाहते थे कि जब बच्चे के पिता आएँ तब वह उनके साथ जाने की जिद करे। कारण यही

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

था कि जब तक बच्चा साथ है तब तक मत्स्या से विवाह करने को कोई युवक तैयार नहीं होगा।

लेकिन कृष्ण के पिता के लिए कृष्ण को साथ ले जाना कितना मुश्किल था यह भी वह जानती थी। कभी वे आर्यों के पूज्य ऋषि थे, किन्तु पता नहीं क्यों, आर्य उनके शत्रु बन बैठे थे। वे हाथ आ जाते तो उनकी हत्या करने में भी वे हिचकिचाते नहीं। इस कारण वे छिप-छिपकर घूमते रहने को विवश थे। यदि वे अपनी अवैध सन्तान को साथ लेकर घूमते तो उनका जीवन और भी खतरे में पड़ जाता। यह रहस्य केवल वही जानती थी। साथ ही वह यह भी जानती थी कि यदि पिता ने आना बन्द कर दिया तो कृष्ण के लिए यह दुख असह्य हो जाएगा।

पिता के विषय में कृष्ण एक बार जो बातें करना शुरू कर देता तो उसे रोकना भी बहुत मुश्किल हो जाता था। उसकी समझ उसकी आयु को देखते ज्यादा थी। यात्रियों को पार उतारने जानेवाली नाव में वह कभी होता तो वे मन्त्रमुग्ध होकर उसकी बातें सुनते रहते। वह अपने पिता की बड़ाई करता। वह उन्हें बताता कि किस प्रकार उसके पिता देवताओं के साथ बात करते हैं, "मैं बड़ा होऊँगा तब पिताजी मुझे अपने साथ ले जाएँगे। मेरे पिताजी सबकुछ जानते हैं। आकाश के बारे में, आकाश के तारों के बारे में और यमुना नदी के प्रवाह के बारे में वे सबकुछ जानते हैं।" यात्री जानते थे कि यह बालक उसकी माता की क्षणिक भूल का परिणाम था और उसका पिता अपने पुत्र को लेने कभी नहीं आएगा।

इस बालक की मीठी-मीठी बातें सुनते हुए वे उसकी वाणी के प्रवाह में बह जाते, उसकी आशाओं के साथ तदाकार हो जाते लेकिन उससे बिछुड़ते समय वे उदास हो जाते। कितना अद्‌भुत बालक, फिर भी कितना धुन का धनी!

ज्यों-ज्यों आषाढ़ की पूर्णिमा पास आने लगी, त्यों-त्यों बालक की अधीरता बढ़ती गई। पिता से मिलने के लिए वह उत्साह और आनन्द से विभोर रहने लगा। उसकी माता और उसके नाना को चिन्ता ने आ घेरा। उसके पिता के आने की कोई सम्भावना ही नजर नहीं आ रही थी। यदि वे सचमुच नहीं आए तो इस बालक का क्या होगा?

लेकिन कृष्ण तो अपने पिता के ख्यालों में खोया हुआ था। वह एक बढ़िया मछली पकड़ लाया और दादी के हाथों में थमाकर बोला, "मेरे पिताजी आएँगे इसलिए इसे अच्छी तरह से पकाना।" वह बार-बार दादी को कहता, "पिताजी कई बार सपने में आते हैं और कहते हैं कि मैं जरूर तुझे ले जाऊँगा। तेरी माँ को अपने साथ ले जाऊँगा।" दादी माँ इस धुनी बालक की बात सुनकर निराशा में सिर धुन लेती।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अश्रुपूर्ण आँखों से मत्स्या कृष्ण से कहती, ''मान लो कृष्ण कि पिताजी नहीं आए तो?''

''मैंने तुझे कह दिया न माँ कि अपनी नाव लेकर उन्हें ढूँढ़ने निकल जाऊँगा।''

''लेकिन कृष्ण, मैंने तुमसे कहा था न कि वे कहाँ रहते हैं इसका तो मुझे भी पता नहीं है!'' मत्स्या ने कहा। लेकिन कृष्ण पर इसका कोई असर नहीं हुआ।

उसने आदर के साथ कहा, ''मैं यमुना माता से बातें करता हूँ। वह दयालु है। वह हमें जरूर रास्ता बताएगी। माँ, तू तैयार हो जा और रो मत। तू रोएगी तो पिताजी समझेंगे कि मैं तुझे दुख देता हूँ।''

मत्स्या का मन भारी हो गया था। पिता नहीं आए तो यह कोमल हृदय बालक उस धक्के को कैसे सहन कर सकेगा?

विदाई

जिस रात पूर्णिमा का चाँद आषाढ़ के तारे के पास आया उस रात कृष्ण तड़के जल्दी उठा और नदी में नहाकर आ गया। स्नान करके टापू के किनारे पर पश्चिम दिशा की तरफ मुँह करके खड़ा हो गया और भावविभोर होकर पुकारने लगा– ''पिताजी आइए, जल्दी आइए।''

उसके आह्वान का जैसा प्रत्युत्तर आया हो, कुछ ऐसे दूर पानी की सतह पर एक बिन्दु-सा उभरकर कल्पी की ओर बढ़ने लगा। कृष्ण आनन्द से नाच उठा। हाथ उठाकर उसने माँ को पुकारा, ''माँ, यहाँ आओ, पिताजी आ रहे हैं!''

मत्स्या कुटिया के बाहर आई। वह जानती थी, ऐसी ही एक रात्रि में कृष्ण का जन्म हुआ था। और इसी दिन कृष्ण का पिता उससे मिलने नियमित आता था। कृष्ण अधीरता से उस दिन की प्रतीक्षा किया करता था।

प्रतिवर्ष की तरह उस दिन यदि उसका पिता उनसे मिलने न आए तो क्या होगा, यह विचार आते ही वह काँप उठी। दुष्ट राजा ने उसके आश्रम को विनष्ट किया था। अब वे दूर होकर न जाने क्या करते थे? वे एक महान ऋषि थे और वह थी एक क्षुद्र मछुआरे की बेटी, जो उनके जीवन में एकाध क्षण के लिए आई और फिर अदृश्य हो गई।

वह काँपते हृदय से उस दिन की प्रतीक्षा कर रही थी। कृष्ण के पिता यदि उसकी अपेक्षा के अनुसार नहीं आए तो उसे जो आघात लगेगा उससे उसका उबरना मुश्किल है। कृष्ण कितना आज्ञाकारी, समझदार और सुन्दर है! यमुना

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

माता ने उसे कितना अद्‌भुत पुत्र दिया है लेकिन वह है कि उसे अपने पास रख ही नहीं पा रही!

कृष्ण की दृष्टि उसी बिन्दु पर टिकी थी जो लहरों पर उसी की ओर बढ़ रहा था और अब एक बड़ी नाव की शक्ल में बदलने लगा था। उसकी नजर के जोर से जैसे नाव की गति बढ़ती जा रही थी। नाव पास आई तो कृष्ण ने अपने पिता को पहचान लिया और हर्ष से उछलने लगा।

पिता को देखे एक वर्ष हो गया था फिर भी उनकी मूर्ति उसके मन में ज्यों-की-त्यों विराजमान थी। रंग बहुत गोरा, लम्बी दाढ़ी, सिर पर लिपटी मृगछाला, हाथ में दंड और कमंडल, गले में मोटी रुद्राक्ष की माला और इन सबसे ऊपर उसके बाएँ कन्धे पर से नीचे की ओर लटकती जनोई—उसकी स्मृति और स्वप्न में पिता का यह बिम्ब पूरे साल अंकित रहा था।

कृष्ण ने जोर से आवाज लगाई—"पिताजी, मैं आता हूँ।" और मत्स्यगन्धा का हाथ छुड़ाकर वह पानी में कूद पड़ा और नाव की ओर तैरने लगा।

एक पाँव से लाचार होने के बावजूद मुनि पराशर ने नाव के बाहर कूदकर बालक को पानी में से उठा लिया और उसे यों गले लगा लिया मानो वह नन्हा-सा बच्चा हो। कृष्ण उनके गले में दोनों बाँहें डालकर लिपट गया और हँसने भी लगा और रोने भी लगा। भावविह्वल होकर वह बार-बार अपना मुँह मुनि की दाढ़ी में गड़ाने लगा।

मुनि जब तट पर आए तब मत्स्या ने, उसके माता-पिता ने तथा अन्य कुटुम्बीजनों ने उन्हें प्रणाम किया और श्रद्धाभाव से उनका चरण-स्पर्श किया।

कृष्ण इस बीच पिता की गोद से सरककर नीचे उतर आया और अपनी माँ की तरफ घूमकर बोला, "मैंने तुमसे कहा नहीं था कि पिताजी जरूर आएँगे?"

मुनि के नेत्रों में विनोद की आभा झलकी। वे हँसते-हँसते बोले, "मत्स्या, मेरा बेटा, मुझे तेरी अपेक्षा ज्यादा अच्छी तरह समझता है। तुझे भय था कि मैं शायद नहीं आऊँगा।" फिर उन्हें तट पर लानेवाले मछुआरों की ओर मुड़कर उन्होंने कहा, "अब आप दूसरे यात्रियों को उनके स्थान पर पहुँचा आएँ। वापस आएँ तब आज से ठीक तीन दिन बाद मुझे यहाँ से लेते जाना। भूलना नहीं।"

दूसरे मुसाफिर भी मुनि के साथ नीचे उतर आए थे। उन्होंने भी मुनि के चरण-स्पर्श किए। उस ओर रहनेवाले लोग मुनि को पहचानते थे और उन पर श्रद्धाभाव रखते थे। उनके पैर के विकार को लक्ष्य कर कभी-कभी वे उन्हें स्नेहवश पंगु मुनि कहकर पुकारते थे और मुनि उत्तर में हँस देते थे। उन सबको मुनि ने दाहिना हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया, "भगवान करे आपकी यात्रा मंगलमय हो।"

कृष्ण का हृदय गौरव से छलक उठा—उसके पिता एक महान मनुष्य हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पिता की गोद से नीचे उतरकर भी कृष्ण पिता को छोड़ नहीं रहा था। वह लगातार पिता की अँगुली पकड़े हुए था। छोड़ दे और वे फिर कोई चमत्कार करके अदृश्य हो जाएँ तो!

कृष्ण अपने पिता के दोनों शिष्यों को भी पहचानता था। वे दोनों गए साल भी आए थे। असवल नाम का शिष्य अधेड़ उम्र का था, दूसरा शिष्य पैल अभी किशोर वय में ही था। उसने उन दोनों को प्रणाम किया और उनका आशीर्वाद प्राप्त किया।

पराशर ने उन मछुआरों का अभिनन्दन स्वीकार किया जो उनका स्वागत करने खाड़ी के उस पार से आए थे। उन्हें भी उन्होंने आशीर्वाद दिया। वे जब चले गए तब मुनि और उनके शिष्य स्नान करने गए। कृष्ण भी उनके साथ गया।

स्नान करने के बाद पराशर मुनि ने नदी में ही खड़े रहकर भगवान सवितानारायण को अर्घ्य दिया। कृष्ण ने भी पिता का अनुकरण किया। उन्होंने जिस प्रकार बल देते हुए, और लय से, मन्त्रों का उच्चारण किया था वैसे ही याद रखकर उसने भी मन्त्रों का उच्चारण किया।

मुनि ने कहा, "मैं जिन मन्त्रों को बोलता हूँ, उन दैव मन्त्रों का उच्चारण तुमसे नहीं होगा।"

कृष्ण निराश हो गया। उसे बुरा लगा। उसने पूछा, "क्यों नहीं? क्या मैं आपका पुत्र नहीं हूँ?" पिता उसके स्तर को भूल न जाएँ इस बारे में वह सावधान था।

"हाँ, तू मेरा पुत्र है, लेकिन ये कोई साधारण उच्चारण नहीं हैं, ये तो दैवी शब्द हैं। शब्द ब्रह्म है। जब तक द्विज की तरह मेरा पुनर्जन्म न हो जाए तब तक तू इन शब्दों का उच्चारण नहीं कर सकता।" मुनि ने कहा और कृष्ण की पीठ थपथपाई।

कृष्ण उलझ गया। उसकी भौंहें तन गईं—उसका वापस जन्म कब होगा? उसने पूछा, "आपका भी क्या पुनर्जन्म हुआ था?"

"हाँ," मुनि ने कहा।

"तो मेरा पुनर्जन्म कब होगा?"

"जब तू समुचित बल देकर लय से मन्त्रों का उच्चारण करेगा और इनके साथ जुड़ी हुई प्रतिज्ञाओं का पालन करेगा!"

"लेकिन मैं तो अभी उनका उच्चारण कर सकता हूँ।" कहकर कृष्ण ने अपने पिता की तरह मन्त्रों का उच्चारण किया।

पराशर मुस्कराए। उनको गर्व का अनुभव हुआ कि उनके ऐसा पुत्र है जो आसपास विपरीत वातावरण के बावजूद ठीक उनकी तरह शब्दों का उच्चारण कर

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सकता है। बोले, "इन मन्त्रों को अपनी स्मृति में सँजोकर रख, इनका उच्चारण मत करना, देवता नाराज हो जाएँगे।"

पराशर ने बैठकर अग्नि की पूजा की। कृष्ण भी उनके साथ बैठा और पिता द्वारा उच्चारित मन्त्रों को अपने मन में रख लिया। अभी वह उन मन्त्रों का उच्चारण नहीं कर सकता था, इसलिए उन शब्दों को–ध्वनि, बलाघात और लय आदि को–उसने अपने हृदय में अंकित कर लिया।

पूजा करने के बाद मुनि पराशर ने अपने आने की खबर सुनकर एकत्रित हुए लोगों को आशीर्वाद दिया।

उसके बाद मुनि और दूसरे पुरुष भोजन करने बैठे। कृष्ण अपने पिता के पास ही बैठा ताकि उनकी पत्तल में से वह भी भोजन कर सके।

उसके दादा ने कहा, "कृष्ण, यहाँ आओ। मेरे साथ भोजन के लिए बैठो।"

"नहीं।" कृष्ण ने बलपूर्वक कहा, "मैं पिताजी के साथ ही भोजन करूँगा।" और फिर पिता की तरफ देखकर उसने पूछा, "मैं आपके साथ, आपकी ही पत्तल से भोजन करूँ तो आपको क्रोध तो नहीं आएगा न?" पिता नाराज हो गए तो उसे साथ नहीं ले जाएँगे, ऐसा उसे भय था।

"नहीं बेटे, मैं तो प्रसन्न हूँ कि तू मेरे साथ भोजन करने के लिए बैठा।" मुनि ने कहा और उसकी पीठ पर लाड़ से हाथ फेरा।

भोजन शुरू करने से पहले पराशर ने पत्तल के आसपास पानी के छींटे दिए और कुछ मन्त्रों का उच्चारण किया। कृष्ण ने भी वही किया और मन-ही-मन मन्त्रों को रट लिया–शब्दों को स्मृति में जड़ लिया। सभी लोग उसकी तरफ देखकर हँस पड़े।

उस रात कृष्ण अपने पिता के साथ ही सोया। सारी रात उसने अपना हाथ पिता के सीने पर रखा, इसलिए कि वे कहीं चले न जाएँ।

दूसरे दिन सवेरे मुनि पराशर अपना नित-नेम समाप्त कर सारे कुटुम्ब से मिले। मत्स्या के पिता जरूथ ने समस्या प्रस्तुत की, "पूज्य मुनिजी, कृष्ण अब धीरे-धीरे समस्या बनता जा रहा है।"

पराशर खुलकर हँस पड़े, "मैं भी देख रहा हूँ! इसका जन्म हुआ उससे पहले ही यह समस्या बन चुका था! कृष्ण, तेरे दादा कहते हैं तू इनको तंग कर रहा है।"

"नहीं," कृष्ण ने हँसकर कहा, "ये तो मुझे चिढ़ाने के लिए ऐसा कह रहे हैं। मैं तो इनका सब कहना मानता हूँ।" फिर बोला, "देखो, वे हँस रहे हैं! ये तो मुझे चिढ़ाना ही चाहते हैं!" और सभी हँस पड़े।

"मुनिवर," जरूथ ने गम्भीरता से कहा, "यह सदैव तुम्हारे साथ जाने की बात करता रहता है।" बूढ़े मछुआरे ने क्षमा-याचना सहित हाथ जोड़कर फिर कहा,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"तुम पर हमारा कोई अधिकार नहीं है! तुम इसको साथ रखो तो तुम्हारी कठिनाई कितनी बढ़ जाएगी यह भी मैं जानता हूँ, लेकिन तुम इसको यहीं छोड़कर चले गए तो इसका दिल टूट जाएगा!" जरूथ कृष्ण से छुटकारा पाने के लिए कृत-संकल्प था। यह हो जाए तभी मत्स्या का विवाह किसी सुयोग्य मछुआरे के साथ किया जा सकता है।

"इसकी चिन्ता मत करो, जरूथ!" पराशर ने हँसकर कहा, "यदि आपको और मत्स्या को आपत्ति न हो तो मैं इसे अपने साथ ले जाऊँ? मेरी इच्छा तो इतनी ही थी कि यह अपनी सँभाल स्वयं कर सके, ऐसा हो जाए, तब तक अपनी माँ के पास रहे तो अच्छा।"

कृष्ण ने बीच में बोलते हुए कहा, "नहीं पिताजी, मैं अब बड़ा हो गया हूँ," उसने अपने कन्धे पीछे दबाए और छाती फुलाकर बोला, "आप जानते हैं कि कल एक मछली दादाजी के हाथ से छूट गई और मैंने पकड़ ली!"

सभी लोग हँस पड़े। पराशर ने स्नेहपूर्वक कहा, "तो मैं तुम्हें अपने साथ ले चलूँगा, लेकिन तुम्हें शरारत नहीं करनी होगी। सीधे रहना होगा।"

कृष्ण का चेहरा आनन्द से चमक उठा। फिर उसने डरते-डरते पूछा, "पिताजी, माँ को भी साथ ले लें तो! वे आपकी सार-सँभाल रखेंगी।" फिर कुछ देर सोचकर उसने पूछा, "और पिताजी, आप कहते थे अभी मुझे पुनर्जन्म लेना है! मेरी माता साथ न होगी तो मैं कैसे वापस जन्म ले सकूँगा?"

यह सुनकर मुनि जोर से हँसे, "इसकी व्यवस्था तो मैं अपने आप कर लूँगा बेटे! तू इसकी चिन्ता मत कर। लेकिन यदि तुम्हारी माता हमारे साथ चलेगी तो दादा-दादी की सार-सँभाल कौन करेगा? वे अब बहुत बूढ़े हो गए हैं!"

"हाँ, यह सच है," कृष्ण ने धीरे-से कहा। फिर मानो इस प्रश्न पर विचार करता हुआ बोला, "लेकिन जब वे नहीं रहेंगे तब मेरी माता की सँभाल कौन करेगा!"

सभी लोग बेचैनी अनुभव करने लगे थे। जरूथ और उसकी पत्नी काँप रहे थे, मत्स्या के बारे में मुनि क्या निर्णय करेंगे।

कुछ क्षणों के लिए मुनि ने आँखें बन्द कीं और ध्यान करने लगे; फिर आँखें खोलकर हँसते हुए बोले, "अपनी माता के बारे में चिन्ता मत कर।" और फिर एक बार आँखें बन्द कीं। सभी लोग मुनि के तेजस्वी मुखमंडल की ओर देख रहे थे। कुछ देर बाद आँखें खोलकर उन्होंने कहा, "इसके सामने महान भविष्य पड़ा है। यह अत्यन्त सुखी होगी! इसके भाग्य में ऐसा ही योग है। और द्वैप, तू जब बड़ा होगा तब यह जहाँ भी होगी, तू इसका ध्यान रखेगा!"

मत्स्या ने मुनि को प्रणाम किया। मुनि ने उसके मस्तक पर हाथ रखकर

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

आशीर्वाद दिया।

दो दिन तक कृष्ण सभी से यह कहता फिरा कि अब मैं पिताजी के साथ जानेवाला हूँ! वह खाड़ी में तैरकर उस पार मछुआरों के गाँव के एक-एक बच्चे-बच्ची को यह बात कह आया। ये बच्चे कितनी ही बार उसका पिता न होने की मजाक उड़ाया करते थे। अब वह अदम्य उत्साह से अपने पिता के बारे में बात कर सकता था।

वह सभी से कहता कि उसके पिता बहुत बड़े ज्ञानी हैं और यह भी कहता कि वे जो कुछ जानते हैं वह सब उसे सिखाने का उन्होंने वचन दिया है। फिर चाँद और तारों के बारे में तथा नदी में कितने जल-कण हैं, इसके बारे में मैं सब कुछ जान जाऊँगा। मेरे पिता के समान मेरे पास भी शिष्य आएँगे। मैं भी जटा और दाढ़ी बढ़ाऊँगा। पिताजी के साथ हाथी पर सवारी करके राजाओं के पास जाऊँगा और राजा लोग पिताजी तथा मुझे प्रणाम करेंगे!

कृष्ण बार-बार पिता से पूछा करता, "आप मुझे जरूर ले जाओगे न?" मुनि भी अपने पुत्र में उपस्थित अनन्त जिज्ञासा और विस्मय के भाव को अनुभव कर रहे थे।

जिस नाव में मुनि आए थे, एक रोज वही उस टापू पर आकर लगी। मछुआरे मुनि को विदा देने और उनसे आशीर्वाद प्राप्त करने तट पर आ इकट्ठे हुए।

विदाई का क्षण आ पहुँचा! मत्स्या की आँखें अश्रुपूरित हो गईं। शायद अब कभी भी वह अपने पुत्र को पुनः नहीं देख पाएगी। लेकिन वह जानती थी कि जो परिस्थितियाँ हैं उनमें यही श्रेष्ठ है कि उसका पुत्र अपने पिता के साथ चला जाए।

ऐसे तेजस्वी बालक को मछुआरों के बीच रखना भी पाप माना जाता। यह कैसे हो सकता था कि जो बालक नदी के जल-कण और आकाश के तारे गिनने की इच्छा रखता हो वह इस किनारे से उस किनारे नाव खेता हुआ यात्रियों को ही चढ़ाता-उतारता रहे? माँ यमुना के प्रति वह कृतज्ञ थी कि उसने उसे ऐसा पुत्र दिया जो पिता के समान ही प्रतिभावान है।

मत्स्या यह भी जानती थी कि उसका भाग्य कृष्ण के चले जाने पर ही निर्भर करता है। कृष्ण पिता के साथ जाए तभी कोई युवक मछुआरा विवाह के लिए उसे पसन्द कर सकता है, अन्यथा तो असम्भव है।

जब जाने का वक्त आया तो वहाँ इकट्ठे हुए सभी लोग यह देखकर स्तम्भित रह गए कि कृष्ण वहाँ था ही नहीं। पहले सबने उसे अपने झोंपड़ों में देखा और फिर नदी में। देखा कि वह पानी को चीरकर अपनी नाव तक पहुँच गया है और वहाँ शान्ति के साथ प्रतीक्षा कर रहा है। क्या पता आखिरी समय ही कोई विचार बदल दे, तो! इसी भय के कारण वह पहले ही नाव में पहुँच गया था।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पराशर जोर से हँस पड़े, "मत्स्या, तेरा यह लड़का मुझे तेरे पास छोड़कर भागा जा रहा है!" फिर ऊँची आवाज में पुकारकर कहा, "कृष्ण, इधर आओ। अपनी माँ और दादा-दादी के पैर छुओ। उनसे जाने की अनुमति माँगो, वे तुम्हें आशीर्वाद देंगे। यह हमारी आर्य-परम्परा है।"

कृष्ण पहले तो हिचकिचाया, फिर नाव से बाहर पानी में कूद पड़ा और जब दोनों हाथों से पानी ठेलता हुआ लौटा तो सभी लोग हँस पड़े।

नाव में पड़ी एक मृगछाला भी उसने पहन ली थी। वह उसके कद से काफी बड़ी थी, इसलिए गर्दन से पाँव तक लिपट गई थी।

मृगछाला को हाथों से पकड़े हुए वह पानी से बाहर आया। ज्योंही उसने दादा को साष्टांग करने को हाथ उठाए त्योंही मृगछाला फिसलकर पाँवों में आ गई और वह गिर पड़ा। यह देखकर सब लोग फिर ठठाकर हँस पड़े।

पराशर ने पुत्र को उठाया, उसकी मृगछाला ठीक की और उस पर एक डोरी बाँधकर ऐसा प्रबन्ध कर दिया कि वह दोबारा न गिरने पाए।

विदा का समय निकट था। मत्स्या की आँखों से अश्रुधारा बह रही थी। रोते हुए, भरे गले से उसने पूछा, "कृष्ण, अब तू वापस कब आएगा?"

कृष्ण ने पिता की ओर देखा। जब उसे यह विश्वास हो गया कि यह उसे जाने से रोकने की चाल नहीं है तो बोला, "माँ, तू चिन्ता न कर। तू जब भी कहेगी मैं तेरे पास पहुँच जाऊँगा।"

मत्स्या ने उसे गले से लगा लिया।

"कृष्ण, जो आर्य होता है वह अपनी माँ को कभी नहीं भूलता।" मुनि ने कहा, "ये तेरी माता है, देवी है।"

मत्स्या ने कृतज्ञता के भाव से मुनि की ओर देखा। फिर दोनों हाथों से चेहरा ढँककर दीवार की ओर मुँह कर लिया।

मुनि बोले, "मत्स्या, तू रो मत। इस बालक को आशीर्वाद दे। मैं इसको सदैव कृष्ण द्वैपायन कहूँगा, ताकि यह कभी भी इस द्वीप को और तुझे भूल न सके।"

मुनि ने कृष्ण को गोद में उठा लिया और नाव की ओर चले।

भस्मक्षेत्र

पिता और पुत्र के चेहरों पर उल्लास खेल रहा था। वे नदी की धारा के विरुद्ध ऊपर की ओर जा रहे थे। द्वैपायन पहले कभी इधर नहीं आया था इसलिए उसके

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

लिए यह सब नया ही था। उसे सभी कुछ आनन्ददायक लगता था। लकड़ी के लट्ठों के समान उसने तट पर निश्चेष्ट पड़े मगर देखे, उन्हें निशब्द पानी में सरकते देखा और सामने के किनारे पर हाथियों के झुंडों को पानी पीने के लिए आते हुए भी देखा। तब वह अत्यन्त उल्लसित हुआ जब उसने गज-शावकों को सूँड़ में पानी भरकर बड़े हाथियों पर उछालते हुए देखा।

कृष्ण केवल मछुआरों की ही भाषा समझता था। मुनि भी उसे जानते थे, किन्तु अब उन्होंने पहला काम यही किया कि कृष्ण को दिव्य आर्य भाषा का पाठ पढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। कृष्ण चटपट सीखता चला गया और कहीं-कहीं थोड़ा अटकने के बावजूद उसका उच्चारण भी स्पष्ट करने लगा। मुनि को यह देखकर बहुत सन्तोष हुआ।

सूरज जब डूब रहा था तब नाव जिस गाँव के पास जाकर रुकी उसका नाम था गोधूलि। जिन यात्रियों को वहाँ उतरना था वे उतरकर चले गए। शेष ने किनारे पर ही रात काटने की तैयारी की।

गाँववालों को खबर मिली कि पंगु मुनि आए हैं तो वे उनको प्रणाम करने और उनका आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए ढोल-शहनाई बजाते हुए वहाँ आ पहुँचे। वे सभी लोग पंगु मुनि को चाहते थे। मुनि भी उन्हें पितृवत् प्यार करते थे। बीमार और दुखियारे लोग मुनि का आशीर्वाद पाने के लिए आने लगे। मुनि के पास ऐसी जड़ी-बूटियाँ और विद्या थी कि कैसे भी रोगी को स्वस्थ कर देते थे।

गोधूलि गाँव के बाहर एक छोटे-से आश्रम में आचार्य गौतम रहते थे। उन्हें पता चला कि गुरु पराशर आए हैं तो वे और उनके शिष्य दौड़ते हुए वहाँ आ पहुँचे और गहरे आदर-सम्मान सहित पाँव छुए। मुनि ने उनका अपने पुत्र द्वैपायन से परिचय करवाया तो आचार्य ने उसको गले लगा लिया और आशीर्वाद दिया।

आचार्य गौतम ने मुनि पराशर, द्वैप, मुनि के शिष्यों—असवल तथा पैल और अन्य यात्रियों से भी अपने आश्रम में आकर रात्रि-विश्राम करने का अनुरोध किया।

सभी लोग मुनि के आश्रम में पहुँचे! वहाँ सन्ध्यावन्दन आदि नित्यकर्म करने के बाद सभी ने भोजन किया और सो गए।

द्वैप एक मृगछाला पर पिता की बगल में ही सोया था। रात्रि निर्मल थी और आकाश में नक्षत्र-मंडल भव्य गति से यात्रा कर रहे थे। मुनि ने द्वैष को मुख्य तारे बताए, उनके नाम बताए और मनुष्य के जीवन पर उनका क्या प्रभाव पड़ता है, यह भी बताया। द्वैप जो हमेशा सबसे कहा करता था कि मेरे पिता तारों के बारे में सबकुछ जानते हैं, आज उसे इस तथ्य का पक्का ज्ञान हो गया।

मुनि ने सप्तर्षि मंडल की ओर अँगुली का इशारा किया और कहा, "देखो

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इनमें से यह तारा हमारा पूर्वज वसिष्ठ है!''

''आप भी क्या बाद में तारा बन जाओगे?'' द्वैष ने पूछा।

''यदि मैं श्रुतियों को धारण कर सकूँ तो।''

''तो यदि मैं भी श्रुति को धारण कर लूँ तो क्या मैं भी तारा बन सकता हूँ?'' द्वैप ने पूछा।

''जरूर, क्यों नहीं?'' मुनि ने जवाब दिया।

द्वैप के हृदय में आनन्द छलक उठा। उसने पूछा, ''लेकिन पिताजी, इन नक्षत्रमंडलों का संचालन कौन करता है? ऐसा लगता है जैसे ये पश्चिम की ओर जाते हों।''

''आकाश और जल के देवता वरुण इस आकाश को गति देते हैं। तारे उनके नेत्र हैं और उन असंख्य नेत्रों से वे हर किसी का काम देख सकते हैं।''

''आपका और मेरा काम भी?'' द्वैप ने पूछा।

''हाँ।'' मुनि ने उत्तर दिया।

द्वैप पर इस बात का भारी प्रभाव पड़ा। अब वह वरुण देव के संरक्षण में था।

दूसरे दिन सवेरे प्रातः कर्म करने के बाद मुनि ने अन्य आश्रमवासियों के साथ बैठकर अग्निदेवता को आहुति दी। द्वैप पिता के बगल में बैठा। वे जो मन्त्रोच्चारण करते वह उसे याद रखता।

सूर्योदय होने पर गौतम ऋषि ने मुनि पराशर, द्वैप और उनके शिष्यों को विदाई दी। सभी नाव में बैठ गए।

यात्रा शुरू हुई तो तुरन्त द्वैप ने प्रश्न पूछने शुरू कर दिए। वह जिस उत्साह से सभी कुछ जानना चाहता था मुनि को उससे बड़ा आश्चर्य हुआ। फिर भी प्रश्न पूछने के लिए वे उसे प्रोत्साहित करते रहे। कितना ही ऊटपटाँग सवाल होता, मुनि उसका हँसकर उत्तर देते ताकि द्वैप का आत्मविश्वास बना रहे।

द्वैप की एकमात्र चिन्ता यह थी कि पिताजी उसे जनेऊ कब पहनाएँगे ताकि वह भी दूसरी बार जन्म लेनेवाला द्विज कहला सके।

साहस कर एक बार उसने कह ही दिया, ''पिताजी, आप कहते थे कि आप जब मुझे यज्ञोपवीत पहनाएँगे तब उसके लिए कई मर्यादाओं का पालन करना पड़ेगा। मुझे बता दीजिए कि मुझे क्या-क्या करना है? मुझे विश्वास है कि मैं एक भी मर्यादा भंग नहीं करूँगा।''

''इस आयु में सभी मर्यादाओं का पालन करना सरल नहीं है,'' मुनि ने कहा, ''तुझे ब्रह्मचर्य का कठोर पालन करना पड़ेगा, गुरु के साथ रहना पड़ेगा, ऋषियों के बताए रास्ते पर चलना पड़ेगा, केवल भिक्षान्न का ही आहार करना होगा और

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सबसे बड़ी बात यह तुझे अपने जीवन को श्रुति (शब्द) की शरण में ही ले जाना पड़ेगा।''

''मैं यही करूँगा पिताजी!'' द्वैप ने कहा, ''यदि पैल ऐसे आचरण का पालन कर सकता है, तो मैं कैसे नहीं कर सकता। वह तो मुझसे केवल आठ ही वर्ष बड़ा है!''

मुनि ने द्वैप की पीठ थपथपाई और कहा, ''मन्त्र का मतलब केवल उच्चारण ही नहीं होता है, यह तो देवता होते हैं। इनके साथ जब जीवन को तुम तदाकार कर दोगे तब भगवान वरुण के ऋत् (ब्रह्माण्ड का नियम) का रहस्य तुम्हारी समझ में आएगा।''

दोपहर होने पर वे एक गाँव के पास ठहरे। वहाँ उन्होंने मध्याह्न की सन्ध्या की। गाँव के निवासियों ने उनका आदर-सत्कार किया और भोजन कराया।

मध्याह्न के बाद उन्होंने फिर यात्रा प्रारम्भ की। पिताजी को प्रसन्न देखकर द्वैप ने पूछा, ''पिताजी, आपने श्रुति का उच्चारण करना कब प्रारम्भ किया था?''

मुनि मुस्कराए। उनका पुत्र यों आसानी से हार माननेवाला नहीं था। बोले, ''यह तो एक रहस्य है, बेटे!''

द्वैप ने अविलम्ब प्रतिप्रश्न किया, ''मुझसे कोई बात छिपाकर क्यों रखते हैं? क्या मैं आपका पुत्र नहीं हूँ?''

''मैं यदि यह बताऊँगा तो तुम्हें विश्वास नहीं आएगा।'' मुनि ने उत्तर दिया।

द्वैप को यह सुनकर चोट लगी। उसे दुख हुआ कि पिता को उस पर विश्वास नहीं है और उसको यह भय भी हुआ कि उसने ज्यादा प्रश्न पूछे तो पिताजी नाराज हो जाएँगे और मुझे वापस माँ के पास पहुँचा देंगे।

मुनि ने अनुभव किया कि उन्होंने अपने पुत्र का दिल दुखाया है। वे नहीं चाहते थे कि द्वैप और उनके बीच कोई दीवार हो। इसलिए बोले, ''यदि मैं तुझे यह रहस्य बता दूँ तो तू इसे किसी अन्य को बताएगा तो नहीं न?''

''पिताजी, मुझ पर विश्वास कीजिए, मैं किसी को नहीं बताऊँगा।''

''मेरे दादा वसिष्ठ आर्यावर्त के तमाम ऋषियों के कुलगुरु थे। वे देवताओं के साथ बात करते थे और देवता लोग श्रुति का ताल-स्वर सहित शुद्ध उच्चारण करते थे।''

द्वैप की आँखें फैल गईं, ''दादा देवताओं के साथ बात करते थे। सचमुच?'' उसने पूछा।

''हाँ।'' मुनि ने उत्तर दिया।

''पिताजी, आप देवताओं के साथ बात कर सकते हैं?''

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"एक समय था जब कर सकता था। अब नहीं कर सकता।" मुनि ने दुखभरी आवाज में कहा, और बाद में मुस्कराकर बोले, "तू तो सवाल पूछता थकता ही नहीं रे!"

"पिताजी, आप जो कुछ जानते हैं वह सब मुझे सीखना है।" द्वैप ने हँसकर कहा।

पुत्र के इस जिज्ञासा भाव से मुनि को बड़ी प्रसन्नता हो रही थी। पिता के चेहरे पर अनुकूल भाव देखकर द्वैप ने फिर प्रश्न किया, "जब आपने श्रुति का ज्ञान पाया तब आपकी उम्र क्या थी?"

"मैं अपनी माता के गर्भ में था, जब मैंने अपने दादा को मन्त्रों का उच्चारण करते हुए सुना।" मुनि ने कहा।

"आपके पिताजी ने आपको कुछ नहीं सिखाया?"

"नहीं। वे तो लड़ाई में मारे गए थे और उन दिनों मैं अपनी माँ के गर्भ में था।" मुनि ने उत्तर दिया।

द्वैप ने इन सारी बातों पर विचार किया और फिर भोलेपन से पूछा, "यदि मैं और अधिक प्रश्न पूछ लूँ तो आप नाराज तो नहीं होंगे न?"

मुनि जोर से हँस पड़े और बोले, "मैंने क्रोध न करने की प्रतिज्ञा ली हुई है। अब बता मैं तुझ पर क्रोध कैसे करूँगा? कभी नहीं। मैं तो केवल तेरे प्रश्नों का उत्तर देने में हिचकिचाता हूँ क्योंकि मुझे डर है कि मैं जो बताऊँगा उसके महत्त्व को तू इतनी कम आयु में शायद न समझ सके। लेकिन तुझे जो भी पूछना हो, पूछ ले।"

"आपके जन्म से भी पहले आपके दादा ने किस प्रकार आपको वेदमन्त्र सिखा दिए थे?"

"उनको देवताओं ने अलौकिक सिद्धियाँ दी थीं।" मुनि ने निःश्वास छोड़ते हुए कहा। उनकी नजरें शून्य में न जाने क्या देख रही थीं। फिर धीमे स्वर में बोले, "वे दिन अद्भुत थे!"

"आपके दादा का कोई आश्रम था?" द्वैप ने पूछा।

"मैंने कहा न कि आर्यावर्त के तमाम ऋषि उनको पूजते थे। इतना बड़ा आश्रम था कि दो सौ से भी ऊपर वरिष्ठ शिष्य उनके पास रहा करते थे।"

"उनको युद्ध में किसलिए जाना पड़ा था?"

"वे राजा सुदास के गुरु थे। उन पर दस राजाओं ने आक्रमण किया था। यह लड़ाई बहुत लम्बी चली। दादा के आशीर्वाद से इसमें सुदास की जीत हुई। अब तुझे और क्या पूछना है?"

"आपके पिता और माता का क्या नाम था?"

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

''मेरे पिता का नाम शक्ति था और माता का नाम अदृश्यन्ती।''

''क्या हम आपके दादा के आश्रम जाएँगे?''

''यह बहुत ही पीड़ा देनेवाला विषय है, बेटे! उन दुर्भाग्यपूर्ण दिनों की याद मत दिलाओ।'' मुनि ने उदास होकर कहा।

''एक बात बताओ,'' द्वैप ने पूछा, ''उनकी मृत्यु कब हुई थी?''

''कई वर्ष हो गए। सहस्रांर्जुन नाम का एक दुष्ट राजा धर्मक्षेत्र के आश्रमों को जला दिया करता था। वह दुष्ट इनकी हत्या करे, उससे पहले ही दादा ने अपना जीवन विसर्जन कर दिया और पितृलोक में चले गए थे।''

''क्या हम लोग धर्मक्षेत्र में जाएँगे?'' द्वैप ने पूछा।

''नहीं,'' मुनि ने कहा, ''अब तो वह वीरान हो गया है। जहाँ एक बार ऋषियों के मुख से वेद-मन्त्रों का स्वर गूँजता था, अब वह स्थान मरुभूमि में बदल गया है। उसे देखकर तुझे दुख ही होगा।''

''आपका कोई आश्रम है?'' द्वैप ने पूछा।

''मैं बड़ा हुआ तो मैंने यमुना के किनारे एक आश्रम स्थापित किया था।''

''हम आपके आश्रम में कब जाएँगे?''

''अभी नहीं।'' मुनि ने कहा। उनके चेहरे पर शोक के बादल छा गए हों, ऐसा लगा। द्वैप ने यह देखा तो वह चुप हो गया।

अगले दिन सवेरे उन लोगों ने फिर यात्रा शुरू की। सूर्योदय के बाद नदी के एक किनारे पर द्वैप ने राख के टीबों का एक खेत देखा जिसके बीच में जले हुए पेड़ों के ठूँठ और दीमक के पहाड़ खड़े थे। एक भी आदमी या जानवर वहाँ नजर नहीं आता था। जैसे कोई विशाल श्मशान भूमि हो, ऐसा डरावना दृश्य वहाँ दिखाई दे रहा था।

''यह क्या है पिताजी?'' द्वैप ने काँपती आवाज में पूछा।

''इसे भस्मक्षेत्र कहते हैं। इसकी तरफ मत देखो। एकाध क्षण के लिए आँखें बन्द कर लो।'' मुनि ने कहा।

एक गाँव के पास नाव रुकी। उस गाँव के निवासियों ने मुनि को पहचान लिया। उन लोगों ने मुनि को प्रणाम किया और मुनि तथा सभी के लिए भोजन ले आए। कुछ यात्रियों को वहाँ उतरना था। वे उतर गए।

नाववाले ने आकर पूछा, ''पूज्य मुनिवर, आप हमारे साथ उस किनारे चलेंगे या यहीं रहेंगे?''

''मैं उस किनारे चलूँगा।'' मुनि ने उत्तर दिया।

''नाववाला मल्लाह नाव को उस किनारे ले जाने की बात क्यों कर रहा है? वह इस किनारे पर नाव क्यों नहीं लगाता? मैं भस्मक्षेत्र देखूँगा।''

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"यह भस्मक्षेत्र है। इसके पास नाव ले जाना अपशकुन माना जाता है।" मुनि ने कहा।

द्वैप की उत्सुकता बढ़ गई, "हम पैदल जाकर इस भूमि को क्यों नहीं देख सकते?"

मुनि ने थोड़ी देर के लिए आँखें बन्द कर लीं। फिर जैसे कोई संकल्प लिया हो, ऐसा भाव व्यक्त करते हुए आँखें खोलकर बोले, "इस अभागे क्षेत्र के बारे में तुम जितना ज्यादा जानोगे उतना ही ज्यादा दुख पाओगे!"

पिता के चेहरे पर अंकित वेदना को द्वैप ने पढ़ लिया। उसने कहा, "पर आप इस क्षेत्र के बारे में यदि कुछ नहीं बताएँगे तो मुझे और ज्यादा दुख होगा।" लेकिन फिर एकाएक उसको दूसरा विचार आया। उसने कहा, "फिर भी पिताजी, जिस विषय में बात करने से दुख होता हो वह मुझे मत बताओ।"

"कभी न कभी तो तू इसे जानेगा ही।...तो आज ही क्यों न कह दूँ? यह मेरा आश्रम है–नहीं, कहना चाहिए यह मेरा आश्रम था।"

"आपका आश्रम! लेकिन यह तो राख का ढेर है।" द्वैप ने आश्चर्य से आँखें फाड़ते हुए कहा। मुनि ने द्वैप के कन्धे पर हाथ रखा। अतीत में जैसे देख रहे हों, ऐसे देखते हुए वे बोले, "एक समय था जब मैं यहीं रहा करता था। मेरे आसपास वेदमन्त्रों का पाठ करते हुए शिष्यों के समूह रहा करते थे। इस विशाल आश्रम में सौ शिष्य और कई आश्रमवासी थे।" इतना कहकर मुनि रुक गए। अपने हृदय में बहती वेदना को जैसे वे नियन्त्रित कर रहे हों, इस प्रकार उन्होंने अपने होंठ भींचे। मुनि की वेदना पारदर्शक थी। द्वैप उनके चेहरे पर इसे देख सकता था।

मुनि ने कहा, "फिर वह दुष्ट राजा यहीं आया। उसने मेरे आश्रमवासियों की हत्या की। उसके सैनिकों ने स्त्रियों पर अत्याचार किए, हमारे पशुओं को तो मार डाला या वे हाँककर ले गए।"

"आप तब आश्रम में नहीं थे?" द्वैप ने पूछा।

"नहीं, मैं आर्यावर्त के राजाओं से यह कहने गया हुआ था कि इस दुष्ट का सामना करने के लिए एक हो जाओ। यदि सारे एक होकर सामना नहीं करते हो तो यह चुन-चुनकर सबको मार डालेगा और एक-एक आश्रम को भस्मीभूत कर देगा; लोग वेद भूल जाएँगे; देवता हमसे दूर भागेंगे और आर्य-परम्परा का लोप हो जाएगा। और जब लौटा तो देखा, मेरा ही आश्रम भस्मीभूत हो चुका था और अधिकांश आश्रमवासी मारे जा चुके थे।"

आश्रम पर क्या बीती होगी उसकी कल्पना करके द्वैप काँप उठा।

मुनि ने कहा, "फिर मैंने उस दुष्ट राजा का अकेले ही सामना करने का

 CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

निर्णय किया। मेरा विश्वास था कि अपनी तपस्या के बल पर राजा की क्रूरता पर विजय प्राप्त करूँगा। मैंने अकेले उसके रथ को रोक लिया और उससे कहा कि 'मनुष्य से शत्रुता त्याग दे, विद्या और तपस्या-गृहों का नाश करना बन्द कर दे।' सुनकर उसने मुझ पर शस्त्र उठाया, उसके एक आदमी ने मेरा पाँव तोड़ दिया और वह राक्षस अट्टहास करता हुआ वहाँ से चला गया। मैं बेहोश होकर वहीं गिर गया और पड़ा रहा।''

''आपके साथ क्या कोई नहीं था?'' द्वैप ने पूछा।

''नहीं, कोई नहीं।'' मुनि ने उत्तर दिया, ''देव-कृपा से तुम्हारी माँ तथा तुम्हारे दादा-दादी वहाँ आए। बेहोश देखकर वे मुझे कल्पी ले गए और वहाँ उन्होंने मेरी सेवा-सुश्रूषा की।''

''आपका कोई दूसरा और आश्रम नहीं था?'' द्वैप ने धीरे से पूछा। पिता की आवाज का विषाद-भाव जानकर द्वैप की आवाज में भी अन्तर आ गया था।

''जब मेरी शक्ति लौटी और स्वस्थ हुआ तब मैं भस्मक्षेत्र में वापस आया। असवल और पैल पेड़ की खोखल में छिपे रहकर बच गए थे। वे मिले।''

''इन दो के सिवाय कोई दूसरा नहीं मिला आपको?'' द्वैप ने काँपती आवाज में पूछा।

''मेरे कुछ शिष्य बचे थे; उन्होंने यमुना के तट पर छोटे-छोटे आश्रम स्थापित किए हैं—अभी हमने गौतम का आश्रम देखा था, वैसे। मैं इन आश्रमों में घूमता रहता हूँ, उनको वेदों के रास्ते चलने की प्रेरणा देता रहता हूँ और बीमारों की सेवा करता रहता हूँ।''

द्वैप उलझन में पड़ गया। पूछा, ''आप दूसरा आश्रम—बड़ा आश्रम स्थापित क्यों नहीं करते?'' उसने दोनों हाथ फैलाकर कितना मोटा आश्रम हो, यह बताते हुए कहा, ''मैं भी तब मुनि हो जाऊँगा और मेरे पास भी कई-कई शिष्य हो जाएँगे।''

''आर्यों और उस दुष्ट राजा के बीच लम्बे समय तक लड़ाई चलती रही। आर्यों का नेतृत्व जमदग्नि के पुत्र भार्गवश्रेष्ठ, परशुराम ने किया था। जमदग्नि को भी इसी दुष्ट राजा ने मारा था। मेरे शिष्यों की सुरक्षा का कोई ठिकाना नहीं था। यदि मैं आश्रम स्थापित करता तो वही राजा फिर आकर उसे नष्ट कर डालता और मेरे शिष्यों की हत्या कर डालता; श्रुति और श्रोत्रिय का वह दुश्मन था।''

''उस दुष्ट राजा का क्या हुआ?''

''परशुराम ने उसका वध किया। लेकिन उसके आदमियों ने आश्रमों का नाश और गायों का वध करना जारी रखा। पूरा आर्यावर्त उन्होंने रौंद डाला।''

''क्या वे आज भी आर्यावर्त को रौंद रहे हैं?''

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"नहीं, अब तो वे समाप्त हो गए हैं फिर भी मुझे यह संकट वरदान-जैसा लाभकारी हुआ है। एक बड़े आश्रम की बजाय मेरे शिष्यों ने यमुना के किनारे अनेक छोटे-छोटे आश्रम खड़े कर लिए हैं। मैं वहाँ जाता हूँ, आर्य-परम्परा का ज्ञान देता हूँ और शब्द की शुद्धता बनाए रखने का अनुरोध करता हूँ लेकिन मेरे शिष्य जो शब्द सिखाते हैं वे खण्डित हैं। मेरे सिवाय किसी ने भी श्रुति के तीनों भागों को पूरा नहीं पढ़ा है और चौथा भाग अथर्वण तो मैं भी थोड़ा ही जानता हूँ। मेरे दादा को अथर्वण खंड कम पसन्द था।"

द्वैप कुछ देर के लिए सोच में पड़ गया। फिर उसकी आँखें चमक उठीं, "पिताजी, हम दोनों मिलकर धर्मक्षेत्र का फिर से निर्माण करेंगे—हम दोनों।" उसने कहा।

मुनि ने सन्देह व्यक्त करते हुए सिर हिलाया और बोले, "अब यह काम असम्भव है। हस्तिनापुर का नया राजा शान्तनु कैसा निकलेगा, कह नहीं सकते। वह धर्मक्षेत्र के नवनिर्माण में सहायता करेगा और उसकी रक्षा करने को तैयार होगा या नहीं, इसका कुछ पता नहीं है। सारे ऋषि जीवित हैं कि नहीं इसका भी मुझे पता नहीं। श्रुति अखंड रूप से सुरक्षित है कि नहीं इसका भी कुछ ज्ञान नहीं।"

"पिताजी, हम धर्मक्षेत्र का निर्माण कर लेंगे और श्रुति का महत्त्व पुनः स्थापित कर देंगे।" द्वैप ने उत्साह से कहा।

पुत्र की आँखों में व्यग्रतापूर्ण उत्सुकता देखकर मुनि को आश्चर्य हुआ। उसकी आवाज में उन्हें भगवान की आवाज सुनाई दी। ऐसा पुत्र देने के लिए उन्होंने भगवान का आभार माना और फिर सहसा संकल्प करके बोले, "द्वैप, हम सामनेवाले किनारे पर नहीं जाएँगे; हम आचार्य गौतम के आश्रम में चलेंगे। वहाँ तुम्हारा यज्ञोपवीत संस्कार करूँगा।"

पिता का प्रेम देखकर द्वैप पुलकित हो उठा और उसकी आँखों में सपने तैरने लगे। वह पिता से लिपट गया।

द्वैपायन द्विज बनता है

पिता और पुत्र एक-दूसरे का हाथ पकड़े हुए भस्मक्षेत्र की ओर चले। जहाँ सैकड़ों मृतदेहों ने अग्निदाह पाया था, उस श्मशान-भूमि का दृश्य भयावह था।

पिता के चेहरे पर अंकित वेदना द्वैप से छिपी नहीं थी। वह पिता से सटकर चल रहा था। पिता के प्रति सहानुभूति प्रकट करने का इसके सिवा उसके पास और कोई जरिया नहीं था।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"चलो, द्वैप, हम गोधूलि वापस चलेंगे," मुनि ने कहा और मित्रवत् बात करते हुए पुनः बोले, "मैं जब-जब इस क्षेत्र के पास आता हूँ तब-तब भगवान से पूछता हूँ कि मुझे भी दुष्ट राजा के हाथों क्यों नहीं मरवा दिया?" और फिर जैसे खुद से ही संवाद करते हों ऐसे धीमे स्वर में बोले, "अपने शिष्यों के मरने का दृश्य आज भी मेरे समक्ष ज्यूँ का त्यूँ खड़ा हो जाता है और उनकी चीत्कारें आज भी मेरे कानों में गूँजती हैं।"

विषादपूर्ण हृदय लेकर पिता और पुत्र दोनों गाँव को लौटे। दो दिन में वे गोधूलि पहुँच गए।

आचार्य गौतम को उन्हें पुत्र के साथ वापस आते देखकर पहले तो आश्चर्य हुआ लेकिन यह जानकर कि ग्रहयोग अनुकूल होते ही द्वैप का यज्ञोपवीत संस्कार करना है, उन्हें बहुत खुशी हुई।

द्वैप के भी उत्साह का पार नहीं था। हरे पत्तों के तोरण बनाने और कदली स्तम्भ खड़े करने में उसने अन्य आश्रमवासियों का साथ दिया।

आचार्य की पत्नी शर्मी व आश्रम की अन्य स्त्रियाँ पंगु मुनि के प्रति आदर-भाव रखते ही थे किन्तु अब मुनि का यह हँसमुख और तेजस्वी पुत्र भी उन्हें प्रिय लग रहा था, जो ऋषि के ही समान आश्रम में घूमता-फिरता था, कितनी ही तरह के प्रश्न पूछ-पूछकर सभी को थका देता था और जहाँ कहीं काम पड़ा देखता, वहीं जुट जाता था।

महिलाओं के साथ काम करने का मौका मिलता तो वह उसका भी तत्परता से उपयोग करता। वह सोचता था कि यदि उसका जन्म दुबारा होना है तो उसकी माँ भी वहाँ उन्हीं महिलाओं के बीच कहीं जरूर प्रकट होगी।

मुनि ने ग्रहयोग देखा और यज्ञोपवीत का मुहूर्त निकाला।

समूचे गाँव में उत्सव का वातावरण था। घर-घर में हरे पत्तों के तोरण बँध गए थे।

आसपास के गाँवों में भी खबर पहुँच गई कि पंगु मुनि के पुत्र का यज्ञोपवीत होनेवाला है। खबर सुनकर वहाँ के स्त्री-पुरुष गोधूलि आश्रम में आ गए। शहनाईवादक, शंखवादक, दुन्दभिवादक आदि उत्सव में भाग लेने के लिए आए।

मुख्य कार्य शुरू होने से पहले मुनि ने ग्रहों का आह्वान किया, शुभ ग्रहों से सहायता करने की तथा अशुभ ग्रहों से शुभ दृष्टि रखने की प्रार्थना की।

अपनी माँ के बिना द्विज-संस्कार होता देखकर द्वैप को निराशा हुई, लेकिन उसने देखा कि उसके पिता के चेहरे पर भस्मक्षेत्र में जो वेदना छाई हुई थी वह अब विलीन हो गई है। अब उसके मन में यह हर्ष था कि वह खुद अपने पिता के साथ रहकर धर्मक्षेत्र की पुनः प्रतिष्ठा करेगा।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यज्ञोपवीत की विधि प्रारम्भ हुई। शुरू में आचार्य गौतम ने जल और आकाश के देवता वरुण का आह्वान किया; सप्तर्षियों का भी आह्वान किया–उन्होंने सात पुंगीफलों (सुपारियों) में स्थान ग्रहण किया। द्वैप को गौरव का अनुभव हो रहा था। द्विज बन जाने के बाद वह भी कभी सप्तर्षियों में स्थान ले सकेगा!

जब आचार्य गौतम ने अग्नि का आह्वान किया और यज्ञवेदी बनाकर उसमें घी का होम किया तो उन्होंने मन्त्रों का भी उच्चारण किया :

''दीर्घ आयुष्य देनेवाले हे अग्निदेव
मेरी प्रार्थना को स्वीकार करो!
अमृत के समान घी का पान करो...
पिता जिस प्रकार पुत्र का पालन करता है
आप भी वैसे ही इस बालक का
दीर्घायु तक पालन-पोषण करो।''

उचित मन्त्रों के साथ अन्य देवताओं का भी आह्वान किया गया। द्वैप को लगा कि ये सब देवता उसे आकाश से उतरते दिखाई दे रहे हैं। उसे लगा कि ये सभी देवता उसका ब्रह्मचर्याश्रम में स्वागत करने पृथ्वी पर एकत्रित हुए हैं।

मुनि ने आचार्य गौतम से अपने पुत्र का गुरु बनने की विनती की। द्वैप की इच्छा तो यही थी कि उसके पिता ही उसके गुरु हों, किन्तु आचार्य ने मुनि के सुझाव को सहर्ष स्वीकार कर लिया। द्वैप ने मन को समझाया आखिर गुरु के गुरु तो मेरे पिता ही हैं न!

आचार्य गौतम ने पवित्र दर्भ की बनी मेखला द्वैप की देह पर लपेटते हुए मन्त्रोच्चार किया :

''सत्य बढ़ाओ, तप बढ़ाओ और अनिष्ट का
संहार करो।
हे पवित्र मेखला, मैं तुम्हें पहनता हूँ,
और सभी दुखों से मुक्ति पाता हूँ।''

फिर आचार्य ने द्वैप को पहनने के लिए मृगचर्म दिया और कहा–

''सविता देवता (सूर्य) के तुम नेत्र हो,
तुम तेजोमय हो।
मैं मृगचर्म धारण करता हूँ, मुझे ज्ञान, आयुष्य और
तेजस्विता प्राप्त हो।''

आचार्य ने खड़े होकर पूर्व दिशा की ओर मुँह करके मन्त्रोच्चार किया और

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

द्वैप ने उन मन्त्रों का पुनरुच्चार किया :

"मुझे अब गुरु मिले हैं।
वे मेरे सम्मुख हैं।
इनकी कृपा से मैं सभी अनिष्टों पर
विजय प्राप्त करूँगा
और मृत्यु को भगा दूँगा।
मेरा जीवन पवित्र हो और उत्तम
विचारों से यह परिपूर्ण रहे।"

तब गुरु और शिष्य का संवाद आया। गुरु ने प्रश्न पूछे और जैसे आचार्य ने बताया, द्वैप ने उस तरह उनके उत्तर दिए–

"तुम किस कारण आए हो, वत्स?"

"मैं आपके पास ब्रह्मचर्य के लिए आया हूँ, मुझे स्वीकार करो।"

"तुम्हारा नाम क्या है?"

"मैं कृष्ण द्वैपायन हूँ, मुनि पराशर का पुत्र।"

इसके बाद आचार्य ने कहा–

"हे सूर्यदेव! यह बालक आपका ब्रह्मचारी है,
यह आपका पुत्र है, इसकी रक्षा करो।
इसकी सत्य धर्म की यात्रा पूरी हो–
ऐसी दीर्घ आयु इसे प्रदान करो।"

द्वैप का हृदय उत्साह से धड़क रहा था। उसकी आँखें उत्साह से चमक उठी थीं। वह अब द्विज बन गया था। उसने ब्रह्मचर्याश्रम में प्रवेश कर लिया था।

आचार्य ने द्वैप से कहा, "अब तू अपने पिता से यज्ञोपवीत धारण करने की अनुमति माँग।"

द्वैप ने पूछा, "पिताजी, आपकी आज्ञा मिले तो मैं यह यज्ञोपवीत धारण करके ब्रह्मचर्य का जीवनयापन करूँ।"

"हाँ, पुत्र मेरी आज्ञा है।" मुनि ने कहा।

फिर आचार्य ने मुनि के कान में कुछ कहा। इसमें 'माता' शब्द सुनकर द्वैप के कान खड़े हो गए और महिलाओं के समूह की ओर निहारा–कहीं उसकी माँ है कि नहीं? उसके मन में फिर प्रश्न पैदा हुआ, 'मेरी माँ की अनुपस्थिति में मैं द्विज कैसे बन सकता हूँ?'

मुनि द्वारा दिए गए निर्देशों के अनुसार आचार्य ने दूर्वादल लेकर वेदी के

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

समक्ष रखकर उस पर गन्ध-अक्षत-पुष्प अर्पित किए।

आचार्य ने कहा, "द्वैप, इस दूर्वादल में मैंने तेरी माता की प्रतिष्ठा की है। तू इनसे आज्ञा प्राप्त कर ले।"

द्वैप को निराशा हुई। लाचारी में उसने दूर्वादल-प्रतीक से आज्ञा माँगी। मुनि ने संकेत किया। अब वह चरम क्षण आ गया था। आचार्य ने प्रार्थना की और द्वैप ने उसको दोहराया :

"यह यज्ञोपवीत परम पवित्र है।
यह दीर्घ आयुष्य देता है, शक्ति देता है, पवित्रता देता है;
मैं इसे धारण करता हूँ,
यह मुझे आत्मशक्ति और प्राणशक्ति दे।"

दुन्दुभि बजने लगी। शहनाई गूँज उठी। शंख फूँके जाने लगे। जो द्विज थे उन्होंने ब्रह्मचारी पर अक्षतवर्षा की।

सूर्य चमक रहा था। द्वैप ने सूर्य की ओर देखा। उसके प्रभामंडल में जैसे कोई मन्द-मन्द मुस्कराता-सा चेहरा उसे दिखाई दिया। उसे विश्वास हो गया कि सूर्य भगवान की कृपा उस पर सदैव बनी रहेगी।

आचार्य ने प्रतिज्ञाएँ करवाईं :

"ये मेरी प्रतिज्ञाएँ हैं—
मैं शुभ को याद रखूँगा और अशुभ को भूल जाऊँगा;
मैं आस्थावान आचरण करूँगा, अनास्था को पास फटकने नहीं दूँगा;
मैं ज्ञान का मान करूँगा और अज्ञान को पास फटकने नहीं दूँगा;
मैं सत्य का अनुसरण करूँगा और असत्य को पास फटकने नहीं दूँगा;
मैं पवित्र जीवनयापन करूँगा और विलासिता को पास फटकने नहीं दूँगा।"

तब आचार्य ने उससे पूछा, "अब क्या तू द्विज बन गया?"

"हाँ।"

"शुद्धोदक का पान करेगा?"

"हाँ।" द्वैप ने शुद्ध जल का पान किया।

"क्या तू प्रतिदिन सन्ध्या करेगा?"

"हाँ।"

"भिक्षा माँगकर अन्न ग्रहण करेगा?"

"हाँ।"

"गुरु की आज्ञा का पालन करेगा?"

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"हाँ।"

द्वैप को दंड, कमंडल और कौपीन दिए गए। फिर आचार्य ने द्वैप के सिर पर वस्त्र ओढ़ाकर उसके कान में पवित्र गायत्री मन्त्र का उच्चारण किया।

इस मन्त्र को दोहराते हुए द्वैप का हृदय आह्लादित हो उठा–अब वह श्रुति का पाठ करने योग्य द्विज जो बन गया था! अब वह कभी-कभी देवताओं के साथ भी संवाद कर सकेगा। उसे विश्वास था कि वह अपने महान दादा वसिष्ठ-जैसा ऋषि बनेगा और पिता के साथ मिलकर धर्म-क्षेत्र की पुनः प्रतिष्ठा करेगा।

फिर सभी द्विज लोगों ने एक स्वर में कल्याण मन्त्र का उच्चार किया :

"व्यापक कीर्तिमान इन्द्रदेव सभी को कल्याण का आशीर्वाद दें;
सर्वज्ञ सूर्यदेव सभी को कल्याण का आशीर्वाद दें;
अशुभ वस्तुओं का संहार करनेवाले दिव्य गरुड़राज सभी पर कल्याणकारी कृपा बरसाएँ;
अलौकिक बुद्धि के स्वामी बृहस्पति सभी का कल्याण करें।"

द्वैप ने अपने पिता को इस मन्त्र का उच्चार करते कई बार सुना था और इसे उसने कंठस्थ कर लिया था। इसलिए आज वह इस मन्त्र का नितान्त शुद्ध सर्वथा त्रुटिरहित उच्चारण करने में सफल हो गया। छह वर्ष का द्वैप मन्त्र का शुद्ध उच्चारण कर रहा है, यह देखकर वहाँ उपस्थित सभी लोग मन्त्रमुग्ध हो गए।

बाद में मुनि ने द्वैप को अपने पास बिठाया और गले लगाकर कहा, "द्वैप, तू वसिष्ठ का वंशज है, इसलिए तुझे कुछ विशेष प्रतिज्ञाएँ लेनी होंगी।" द्वैप ने पिता की बताई ये प्रतिज्ञाएँ लीं–

"मैं किसी को भी पीड़ा नहीं दूँगा;
मैं दूसरों की, किसी की भी सम्पत्ति ग्रहण नहीं करूँगा;
मैं सदा सत्य ही बोलूँगा;
मेरे पास कभी कुछ देने योग्य होगा तो उपयुक्त समय आने पर उसे मैं किसी सुपात्र को ही दान करूँगा;
मैं युवतियों से बात नहीं करूँगा;
वासना और लोभ से मैं सदा मुक्त रहूँगा;
देवताओं और पूर्वजों की मैं सदा पूजा करूँगा;
मेरा जीवन श्रुति को समर्पित रहेगा;
श्रुति को धारण करनेवाले देवताओं की कृपा का मैं आकांक्षी रहूँगा।"

यह क्रिया जब पूरी हुई तब वहाँ उपस्थित समस्त द्विजों ने मंगलकामना की–

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"सभी लोग सुखी हों, सृष्टि में
सभी प्राणी निरोग हों, सभी
अपना तथा दूसरों का भला देखें (विचारें)–
सभी के भले की कामना करें–ताकि
किसी को भी कोई दुख न हो।"

मंगलकामना समाप्त हुई तब ग्रामवासियों का नृत्य व गीतों का कार्यक्रम हुआ और सबसे अन्त में सभी को तृप्त करनेवाला भोजनायोजन हुआ।

दोपहर के बाद द्वैप और पैल भिक्षा के लिए गाँव में गए। ग्रामवासी पंगु मुनि को बहुत प्यार करते थे, अतः उनके पुत्र को भिक्षा देने के लिए गाँव की एक-एक स्त्री उत्सुक थी। द्वैप की मधुर मुस्कान सभी को मोहित कर देती थी। वह गौरव के साथ सभी को आशीर्वाद देता था। सभी लोग उसे 'बाल-मुनि' कहकर पुकारने लग गए।

द्वैप जब भिक्षाटन पर निकला तब गाँव के लड़के उसके पीछे-पीछे फिरने लगे। लेकिन दो-तीन घरों से भिक्षा लेते ही उसका भिक्षापात्र भर गया। और भी कई स्त्रियाँ अपने-अपने द्वार पर भिक्षा देने के लिए खड़ी थीं। उनको निराश क्यों किया जाए? उसने अपने भिक्षापात्र की भिक्षा पीछे-पीछे फिरनेवाले उन लड़कों में बाँट दी। उसने किसी को निराश नहीं किया। वह हर घर में गया और हर बार उसने भिक्षा दूसरों में बाँट दी।

भिक्षा लेकर जब द्वैप आश्रम में लौटा तो उसका पात्र खाली था। मुनि को यह देखकर आश्चर्य हुआ। उन्होंने पूछा, "क्यों, क्या किसी ने भी तुझे भिक्षा नहीं दी?"

"सभी ने मुझे आवश्यकता से अधिक भिक्षा दी थी।" द्वैप ने उत्तर दिया।

"तो कहाँ गई वह भिक्षा?"

"उसे मैंने भूखे बालकों में बाँट दिया।"

"तू खुद क्या खाएगा?"

"मैं भोजन बिना चला लूँगा।" द्वैप ने कहा, "मेरी माँ भी पखवाड़े में एक बार उपवास किया करती थी। वे गरीब बालक इतने भूखे थे कि उनको मैं निराश नहीं कर सका।"

वह अभी यह बात कह ही रहा था कि कई और बालक दौड़कर वहाँ आ पहुँचे और हाथ फैलाकर आशाभरी नजरों से द्वैप से भोजन माँगने लगे। द्वैप की निराशा का पार न रहा क्योंकि अब उसके पात्र में कुछ भी शेष नहीं था। असहाय होने के कारण उसकी आँखों में आँसू उमड़ आए। लेकिन अपने पर काबू पाकर वह प्राणदाता सूर्य भगवान की प्रार्थना करने लगा–"हे भगवान सवितानारायण, मुझे भले भोजन न दें, लेकिन इन बालकों को सन्तुष्ट कर सकूँ इतना तो कृपया

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मुझे दे दो। आपने मेरी ओर मुस्कराकर देखा था। आपने मुझे भरोसा दिलाया था कि आप मुझ पर कृपा करेंगे। कृपा करो हे कृपानिधे!''

यह प्रार्थना उसके अन्तर्तम से उठी थी। अचानक उसे अपना पात्र भारी होता प्रतीत हुआ और उसमें देखते ही स्तब्ध रह गया। भगवान ने उसकी प्रार्थना सुन ली थी। जितना उन बालकों को दे सके उतना अन्न उस पात्र में आ गया था।

द्वैप ने समस्त बालकों में उसे बाँट दिया। फिर मुनि की तरफ घूमकर पूछा, ''पिताजी, मेरा पात्र कैसे भर गया? यह सब कैसे हो गया?''

पात्र का भरना मुनि पराशर ने स्वयं अपनी आँखों से देखा था। उनका हृदय आनन्द-विभोर हो गया। वे भगवान के संकेत की प्रतीक्षा में थे। अब उन्हें वह संकेत मिल गया था। उनके जीवन की असफलताएँ उनके पुत्र की विजय में बदल गई थीं।

अपने दोनों हाथ बढ़ाकर उन्होंने द्वैप को आलिंगन में ले लिया और कहा, ''बेटे, तेरे पास जो कुछ भी हो तू उसे देते रहना, और जो भी आवश्यक होगा वह तुझे भगवान प्रचुर मात्रा में देते रहेंगे।''

परिभ्रमण

मुनि ने चौमासा अपने शिष्यों के साथ गोधूलि आश्रम में ही बिताया और उसके पूरा होने पर वे अपने शिष्यों के आश्रमों की वार्षिक यात्रा पर निकले।

द्वैप को बारह वर्ष तक ब्रह्मचारी के रूप में अध्ययन करना था। यह उसके लिए कड़ी तपस्या का समय था। कड़ी तपस्या के बावजूद द्वैप के चित्त में सदा आनन्द का भाव बना रहता था। पिता के लिए उसके मन में प्रेम और आदर की भावना दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी।

वे लोग कभी नाव में सफर करते और कभी पैदल। और गाँववाले आदर के साथ जो भी देते उससे वे जीवनयापन कर लेते।

जब वे जंगल से होकर गुजरते तब मुनि वेदमन्त्रों का उच्चारण करते। जो जानते थे वे भी उनके साथ मन्त्रों का उच्चारण करते, जो नहीं जानते थे उनको स्वर-ताल और बलाघात के साथ सही ध्वनि में उच्चारण करना मुनि सिखा देते। द्वैप की स्मरण-शक्ति अद्‌भुत थी! जो मन्त्र वह दो-तीन बार बोल लेता वह उसे कंठस्थ हो जाता था।

नए-नए मन्त्र सीखने से द्वैप के सामने एक आकर्षक जगत खुलता चला जा रहा था। देवताओं की व्यक्तिगत प्रार्थनाओंवाले मन्त्रों में भी यही था और

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सामूहिक रूप से उनकी कृपा की याचना करनेवाले मन्त्रों में भी यही था। सुख, धर्ममय जीवन, युद्ध में विजय और सिद्धियों आदि के कई मन्त्र उसे आने लग गए थे।

शत्रुओं को परास्त करने के लिए शक्ति माँगनेवाला इन्द्र का मन्त्र वह जानता था। रात को चमकनेवाली असंख्य आँखों से त्रिकाल को देखनेवाले, अपने ही नियम से ब्रह्मांड को धारण करनेवाले आकाश तथा जल के देवता वरुण तथा आँधी-तूफान में रक्षा करनेवाले मरुत का मन्त्र भी उसे कंठस्थ था :

ऐसे मन्त्र भी थे जो यमदेव को रोके रखते या स्वास्थ्य-लाभ में सहायक होता या साँपों से रक्षा करते और ऐसे मन्त्र भी थे जो अनुकूल पत्नी या अनुकूल पति देने की क्षमता रखते थे।

दिन के समय पिता जब उसे रंगबिरंगे पंखों से सजे पक्षी दिखाते या सुन्दर रंगोंवाले पुरुष दिखाते या जड़ी-बूटियों के उपयोग द्वारा लोगों की पीड़ा व बीमारी दूर करना सिखाते तो उसकी खुशी का पार न रहता। और जो वनस्पतियाँ भविष्य में उपयोगी होतीं उनको असवल अपने कन्धों से लटकती झोली में डाल देता।

वर्षा न होती तो वे लोग खुले आकाश के नीचे मृगछाला बिछाकर सो जाते। सोने से पहले वे जंगली पशुओं से बचाव के लिए अग्निदेवता की प्रार्थना करते। द्वैप मृगछाला बिछाकर पिता के पास ही सोता और असंख्य तारों की सृष्टि के रहस्य को समझने के लिए प्रश्न पूछता।

यात्रा के समय वे बड़ी सड़कों और बड़े शहरों से बचकर चलते। लड़ाइयों का लाभ उठाकर कुछ लोग छोटे-छोटे शहरों के राजा बन बैठे थे। मुनि ऐसे शहरों को भी टालकर चलते।

द्वैप बड़ा हुआ तो उसके पिता ने उसे आश्रम-आश्रम परिभ्रमण करने का महत्त्व समझाया। उन्होंने कहा कि लड़ाइयों के बाद छोटे-छोटे गाँवों में स्थापित आश्रमों को एक बड़ी संख्या के अन्तर्गत संगठित किया जाए, ऐसी उनकी इच्छा है।

वे जिस आश्रम में जाते वहाँ पिता को खूब सम्मान मिलता। सभी उन्हें हृदय से चाहते थे और अधीरता से उनकी प्रतीक्षा करते थे। इन यात्राओं का विविध आश्रमों के बीच स्नेह-सम्बन्ध स्थापित करने और समान अनुशासन का आधार बनाने में विशेष महत्त्व था।

द्वैप ज्यों-ज्यों बड़ा होता गया त्यों-त्यों उसके मन में पिता के प्रति आदर बढ़ता गया। पिता जिस कुशलता से आश्रमवासियों का हृदय जीत लेते और उनको धर्म-मार्ग पर जाने की प्रेरणा देते, इससे वह दंग रह जाता।

प्रत्येक आश्रम में आचार्य-पद पर पिता का ही कोई वयोवृद्ध शिष्य होता था।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अन्य अनेक ब्रह्मचारी शिष्य भी वहाँ होते थे। आचार्य व मुख्य शिष्यों की पत्नियाँ और उनकी सन्तान आदि भी आश्रम में रहते थे।

मुख्य कुटिया के सामने रात और दिन यज्ञवेदी की पवित्र अग्नि जलती रहती। उसके पीछे आश्रम की गौशाला होती। प्रत्येक आश्रम-जीवन का केन्द्र पवित्र अग्नि-पूजन और दिव्य स्तुति-उच्चारण हुआ करता था।

जिस किसी आश्रम का आचार्य उनका अल्पशिक्षित शिष्य होता वहाँ उच्चारण में शिथिलता नजर आती और आर्यदृष्टि से जीवन-प्रणाली का स्तर भी घटिया होता था। वेदपाठ का स्वर भी वहाँ शुद्ध नहीं होता था।

लेकिन ऐसे आश्रमों में जाने पर पिता आश्रमवासियों की भूलें सुधारने या उनको डाँटने में नहीं लग जाते थे। वे स्वयं मन्त्रों का उच्चारण करते जाते और उनका अनुसरण करते आश्रमवासियों को स्वतः ही अपना उच्चारण-दोष खटकने लगता।

स्त्रियाँ आलसी होतीं और सवेरे ब्राह्ममुहूर्त में उठकर काम में लगने की बजाय देर से उठतीं और गप्पों और खिल-खिल हँसने में ही समय गँवा देतीं। ऐसी स्त्रियों को बिना डाँटे-डपटे वे प्रातः ही चुपचाप गौशाला पहुँच जाते। साथ ही द्वैप भी होता और दोनों शिष्य भी! वे सभी मिलकर गौशाला की सफाई करते, गायों को नहलाते, और उन्हें दुहने के लिए तैयार करते। देर से जगनेवाली स्त्रियाँ जब यह देखतीं तो दौड़कर वहाँ आतीं और मारे लाज के उसी काम को पुनः करने का अभिनय करतीं, लेकिन दूसरे दिन ब्राह्ममुहूर्त में उठकर काम करने का अवसर न चूकतीं।

मुनि, द्वैप, असवल और पैल स्नान करके प्रातः वन्दना करने बैठ जाते। आलसी आचार्य और उनके शिष्यों पर इसका भी असर होता। वे दौड़कर आते और उनके साथ आ बैठते।

बाद में सभी लोग यज्ञवेदी के आसपास बैठ जाते और मुनि मन्त्रोच्चार शुरू करते। पिता के शुद्ध उच्चारण के साथ स्वर मिलाने और अपना उच्चारण सुधारते जाने का काम आश्रमवासियों पर आ पड़ता।

आसपास के गाँववाले अत्यन्त अधीरता से उनकी प्रतीक्षा करते, आश्रम पर पहुँचने का समाचार पाते ही उनके अभिवादन के लिए उमड़ पड़ते और साथ में अग्निदेव के लिए कुछ-न-कुछ भेंट चढ़ावा लेकर आते। इस तरह आश्रम और आजू-बाजू के गाँवों के बीच स्नेह-सम्बन्ध स्थापित हो जाता।

उसके पिता लोगों का दुख-दर्द दूर करते, घरेलू या पारिवारिक झगड़े सुलझाते और गाँव का पारस्परिक वैमनस्य दूर करने में भी सहायता करते। इससे उनके आपसी विवाद समाप्त हो जाते और प्रेम-स्नेह से रहने लगते। ग्रामीणजन पिता

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

से अपना-अपना भविष्य जानने को भी अधीर और उत्सुक रहते थे।

लोगों पर पिता का जो प्रभाव पड़ता था द्वैप को उसका रहस्य बाद में समझ में आया। पिता आश्रमवासियों को यही शिक्षा देते कि उन्हें खुले में रहना है और केवल उतना ही संग्रह करना है कि जितना तीन दिन में समाप्त हो जाए।

एक आश्रम में मुनि ने देखा कि स्त्रियाँ जरूरत से ज्यादा अनाज का संग्रह कर रही हैं। उनसे उन्होंने कहा कुछ नहीं और अतिरिक्त अनाज गाँववालों में बाँट दिया।

एक अनुभव तो ऐसा हुआ जिसे द्वैप कभी नहीं भूलेगा। वे लोग जब एक आश्रम में पहुँचे तो वहाँ बिलकुल भी अनाज नहीं था। गाँववालों ने भी कोई भेंट-दक्षिणा नहीं दी और जब द्वैप तथा पैल भिक्षा लेने गाँव में गए तो लोगों ने अपने दरवाजे बन्द कर लिये।

इस पर मुनि ने कहा, ''ईश्वर की इच्छा है कि आश्रम की गायों के दूध पर ही हम सब निर्भर रहें।'' लेकिन फिर ज्ञात हुआ कि दूध भी इतना नहीं कि सबके हिस्से आ जाए! इसलिए मुनि ने अपने हिस्से का दूध बच्चों को दे दिया। औरों ने भी मुनि का अनुसरण किया। पर यह ध्यान मुनि ने रखा कि उस अवधि के दैनिक कार्यों में कोई निक्षेप न आए। गाँववालों पर इसका तुरन्त प्रभाव पड़ा। उन्होंने अपनी भूल स्वीकार की और अगले दिन आश्रमवासियों के लिए फल तथा अनाजादि ले आए।

कुछ आश्रमों के प्रति निकटवर्ती गाँवों के लोग द्वेष-भाव भी रखते थे। उनके बारे में मुनिवर का कहना था कि वे इसी योग्य हैं! वे बराबर यही कहते थे 'तुम्हारे प्रति यदि कोई बुरा व्यवहार करता है तो सम्भव है तुमने ऐसे व्यवहार के योग्य पात्रता प्राप्त कर ली है।'

एक जगह जब मुनि पहुँचे तो आश्रम के आचार्य और शिष्य वहाँ से आश्रम हटाने की योजना बना रहे थे।

मुनि ने उनसे पूछा, ''आप किसलिए इस जगह को छोड़कर जा रहे हैं?''

आचार्य ने उत्तर दिया, ''यहाँ का वातावरण अनुकूल नहीं है। गाँववाले ध्यान में बाधा पहुँचाते हैं, यज्ञवेदी पर पानी डाल जाते हैं और कभी-कभी तो आश्रम की गायें ही चुरा ली जाती हैं!''

मुनि ने आचार्य के कन्धे पर स्नेह से हाथ रखते हुए कहा, ''इससे आश्रम क्यों छोड़ते हो? हमारे विश्वास की परीक्षा का इससे बढ़िया स्थान और क्या हो सकता है? यहाँ हमने देवताओं का आह्वान किया है। श्रुतियों का पाठ करके इस स्थान को पवित्र बनाया है, जिससे अब यह एक तीर्थ बन गया है जहाँ दूसरे लोगों को धर्मनीति सीखने आना चाहिए।''

 CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

आचार्य ने हाथ जोड़कर कहा, "यहाँ के लोग दुष्ट हैं! हमने उन पर विजय पाने का प्रयास किया था, लेकिन हमें सफलता नहीं मिली।"

मुनि ने अत्यन्त भावपूर्ण स्वर में कहा, "यदि आसपास के लोगों को आप अपने समर्पित जीवन और अनुशासनपूर्ण आचरण से जीत नहीं सकते तो द्विज रूप में आपके कर्तव्य में जरूर कोई चूक हुई है। हमारा कर्तव्य है, अध्ययन करना, अध्यापन करना और धर्माचरण सिखाना। हमने श्रुतियों का उच्चारण गलत किया होगा या पूजा में किसी भूल से अग्निदेव को नाराज कर दिया होगा?"

"गाँववाले किसी दिन हमें मार डालेंगे।" आचार्य ने कहा।

"यदि गाँववाले तुम्हें मारने के लिए आएँ तो वेद-पाठ करते हुए यमराज के द्वार पर पहुँच जाओ। मेरे पितामह वसिष्ठ ने यही किया था।" द्वैप के पिता ने कहा। कुछ आश्रमों के लोगों को जंगली जानवरों का भय सताता था। उनसे मुनि कहते, "तुम्हें चाहिए कि तुम स्नेह से, वात्सल्य से, इन पशुओं पर विजय प्राप्त करो। जब जन्तु तुम पर हमला करें तब भागो मत! यदि भागोगे तो वे समझेंगे तुम उनके दुश्मन हो और इसीलिए वे तुम्हें मार डालेंगे। लेकिन यदि तुम अग्निदेव का आह्वान करो और दिन-रात अग्नि-पूजा करो तो जानवर अपने आप भाग जाएँगे।"

घूमते-घूमते जब उनको आठ वर्ष हुए तब पैल के ब्रह्मचर्याश्रम के बारह वर्ष भी पूरे हो गए। अतः एक दिन उसे विधिपूर्वक गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करा दिया गया।

पैल और द्वैप के बीच स्नेह का दृढ़ सम्बन्ध स्थापित हो गया था। पैल को जब कोई मन्त्र याद नहीं होता तो वह द्वैप के पास उसे याद करने आ बैठता। पैल विनम्र था, उसमें कोई मिथ्याभिमान नहीं था। वह द्वैप को नन्हे गुरु के रूप में आदर देने लगा था।

इस प्रकार वे लोग करीब दस वर्ष तक यमुना किनारे के आश्रमों में घूमते रहे।

दसवें वर्ष मुनि ने विविध आश्रमों के आचार्यों को विश्वास में लेकर धर्मक्षेत्र के पुनर्निर्माण की बात की और कहा, "अगले दो वर्षों में हमें बद्रीनाथ की यात्रा पर जाना है। क्या आपके शिष्यों में से इस विकट यात्रा में कोई हमारे साथ चलना चाहेगा?"

अनेक युवा विद्यार्थी चलने को तैयार हो गए, लेकिन मुनि प्रत्येक आश्रम से एक-एक अर्थात् केवल बीस ब्रह्मचारी ही ले जाना चाहते थे। इसलिए मुनि पराशर और शिष्यों समेत कुल चौबीस लोग धीरे-धीरे बद्रीनाथ की ओर बढ़ने लगे। रास्ते में वे उन आश्रमों में भी रुकते रहे जो धर्मक्षेत्र से बच निकले द्विजों ने

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

स्थापित किए थे।

यमुना-तट पर बसे आश्रमों से ये आश्रम बिलकुल भिन्न थे। यहाँ कोई वरिष्ठ शिष्य नहीं पहुँच पाया था। सभी को हैहयों ने मार डाला था, इसलिए यहाँ जो भी शिष्य थे उनमें सच्ची आर्य परम्परा बनानेवाला कोई नहीं था। उनके लिए धर्मक्षेत्र और उसकी आचार-संहिता अतीत बन गई थी। उनके होंठों पर अब वसिष्ठ, विश्वामित्र, जमदग्नि, अंगिरा, शुन्नशेप इत्यादि महान ऋषियों के नाम नहीं थे। युद्ध ने सभी परम्पराओं को नष्ट कर डाला था। वे या तो ग्रामवासियों की कृपा पर जीते थे या उन लोगों की कृपा पर जीते थे जिन्होंने आर्य-साम्राज्य के टूटने पर छोटी-छोटी रियासतें बना ली थीं और उनके सरदार बन बैठे थे। फलस्वरूप इस आश्रमवासियों ने उनके पिता का आधे मन से स्वागत किया। पर वे उन्हें टाल नहीं सकते थे। सहस्रार्जुन का मुकाबला करने और एक महान शिक्षक होने के नाते वे जनश्रुतियों में स्थान पा चुके थे। लेकिन उन लोगों ने जब उसके पिता और उनके शिष्यों को कठोर अनुशासन का पालन करते देखा और कठोरता के साथ शुद्ध उच्चारण पर बल देते देखा तो उन्हें मुनि की सेवा में उपस्थित होना व्यर्थ लगने लगा।

उसके पिता आश्रमवासियों को कहा करते थे कि आसपास के गाँववाले स्वेच्छा से जो दें उसी पर भरोसा रखें। द्वैप को लगा कि उसके पिता की यह सलाह आश्रमवासियों को मूर्खतापूर्ण नजर आती है लेकिन पिता की विद्वत्ता और नैतिकता के सामने वे कुछ बोल नहीं सकते थे, पीठ-पीछे दे उनकी हँसी जरूर उड़ाते होंगे, ऐसा उसे विश्वास हो गया था।

इस बीच वे हिमालय पर जा पहुँचे और हिमाच्छादित बद्री नामक स्थान पर नर-नारायण नाम के प्राचीन ऋषियों के आश्रम में पहुँच गए। फिर उन्होंने भगवान शिव के निवास-स्थान कैलास की यात्रा की।

द्वैप अठारह वर्ष का हो गया था। ब्रह्मचारी जीवन के बारह वर्षों के दौरान उसने ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद पर अधिकार प्राप्त कर लिया था। जितना उसके पिता को आता था उतना अथर्ववेद का अंश भी उसे कंठस्थ हो गया। कर्मकांड का भी उसे पूरा ज्ञान था।

द्वैप का व्यक्तित्व भी अब अपने पिता जैसा ही प्रेरणाप्रद बनने लगा था।

अब उसका शरीर बलवान हो गया था और ललाट पिता के समान चौड़ा। उसकी गहरी काली आँखों में स्नेह की चमक थी। वह उसको भोजन कराने के बाद भोजन करता और यदि दूसरों को खिलाने के बाद कुछ नहीं बचता तो उपवास करता, इस कारण उसे सभी का प्रचुर प्रेम प्राप्त हो गया था। पिता के शिष्यों द्वारा स्थापित आश्रमों पर अब द्वैप का भी पिता जैसा ही प्रभाव पड़ने लगा था।

CC-0 Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ब्रह्मचारी जीवन के बारह वर्ष अब पूरे होने को थे, इसलिए उसके पिता शिष्यों सहित वापस गोधूलि की ओर चल दिए, जहाँ द्वैप का गृहस्थाश्रम प्रवेश-संस्कार कराने की उनकी योजना थी।

कल्पी से परिचय

पिता और पुत्र, असवल और पैल तथा विविध आश्रमों के बीस ब्रह्मचारियों ने धर्मक्षेत्र में जाने की तैयारी शुरू कर दी। मुनि जानते थे कि इस महत्त्वाकांक्षी राह में कितनी कठिनाइयाँ हैं। परन्तु उनका ईश्वर में विश्वास था। भगवान सूर्य ने द्वैप के पात्र को अन्न से भर दिया, उसके बाद तो उन्हें इसमें लेशमात्र भी शंका नहीं रही कि ईश्वर की यही इच्छा है कि धर्मक्षेत्र की पुनःप्रतिष्ठा हो।

उनको मार्ग में कुछ ऐसी यात्री भी मिले जो धर्मक्षेत्र हो आए थे। उन्होंने बताया कि उसे अब कुरुक्षेत्र कहते हैं क्योंकि कुरुओं ने अन्त में हैहयों को वहाँ से मारकर भगा दिया था। पवित्र सरस्वती नदी लगभग सूख चली है, कहीं-कहीं कुछ अंश बचे हैं जो झीलें बन गए हैं और उनको जोड़नेवाले कुछ उथले नाले।

पिता, पुत्र और शिष्य चलते जाते थे और विचार करते जाते थे कि धर्मक्षेत्र की पुनःप्रतिष्ठा वे अब कैसे करेंगे, कैसे वे अब सरस्वती को पूर्ववत् प्रवाहित होने योग्य बना देने के लिए देवताओं से प्रार्थना करेंगे और कैसे जंगली जानवरों और राक्षसों से रक्षा का प्रबन्ध करेंगे। वे यह भी योजना बनाने में लगे हुए थे कि आश्रमों का निर्माण कैसे करेंगे, कैसे धर्म को नवजीवन देने के लिए आर्यावर्त के द्विजों को उधर आकर्षित करेंगे, आर्यों और देवताओं के बीच पितामह वसिष्ठ के समय में जैसा संवाद हुआ करता था, ऐसा संवाद किस प्रकार आयोजित करेंगे और अन्त में वेदों की अखंड प्रतिष्ठा किस प्रकार स्थापित करेंगे।

असवल को यह सब बहुत कठिन लगता था। जहाँ कोई संकट नहीं होता वहाँ उसे संकट दिखाई देता था।

कोई समस्या बताओ, मुनि का एक ही जवाब होता था—अटल और दृढ़ जवाब कि वे श्रुति के लिए, शब्द के लिए, काम कर रहे हैं और शब्द ही उनकी रक्षा करेगा।

गोधूलि से अपनी विकट यात्रा पर निकलने से पहले मुनि, द्वैप, आचार्य गौतम और शिष्यगण भस्मक्षेत्र से अन्तिम विदा लेने गए।

जब वे उस क्षेत्र के पास पहुँचे तब मारे गए अपने शिष्यों, शील गँवानेवाली या राक्षसों द्वारा शीलभंग होने से पूर्व ही अग्नि में प्रवेश कर प्राणों की आहुति दे

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

देनेवाली स्त्रियों की तथा मारी गई अपनी गायों की याद करके मुनि की आँखों में आँसू आ गए।

अब वे वृद्ध हो गए थे, अतः इस स्थान पर वापस आने की कोई आशा नहीं थी।

अब मुनि का एकमात्र ध्येय धर्मक्षेत्र की पुनःप्रतिष्ठा करना ही था, अब वे श्रोत्रियों के पावन मन्त्रोच्चार से धर्मक्षेत्र को गूँजता हुआ सुनने के लिए ही जीवित थे।

गोधूलि की ओर लौटने को वे मुड़े ही थे कि पास ही झाड़ी में से भेड़िए का एक झुंड निकला और मुनि और उनके शिष्यों को देखकर उन पर झपटा। सभी अपने प्राण बचाने के लिए भागे किन्तु मुनि पैर के कष्ट के कारण तेजी से भाग नहीं सके।

किसी को कुछ पता चले कि क्या हो रहा है, इससे पहले ही भेड़ियों ने एक साथ मुनि पर हमला करके उन्हें लहूलुहान कर दिया और उनके कंठ में गड़े नाखूनों में उनकी अन्तिम चीख भी दबकर रह गई।

अन्य लोग लाठियाँ उठाकर जब वापस उधर आए तो भेड़िए भाग तो गए किन्तु धरती पर खून से लथपथ मुनि की मृत देह ही पड़ी मिली।

द्वैप का हृदय खंड-खंड हो गया। उसके मुख से एक आर्त चीत्कार निकली और वह पिता की मृत देह से लिपटकर 'पिताजी, पिताजी...' पुकारता हुआ रोने लगा। आचार्य गौतम ने उसे खड़ा किया।

मुनि की देह को आचार्य उठाना चाहते थे किन्तु द्वैप ने उन्हें रोका और जैसे किसी बच्चे की देह हो ऐसी आसानी से उसने अपने पिता की देह को उठा लिया। शोकाकुल होने के बावजूद उसने स्वयं ही उस देह को ले चलने का आग्रह बनाए रखा।

इस घटना के विषय में जिसने भी सुना वही स्तब्ध रह गया। समूचा गोधूलि गाँव दुख के सागर में डूब गया। सभी शोकाकुल ग्रामवासी मुनि के अन्तिम दर्शन करने को आए।

अवसादपूर्ण हृदय से द्वैप ने पिता की देह को चिता पर रखा और उनका अन्तिम संस्कार किया। द्विजों के मन्त्रोच्चार के बीच मुनि की देह अग्नि को समर्पित कर दी गई।

आश्रम और गाँवों में बारह दिन तक मुनि के देहावसान का शोक रखा गया।

बारहवें दिन द्वैप ने पवित्र लाजा-पिंड का विभाजन किया; मुनि पराशर यमभूमि छोड़ पितृभूमि में चले गए।

बारह दिन तक द्वैप विषाद की प्रतिमूर्ति बना मौन बैठा रहा। उसकी आँखों

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

में आँसू नहीं थे। उसके होंठ भिंचे हुए थे। पिता द्वारा बताए गए मार्ग पर अब वह उनकी बिना सहायता के भी जाने की शक्ति बटोर रहा था।

तेरहवें दिन आचार्य गौतम ने द्वैप से कहा, "द्वैपायन, तू अब धर्मक्षेत्र में जाने का विचार छोड़ दे। यह तेरा ही आश्रम है। मैं जो कुछ भी हूँ वह तेरे पिता के कारण ही हूँ—अपने गुरु के कारण ही हूँ। मेरे हृदय में उनका पिता से भी ऊँचा स्थान है। अब तू इस आश्रम का आचार्य पद स्वीकार कर ले। तू उम्र में ही छोटा है, लेकिन इस पद के लिए पूर्ण योग्य है।"

द्वैप ने नम्रतासहित हाथ जोड़कर कहा, "गुरुश्रेष्ठ, मैं आपका शिष्य हूँ। यह आश्रम मेरा एकमात्र घर है। लेकिन अपने पिता के अन्तिम संकल्प को पूरा करने का प्रयत्न मुझे करने दीजिए। वे पितृलोक में गए हैं लेकिन वहाँ से मुझे धर्मक्षेत्र में जाने का आदेश दे रहे हैं। मुझे वहाँ जाना ही चाहिए।"

आचार्य गौतम ने द्वैप को आखिरी बार और समझाया, "द्वैपायन, तुझे किन-किन समस्याओं का सामना करना होगा, यह तू अभी जानता नहीं। यात्रियों का कथन यदि सच है तो वहाँ दिन में भी जंगली जानवर घूमा करते हैं और रात तो वहाँ भयानक होती ही है। वहाँ कोई आश्रम नहीं है और श्रुति की तो प्रतिध्वनि भी वहाँ कहीं सुनाई नहीं पड़ती।"

द्वैप ने गुरु के चरण-स्पर्श किए और कहा, "गुरुश्रेष्ठ, मैंने अपने पिता के समक्ष प्रतिज्ञा की है कि मैं धर्मक्षेत्र की पुनः प्रतिष्ठा करूँगा। पिछले बारह वर्षों में निरन्तर हमने इसकी योजना बनाई है। अब मैं उस प्रतिज्ञा को भंग नहीं कर सकता। कृपया मुझे क्षमा करें और अपने रास्ते पर जाने दें।"

आचार्य ने शंका व्यक्त की, "यह संकल्प करने के बाद तेरे पिता पर एक के बाद एक आपत्तियाँ आती रही हैं और अब तो उनका कोई भी शिष्य धर्मक्षेत्र में जाने को तैयार नहीं है।"

"वे सच्चे हैं और मेरा यह आग्रह भी नहीं है कि वे मेरी बात मानें।"

"तू अकेला ही जाएगा?" आचार्य ने पूछा।

"हाँ, कुछ भी हो, मैं वहाँ जाऊँगा जहाँ जाने का संकल्प मेरे पिता ने किया था।" द्वैप ने कहा और थोड़ी देर चुप रहकर फिर बोला, "पितृलोक में पिताजी के पास भी जाना पड़े तो वहाँ भी जाऊँगा, लेकिन अपनी प्रतिज्ञा नहीं तोड़ूँगा। मेरी यह भी इच्छा नहीं है कि मेरे साथ कोई और भी हो। कल ही रात में मैं यहाँ से चुपचाप निकल जाऊँगा और आगे जाकर नाव में बैठ जाऊँगा।"

"तू कहाँ जाएगा? नाव तो नीचे की ओर जाती है।" आचार्य ने कहा।

"मैं बराबर आपकी आज्ञा मानूँगा," द्वैप ने आचार्य से कहा, "लेकिन इस प्रकरण में आप मुझे इच्छा के अनुसार करने दें।"

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"द्वैपायन, मुनि की मृत्यु भी ईश्वर का कोई संकेत है, क्या तुम्हें ऐसा नहीं लगता?"

"हाँ गुरुदेव, परन्तु इसी संकेत से तो मुझे अधिक बल मिला है। पिताजी जब से मुझे कल्पी से लाए तब से वे कभी भी उस टापू की तरफ वापस नहीं गए। उन्होंने कहा था कि धर्मक्षेत्र जाने से पहले एक बार तुझे जरूर कल्पी ले जाऊँगा और तेरी माता से मिलाऊँगा। धर्मक्षेत्र जाने से पहले मैं एक बार माँ से मिल लेना चाहता हूँ, उनका आशीर्वाद ले लेना चाहता हूँ। फिर जो होगा सो होगा। आप तो गुरुदेव, कृपा करके मुझे आशीर्वाद दीजिए और पिता का संकल्प पूरा करने की शक्ति मुझे ईश्वर देता रहे, ऐसी प्रार्थना कीजिए।"

द्वैप ने जिस दिन जाने का निश्चय किया था उस रोज उषाकाल होने से पहले ही मृगछाला पहन ली, दंड-कमंडल ले लिया और तब आचार्य के साथ नदी-तट पर गया।

नाविकों ने द्वैप को प्रणाम किया और उसे यथेष्ट सत्कार दिया।

नाव आगे बढ़ चली कि इतने में, नदी में, जैसे किसी ने डुबकी लगाई हो और तैरता हुआ नाव की तरफ आ रहा हो, ऐसी आवाज सुनाई दी। नाविकों ने नाव को धीमा कर दिया। पैल तत्काल नाव में आ गया।

"द्वैप, तू मुझे छोड़कर नहीं जा सकता," पैल ने कहा, "तू जहाँ जाएगा वहीं मैं तेरे साथ चलूँगा।" द्वैप ने पैल को गले लगा लिया।

दूसरे दिन सवेरे नाव कल्पी पहुँची। द्वैप ने अपने दादा के टापू की हालत देखी। वहाँ जीवन का कोई चिह्न नहीं था, यह देखकर उसे धक्का लगा।

नाविकों से यह कहकर कि दो दिन बाद वापस लौटते हुए वे उन्हें भी ले लें, द्वैप, पैल के साथ छिछले पानी में उतर गया और चलता हुआ किनारे पर पहुँचा।

जिस खम्भे से उसके घर की नाव बाँधी जाया करती थी वह खम्भा ही गायब था। दो कुटियाएँ भी गायब हो गई थीं और तीसरी टूटी पड़ी थी।

द्वैप ने मन-ही-मन ईश्वर से प्रार्थना की। लगा कि ईश्वर बढ़-चढ़कर उसकी परीक्षा ले रहा है।

पैल ने द्वैप के कन्धे पर हाथ रखा। द्वैप एक शब्द भी नहीं बोला। एक आँसू तक नहीं गिराया।

फिर वे खाड़ी के सामनेवाले मछुआरों के गाँव में गए। बारह वर्षों में उस गाँव में कोई विकास हुआ हो, ऐसा नहीं लगा।

द्वैप को दो जवान दिखाई दिए। उनमें से एक मछली साफ कर रहा था, दूसरा जाल को जोड़ रहा था। द्वैप और पैल को ऋषि समझकर उन्होंने प्रणाम किया। द्वैप ने उनको आशीर्वाद दिया लेकिन अपनी माँ या दादा के विषय में कुछ

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पूछने का साहस नहीं कर सका।

एक अधेड़ उम्र का मछुआरा वहाँ आ पहुँचा। हाथ जोड़कर उसने पूछा, ''मैं आपकी किस रूप में मदद कर सकता हूँ? आपको किसी वात की जरूरत हो तो कहिए!''

द्वैप ने उसे आशीर्वाद देते हुए कहा, ''हमें किसी चीज की जरूरत नहीं है।''

''आप हमारे यहाँ भोजन करने पधारें, इस समय आप भूखे होंगे।'' मछुआरा बोला।

उसका यह निमन्त्रण उन्होंने स्वीकार कर लिया और उसकी कुटीर पर गए। मछुआरे की वृद्धा माँ ने आँखों पर हाथ का छज्जा बनाकर द्वैप और पैल की तरफ झाँक-झाँककर देखा।

''माता,'' द्वैप ने पूछा, ''सामनेवाले टापू पर जो रहते थे वे लोग कहाँ चले गए?''

''वे लोग!...'' वह स्त्री तिरस्कार से बोली, ''वे लोग तो चले गए। उन पर यमुना माँ का शाप पड़ा था।'' शाप के भय से उस वृद्धा ने अपने कानों को छुआ।

''शाप! शाप किसलिए?'' द्वैप ने आश्चर्य से पूछा।

''हाँ, एक पंगु मुनि थे। वे हर वर्ष उन लोगों से मिलने आते थे। उनके आशीर्वाद से वे सम्पन्न थे।'' वह बोली। वृद्धा ज्यों-ज्यों बोल रही थी त्यों-त्यों द्वैप के दिल का भार बढ़ता जा रहा था। वृद्धा ने आगे कहा, ''उन लोगों ने पंगु मुनि के प्रति कोई अपराध कर डाला और पंगु मुनि तथा उनके पुत्र को निकाल दिया, इस कारण यमुना माँ ने उनको शाप दिया।''

''फिर?'' द्वैप ने पूछा।

''उनकी पुत्री ही उनके दुर्भाग्य की जड़ थी। वह बहुत अभागी थी। कोई भी मछुआरा उससे विवाह करने को तैयार न था। यदि उससे कोई विवाह कर लेता तो उसको और उसके परिवार को यमुना माँ के शाप का शिकार होना पड़ता।''

द्वैप का कंठ रुँध रहा था, जैसे-तैसे उसने अपने-आपको नियन्त्रित रखते हुए पूछा, ''फिर उस पुत्री का क्या हुआ?''

''एक बार वह किसी राजा को नाव में बैठाकर ले आई। वह राजा कौन था यह तो नहीं मालूम, लेकिन बाद में एक राजा रथ लेकर आया और उस निर्लज्ज लड़की को अपने साथ लेकर चला गया!''

''उसके माता-पिता का क्या हुआ?'' द्वैप ने उमड़ते आँसू दबाते हुए पूछा।

''वे राजा के आदमियों के साथ बैलगाड़ी में बैठकर कहीं चले गए।'' वृद्ध महिला ने तिरस्कार के साथ कहा।

''क्या आपको पता है वे कहाँ हैं?'' द्वैप ने पूछा।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"मुझे पता नहीं और मुझे पता करना भी नहीं है!" वृद्धा ने कहा, "बूढ़ा जरूथ अपनी बेटी के समान ही निर्लज्ज था! उसने अपनी बेटी को बेच दिया!"

"जरूथ और उसका कुटुम्ब गया। उसके बाद क्या उस टापू पर अब कोई भी नहीं रहता?" द्वैप ने पूछा।

"नहीं, वहाँ रहने की हिम्मत अब कोई नहीं करता, अब वह एक शापग्रस्त जगह है! इसीलिए तो हमारे गाँव को शाप लगा है!"

"ऐसा आप किस आधार पर कहती हैं?" द्वैप ने पूछा।

"क्योंकि जरूथ और उसकी पत्नियों ने मिलकर पंगु मुनि को निकाल दिया! जरूथ की पत्नी चन्दोदरी मेरी चचेरी बहन थी, लेकिन वह मुझसे घृणा करती थी!"

"क्या तुम पंगु मुनि को जानती थीं?" द्वैप ने पूछा।

"बिलकुल, मैं उन्हें अच्छी तरह जानती थी," बूढ़ी मछुआरिन ने कहा और आह भरी, "यदि यहाँ वह एक बार भी आ जाते तो पवित्र अग्नि जलाकर देवताओं का आह्वान कर इस स्थान का शाप दूर कर देते!"

"आदरणीय मुनि अब पितृलोक को चले गए हैं। मैं उनका शिष्य हूँ। उस शाप को क्या मैं दूर कर सकता हूँ?" द्वैप ने पूछा।

शाम को द्वैप और पैल खाड़ी पार करके उस पार गए और जो कुटिया गिर गई थी उसी के पास सोए! द्वैप वहाँ सोना चाहता था जहाँ उसकी माँ यदि मिल जाती, तो सोता।

अगले दिन गाँव के मछुआरों की उपस्थिति में द्वैप और पैल ने पूरे समारोह सहित पवित्र अग्नि जलाई और वरुण, अग्नि, सूर्य तथा यमुना माता का आशीर्वाद माँगकर गाँव पर पड़े शाप को दूर किया।

द्वैप की प्रार्थना पर गाँववालों ने उसे एक घड़ा दिया, जिस पर मिट्टी का छोटा-सा ढक्कन था। द्वैप ने गुड़ व नींबू मँगवाया, पीपल का एक पत्ता लिया, उसे घड़े में रखकर उस पर गुड़ व नींबू रखा और ढक्कन बन्द कर दिया।

फिर उस पात्र को उन्होंने गहरी उसाँस लेकर नदी में बहा दिया।

"यह क्या किया, द्वैपायन?" पैल को यह संस्कार विचित्र लगा।

द्वैप की आँखें दुख से डबडबा गई थीं। उसने करुण स्वर में कहा, "माँ और मेरे बीच एक समझौता हुआ था। यदि लहू मुझ पर गुस्सा करेगी तो मुझे उसे पीपल का एक पत्ता देना होगा। यह क्षमा का एक प्रतीक था। यदि मैं रूठता तो वह मुझे पीपल का पत्ता देती जिसका अर्थ यह होता कि उसने मुझे मना लिया है और मैंने उसे स्वीकार कर लिया है।"

"लेकिन इस घड़े को आपने नदी में क्यों तैरा दिया?" पैल ने पूछा।

"माँ कहाँ है इसका पता नहीं।" द्वैप थोड़ी देर नदी की तरफ देखता रहा,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

फिर बोला, ''माँ जहाँ भी होगी यमुना माता इस पात्र को वहाँ ले जाएगी। और मैं जो माँ को छोड़कर चला गया था इस त्रुटि के लिए मुझे क्षमा कर देगी।''

तीसरे दिन सवेरे द्वैप और पैल को लेने के लिए नाव वापस आई। गाँव के मछुआरों ने उन्हें फिर कभी आने का निमन्त्रण दिया।

'पता नहीं मैं कभी वापस आऊँगा या नहीं, लेकिन माता,'' उसने वृद्धा को सम्बोधित करते हुए कहा, ''यदि मैं आ भी गया तो शायद हम मिल नहीं पाएँगे। इसलिए माँजी, क्या आप मुझ पर एक कृपा करेंगी?''

''तुम जो कहोगे वही करूँगी,'' बुढ़िया ने उत्तर दिया। ''नन्हे मुनि, तुमने शाप दूर करके हमारा उद्धार कर दिया है।''

''तो कृपया उस लड़की के बारे में कोई बुरा भाव मन में न रखें!''

''अरे, वह तो निर्लज्ज लड़की थी। कोई भी भली माँ अपने वच्चे को इस तरह अपने से अलग करना कभी पसन्द नहीं करती!'' वह बोली।

''मैं मत्स्यगन्धा का लड़का हूँ।'' द्वैप ने कहा।

बुढ़िया भौंचक रह गई और उसे डर हुआ कि नन्हा मुनि उन्हें कोई शाप न दे दे! बोली, ''कृपया क्षमा करें। हम पर कुपित न हों। हमें आशीर्वाद प्रदान करें!''

''मेरा आशीर्वाद है। लेकिन एक बात याद रखना कि उस मछुआरी लड़की ने अपने जिस पुत्र को अपने से अलग किया था इसमें उस पुत्र का ही भला था।'' द्वैप ने कहा।

नाव में बैठने से पहले द्वैप यमुना के किनारे खड़ा हो गया और उदास आँखों से उसे देखता रहा—यमुना माता ने ही उसे अपनी गोद में झुलाकर बड़ा किया था। ऊपर सूर्य चमक रहा था। उसने दोनों किनारों की ओर देखा। दोनों ओर वही पेड़ खड़े हुए थे।

जिस तरह उदास होकर वह बचपन में पश्चिमी क्षितिज की ओर देखा करता था वैसे ही उसने आज भी उस ओर देखा।

क्षणभर के लिए वह अतीत में चला गया। उसे लगा कि माँ अभी आकर उस पर नाराज होगी कि वह इस तरह खड़ा-खड़ा क्यों प्रतीक्षा किया करता है? इससे उसके हृदय में अचानक एक तीखा दर्द उठा। माँ यहाँ तो नहीं है! वह कहाँ गई, किसके साथ गई, यह किसी को ज्ञात नहीं था। अब उसे कौन कृष्ण कहकर पुकारेगा? एक क्षण के लिए उसके हृदय में सन्नाटा छा गया। वह अतीत अब कभी वापस नहीं आएगा। अब वह वैसा बालक कभी नहीं बन सकता जो यहाँ खड़ा होकर पिता की प्रतीक्षा किया करता था; और जब तक वह खुद पितृलोक को नहीं चला जाता तब तक उसके पिता भी उसे नहीं मिलेंगे। अब न तो वह माता की वात्सल्यपूर्ण मुस्कान पा सकता है और न किनारे के पास आती नाव

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

में बैठ पिता को देखकर नदी में कूद सकता है।

उसने यमुना माँ से प्रार्थना की–"मेरी माँ जहाँ भी हो, उसे आप वहीं सुखी रखें।"

पितृलोक में पिता की रक्षा के लिए और माँ जहाँ भी हो, वहीं उसकी रक्षा के लिए वह देवताओं से प्रार्थना करता रहा। मन्त्रपाठ करते हुए उसे लगा कि शरीर में एक नई शक्ति भरती जा रही है।

अब वह अकेला नहीं था। श्रुतियाँ उसके साथ थीं। अब वह धर्मक्षेत्र की पुनः प्रतिष्ठा कर सकेगा।

भेड़ियों का क्षेत्र

द्वैपायन और पैल ने नाव छोड़ दी और दोनों एक अच्छी-सी जगह पर उतर गए। वहाँ से एक पगडंडी के सहारे उन्होंने अपनी यात्रा शुरू की। पैल, द्वैपायन के प्रति पूज्य भाव रखता था लेकिन स्वभाव से चिड़चिड़ा था। चिढ़ जाने पर वह देवताओं, ऋषियों और मुनियों को भी नहीं छोड़ता था।

आखिर दोनों किशोर ही थे। जब कभी उत्साह होता तब दौड़ने की होड़ करते, वृक्षों पर चढ़ते, आपस में मजाक करते, मुनि पराशर के साथ बिताए वर्षों को याद करते या कुछ काल्पनिक कहानियाँ गढ़ लेते।

यात्रा के दौरान गाँववालों की मनमर्जी मेहमानदारी पर रहते। जहाँ कोई आतिथ्य को तैयार न होता वहाँ वे जंगली फल खाकर ही दिन गुजार लेते। कई बार बिना भोजन ही गुजार लेते। हास-परिहास करते और अनेक मनोरंजक बातों को दोहराते हुए ताजा करते रहते।

पैल कहता, "हे गुरुश्रेष्ठ, आपका पात्र तो हमेशा अन्न से लबालब रहता है, लेकिन आप अकेले ही उसका भोग लगा लेते हैं। अपने शिष्य को नहीं देते!" फिर आकाश की ओर देखकर कहता, "हे भगवान सवितानारायण, ऐसे स्वार्थी गुरु से क्या लाभ जो शिष्य को भूखा रखे!"

जवाब में द्वैपायन गम्भीर बन जाते और वयोवृद्ध ऋषि का अभिनय करते हुए कहते, "वत्स, मुनि पराशर कहा करते थे कि आप अच्छे शिष्य नहीं बनेंगे तो अच्छे गुरु भी नहीं बनेंगे! लेकिन देखो, भगवान बड़े कृपालु हैं! मेरा पात्र अन्न से लबालब है। इसमें से जितना तुझे चाहिए, ले ले!" ऐसा कहकर वह अपना खाली पात्र पैल की तरफ बढ़ा देते। पैल उस पात्र से भोजन करने का अभिनय करता। फिर पेट पर हाथ फेरकर कहता, "आज तो बहुत ज्यादा खा गया।" और

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दोनों हँस पड़ते।

पैल भूखे बालकोंवाला चमत्कार भी समझ नहीं पाता था। शिकायत करता हुआ कहता, "भगवान भूखे बालकों के लिए तो तुम्हें अन्न देते हैं पर मेरे लिए नहीं देते, ऐसा क्यों? उन्हें बेचारे इस पैल पर जरा भी दया नहीं आती जो पूरा सा। दिन और आधी रात उनका आवाह्न करने में बिता देता है, ऐसा क्यों?"

तब द्वैपायन बुजुर्ग की तरह गम्भीर होकर उत्तर देता, "हे वत्स, यदि तुम अपने लिए ही अन्न माँगोगे तो भगवान तुम्हें कभी अन्न नहीं देंगे, ऐसा मुनि पराशर कहा करते थे।" और दोनों फिर हँस पड़ते। लेकिन द्वैपायन, पैल को बार-बार विश्वास दिलाता, "हम आश्रम स्थापित करेंगे तो भूखों को पहले भोजन कराएँगे और हम बाद में किया करेंगे। हमें जीवित रखना है या नहीं यह काम भगवान पर छोड़ देंगे। हम, जो श्रुतियों को अपना जीवन अर्पित कर चुके हैं अब जीते हैं कि मरते हैं, यह चिन्ता उनकी है।"

रास्ते में चलते-चलते भी वे मन्त्रों का उच्चारण करते जाते जिनमें भगवान से प्रार्थना होती कि वह धर्मक्षेत्र की पुनः प्रतिष्ठा करने में उनकी सहायता करें। और कभी-कभी वे मुनि से सीखे हुए मन्त्रों को विषयवार याद करने का अभ्यास भी करते।

सरस्वती के किनारे रहनेवाले ऋषियों ने जो मन्त्र सिखाए थे उनका वर्गीकरण करना कठिन नहीं था। उनमें आह्वान और प्रार्थनाएँ थीं जिन्हें 'ऋक्' कहा जाता था। कुछ मन्त्र यज्ञ में देवता की प्रतिष्ठा करने में काम आनेवाले थे इन्हें 'यजू' नाम दिया जाता था, कुछ में संगीत का लयात्मक स्वर होता था, उनको 'स्याम' नाम के वर्ग में रखा जाता था। इस प्रकार त्रयी विद्या उत्पन्न हुई।

पिता जिसको अथर्वण शाखा कहते थे, उसका अभ्यास करने में भी द्वैपायन को काफी कठिनाई होती थी।

इन मन्त्रों का उपयोग वनस्पति में विशेष चमत्कारी शक्ति उत्पन्न करने में होता था। ऐसे मन्त्र भी थे जो शत्रुओं को जीतने में, भय को दूर करने में, संकटों से बचाव में, प्रेम प्राप्त करने में, राक्षसों को भगाने में, भविष्य की पूर्वसूचना प्राप्त करने में तथा रोगों से मुक्ति पाने में काम आते थे।

पिता कहा करते थे कि भृगु-अंगिरस या अथर्वण-अंगिरस कहलानेवाले ऋषियों के पास इन मन्त्रों का भंडार था। ये ऋषि धर्मक्षेत्र के ऋषियों से अलग रहा करते थे। वे उनसे मिलते नहीं थे। उनकी मान्यता थी कि श्रुति या शब्द के चार प्रकार हैं।

युद्ध हुआ तो ये भृगु-अंगिरस ऋषि दुर्गम जंगलों में चले गए थे। कभी-कभी मुनि पराशर महाअथर्वण जाबालि नामक ऋषि का जिक्र किया करते थे। वे बहुत

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रतापी ऋषि थे। अत्यन्त शक्तिशाली थे।

द्वैपायन ने तय किया कि धर्मक्षेत्र में स्थापित होने के बाद वह अथर्वण शाखा के किसी गुरु से इन चमत्कारी मन्त्रों को सीख लेंगे।

चलते-चलते वे गाँववालों से कुरुक्षेत्र का रास्ता पूछते जाते। कई बार गलत रास्ता बता दिया जाता। कोई-कोई कहता, "अब कुरुक्षेत्र है ही कहाँ? हाँ, भेड़िए का क्षेत्र जरूर है। जाना हो तो जाओ उस भयंकर प्रदेश में।"

अन्त में वे एक घने जंगल के पास पहुँचे। वह जंगल काँटेदार झाड़ियों, विशाल वृक्षों और जंगली लताओं से भरा हुआ था। अन्दर जाने का कोई रास्ता नहीं था। मात्र जंगली जानवरों के चलने से बनी पतली-पतली पगडंडियाँ थीं।

वे सरस्वती नदी के सहारे-सहारे चले। ऋषियों ने इसे 'ज्ञान की पवित्र माता' घोषित किया था। कभी यह नदी बहुत गहरी और चौड़ी थी। पर अब सँकरे नाले-सी हो गई थी। द्वैपायन ने देखा तो उदास हो गया। यह वही सरस्वती नदी थी जिसकी महिमा श्रुतियों में गाई गई है। अब तो यह पाँच सरोवरों को जोड़नेवाली साधारण-सी शृंखला का काम कर रही है! ये पाँच सरोवर 'स्यमन्तक पंचक' के नाम से जाने जाते थे जिन्हें युद्ध के समय परशुराम ने शत्रुओं के रक्त से भर दिया था।

धर्मक्षेत्र की यह देशा देखकर द्वैप और पैल घबरा गए। यह तो भस्मक्षेत्र से भी ज्यादा भयानक दृश्य है। मनुष्यों और पशुओं की हड्डियाँ तथा रथों के टूटे हिस्से बिखरे पड़े थे। नेत्रहीन खोपड़ियों के विकराल गड्ढे खाली भयावनी नजरों से उनकी ओर देख रहे थे। लगता था नजरें देखनेवालों को बींध देंगी। कहीं-कहीं कुटियाओं के खँडहर थे, सड़े-गले बाँस थे, किन्तु जीवित मनुष्य एक भी दिखाई नहीं पड़ता था।

एक सरोवर के किनारे उन्होंने रहने योग्य भूखंड चुना, उसकी सफाई की, समिधाएँ एकत्रित कीं, वेदी बनाई और यज्ञ तथा भोजन करने के लिए कुछ फल इकट्ठे किए। इसके बाद उन्होंने वेदी पर अग्नि प्रज्वलित की।

जब तक यज्ञ-क्रिया पूरी हुई तब तक शाम हो गई। सायंकाल का भोजन करके उन्होंने मृगचर्म बिछाए और यज्ञवेदी की अग्नि के पास ही सो गए।

सर्दी की रात थी। आधी रात के बाद ठंड बढ़ी तो उन्होंने बिछाई हुई मृगछालाएँ ओढ़ लीं और जमीन पर पड़े रहे।

यात्रा की थकान के कारण पैल को सोते ही नींद आ गई। द्वैपायन को नींद नहीं आई। वह धर्मक्षेत्र को उसकी सम्पूर्ण भव्यता के साथ पुनः खड़ा करना चाहते थे, उसी की चिन्ता उन्हें सता रही थी। उनकी आँखों में धर्मक्षेत्र का आदर्श रम रहा था। वह आकाश में ऊँचे उठते यज्ञ धूम के बादल देख रहे थे। द्विजों द्वारा

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उच्चरित श्रुति मन्त्रों की ध्वनि उनके कानों में गूँज रही थी।

रात की शान्ति भंग करती हुई कुछ सनातन आवाजें उन्हें सुनाई पड़ती थीं– पत्तों के हिलने की आवाज, सरिता की मन्द कलकल और बीच-बीच में हिंस्र पशुओं की आवाजें!

द्वैप की आँखें धीरे-धीरे अँधेरे के अनुकूल हो गईं और वे पेड़ों व कई प्राणियों की आकृतियाँ देखने लगे।

थोड़ी देर बाद द्वैपायन को अर्द्धनिद्रावस्था में एक दुःस्वप्न दिखाई दिया। उन्हें लगा कि रात्रि का वातावरण सहसा विषाद से भर गया है और मनुष्यों के हाथ-पैर सहारा पाने को तड़प रहे हैं। साथ ही युद्ध में मरे व्यक्तियों की कराहें भी सुनाई दीं।

तीखी हवा चलने लगी। पैल ने हाथ-पाँव समेट लिए और गठरी बना सोता रहा। वह गहरी नींद में था परन्तु उसके मुँह से ठंड महसूस होने की सी-सी और कँपकँपाहट बराबर सुनाई पड़ रही थी। द्वैप उठ बैठे। उन्होंने अपना मृगचर्म पैल को ओढ़ा दिया, स्वयं वेदी की अग्नि के पास जाकर बैठ गए और अग्निदेव से ऊष्मा देने की प्रार्थना करने लगे।

अचानक उनके कानों में आवाज आई, 'कृष्ण, तू कहाँ है? मेरे पास क्यों नहीं आता?' यह सुनकर वे रोमांचित हो उठे। यह उनकी माँ की आवाज थी। उन्होंने आँखें फाड़-फाड़कर आसपास देखा, पर पैल के सिवाय तो कोई भी अन्य मनुष्य आसपास नहीं था। लेकिन यह स्वर तो बिलकुल उनकी माँ का था। वह चक्कर में पड़ गए और बोल पड़े, 'माँ, तू कहाँ है?' फिर सूर्यदेव से प्रार्थना करने लगे, "हे सूर्यदेव, मुझे मेरी माँ के पास ले चलो!"

अब उनकी आँखों की नींद पूर्णतया विलीन हो गई थी। वेदी के अंगारों में उन्हें जैसे आँखें चमकती नजर आईं। वे आँखें एकटक उन्हीं की ओर देख रही थीं। उन्होंने सोचा, रीछ होगा। वेदी के पास आ-आकर वापस लौटती कुछ काली आकृतियाँ भी उन्हें दिखाई दीं। उन्होंने कुछ और समिधाएँ अग्नि में डालकर आग तेज कर दी।

माँ की मधुर आवाज की स्मृति ने द्वैप को उदास बना दिया और वह माँ से मिलने को अधीर हो उठे। पर वे जानते थे कि माँ से मिलने का प्रयत्न कितना निरर्थक है। उन्हें यह भी पता नहीं था कि माँ जीवित है या मर चुकी है। लेकिन ज्यों-ज्यों वे माँ की याद करते गए त्यों-त्यों उन्हें हृदय की गहराइयों में यह विश्वास होता गया कि 'भगवान जरूर मुझे मेरी माँ से मिलने का मार्ग बताएँगे।' विह्वल होकर वे ईश्वर से प्रार्थना करने लगे।

द्वैप यह कामना कर रहे थे कि माँ की आवाज उन्हें फिर सुनाई दे, लेकिन निराशा हुई। यह तो निश्चय था कि कहीं-न-कहीं माँ उसकी प्रतीक्षा कर रही है,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

किन्तु कहाँ, यह अभी तक ज्ञात नहीं हो पा रहा था। उनकी आँखों में अश्रु छलक आए। हृदय छलनी-छलनी होने लगा।

पौ फटने पर द्वैप ने देखा कि कुछ खरगोश पिछले पाँवों पर बैठे अपनी नन्ही आँखों से उनकी ओर टकटकी लगाए हुए थे, वेदी के पास बैठा एक हिरण नीचा सिर किए उन्हें निहार रहा था और उनसे थोड़ी दूर पीछे खड़े भेड़िए भी उसी ओर ताक रहे थे। भेड़िए शायद यह तय नहीं कर पा रहे थे कि उकड़ूँ बैठा यह व्यक्ति उनके भय का कारण बनने योग्य शिकारी है या उनका सम्भावित लक्ष्य एक शिकार!

पैल जब जागा तो उसने इन प्राणियों को द्वैप की ओर ताकते पाया। वह भय से काँप उठा। आँखें बन्द कर वह द्वैप से चिपट गया।

द्वैप ने वेदी में और अधिक समिधाएँ होम दीं। अग्नि भभक उठी। पैल और द्वैप दोनों एक-दूसरे से चिपटे बैठे रहे।

पक्षियों का कलरव सुनाई पड़ा तो सारा जंगल जाग उठा और भेड़िए झाड़ियों में ओझल हो गए।

द्वैप खड़े हुए, अँगड़ाई ली और पैल के साथ सरोवर में स्नान करने चले गए। "पहले हम नित्यकर्म से निवृत्त हो जाएँ तब जंगल से फल इकट्ठा करेंगे।" द्वैप ने कहा।

नित्यकर्म से निवृत्त हो उन्होंने अग्निपूजा की और फिर फलाहार किया। पैल के मन से अभी भय निकला नहीं था। उसने पूछा, "यहाँ से हम कहाँ जाएँगे? अच्छा तो यह रहेगा कि हम वापस लौट चलें।"

"वापस लौटने की क्या जरूरत है?" द्वैप ने विस्मय-विस्फारित नेत्रों से उसकी ओर देखते हुए कहा, "मान लो हम लौट भी गए, तो भी हमें धर्मक्षेत्र की पुनर्स्थापना करने के लिए आना तो यहीं पड़ेगा।"

"नहीं, यह सम्भव नहीं है। यह भूमि तो देवताओं और ऋषियों के श्राप से ग्रस्त है!" पैल ने कहा।

द्वैपायन ने सिर हिलाया, "तेरी बात गलत है। यह धर्मक्षेत्र है। मुझे यहाँ उच्चरित हुए वेद-मन्त्रों की गूँज सुनाई पड़ रही है। मैं यहाँ की यज्ञवेदियों का धूम आकाश में फैलता महसूस कर रहा हूँ।"

"मुझे तो यहाँ भेड़ियों की आवाजों और खरगोशों की उछलकूद के सिवाय और कुछ भी सुनाई-दिखाई नहीं पड़ रहा है।" पैल ने कहा।

"ठीक है, तब भेड़ियों के लिए हमारा मांस दावत उड़ाने के काम आएगा।" द्वैप ने हँसकर कहा, "लेकिन तू ऐसा कर कि अब गोधूलि-आश्रम को चला जा। जब धर्मक्षेत्र की पुनर्स्थापना की समस्त तैयारियाँ हो जाएँगी तब मैं तुझे बुला लूँगा।"

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"लगता है तेरे दिमाग में कुछ भूसा भर गया है!" पैल ने कृत्रिम रोष के साथ कहा।

"नहीं, मेरे दिमाग में एक सच्ची धुन घुस गई है," द्वैप ने माथा ठोंककर कहा, "मैंने पिता को वचन दिया था कि हम धर्मक्षेत्र की पुनर्स्थापना करेंगे; और अब मुझे स्पष्ट दिख रहा है कि यह काम कैसा होगा।"

"तुम यह काम पूरा करोगे मुझे तो ऐसी कोई सम्भावना नजर नहीं आती।" पैल ने निराश स्वर में कहा, "तू अब प्रेमपूर्वक अपने पूर्वजों के पास पहुँच जाएगा। उसके बाद मैं इस सरोवर में कूदकर अपने प्राण तज दूँगा। यहाँ कोई भी जीवित नहीं बच सकता।"

"हम इसीलिए तो यहाँ आए हैं।" द्वैप ने हँसकर कहा।

"अब यदि यही तेरी योजना है कि हमारा अन्त हो जाए तो मेरे कहने से पहले एक काम कर कि एकाध प्रहार मेरे मस्तक पर करके मुझे जल्दी ही यमराज के द्वार पर पहुँचा दे। इससे मुझे एक निश्चित ठौर-ठिकाना तो मिल जाएगा।" पैल ने कहा।

"नहीं, पैल, तू जीवित रहे इसी में मुझे आनन्द है, इसीलिए मैं तुझे गोधूलि जाने को कह रहा हूँ। तेरी जरूरत होगी तब मैं तुझे बुला लूँगा।" द्वैपायन ने कहा।

पैल ने माथा पीटकर कहा, "बेचारे पैल की मुसीबतों का कोई अन्त ही नहीं है! वह तुझे जंगल में छोड़कर जा भी नहीं सकता और मूर्खतापूर्ण साहस के लिए निकले इस पागल गुरु के साथ रह भी नहीं सकता!" उसका स्वर अब और भी कातर हो गया। बोला, "मुझे विश्वास है, भेड़िए मेरा भोग लगा लेंगे और तब तू मुझे यहाँ लाने के लिए पछताएगा।"

द्वैप ने हँसकर पैल की पीठ पर स्नेह-भरा हाथ फेरते हुए कहा, "पैल, इतना उदास मत हो। यह मूर्खतापूर्ण साहस का कार्य नहीं है। हम जब तक कोई प्रेरणास्थल स्थापित नहीं कर लेते तब तक धर्म की सही समझ पैदा ही नहीं कर सकेंगे। इसलिए धर्मक्षेत्र की स्थापना जरूरी है।" और मुस्कराते हुए पुनः कहा, "मैं जानता हूँ कि तुझे मेरा विश्वास सत्य नहीं लगता है। इसी कारण मैं तुझे बिना बताए गोधूलि से निकल पड़ा था।"

"ठीक है, ठीक है।" पैल ने कहा, लेकिन उसके मन से अभी तक मृत्यु का भय गया नहीं था, "तुझे जो करना है वही कर, लेकिन मैं यदि मर गया तो इसकी जिम्मेदारी तुझ पर होगी। वरुण भगवान सभी को देखते हैं। द्विज की मृत्यु हुई तो वे तुझे कभी क्षमा नहीं करेंगे।"

द्वैप ठठाकर हँस पड़े, "यम से तुझे प्रेम हो गया लगता है। ठीक है। जब

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तुझे मृत्यु प्राप्त हो जाएगी तब मैं तेरा अन्तिम संस्कार विधिपूर्वक कर दूँगा, ताकि पितृलोक में तेरी-मेरी फिर मुलाकात हो सके। वहाँ वेदपाठ करने में मुझे तेरा साथ जरूरी है। चल, समय गँवाना उचित नहीं है।''

''यदि पूज्य मुनि जीवित होते तो मैं उनसे कहता कि वे तुझे एक तमाचा लगा दें।'' पैल ने कहा, ''तब तो तू उनके पाँव पड़ता और क्षमा माँगता।''

''तू अपने हाथ से ही क्यों नहीं लगा देता?'' द्वैपायन ने पूछा।

पैल ने एक बार फिर माथा ठोंका और कहा, ''गुरु बनाने के बाद अब मैं भला तुम पर हाथ कैसे उठा सकता हूँ? लेकिन हम कहाँ जा रहे हैं यह तो बताओ!''

''इसका मुझे कुछ भी पता नहीं, पर ईश्वर हमें सही मार्ग पर ही ले जाएगा। पहले हम यज्ञवेदी का विसर्जन कर दें।''

द्वैपायन और पैल पवित्र अग्नि को बुझाने ही वाले थे कि सामने की झाड़ियों से पाँच-छह राक्षस हाथों में बाँस लिए नंगे निकल आए। वे चीत्कार करते हुए आए और जब तक दोनों को इस भयावनी स्थिति का बोध हो उससे पहले ही एक राक्षस ने पैल के सिर पर वार कर दिया और पैल तत्क्षण बेहोश होकर गिर पड़ा। दूसरे ने द्वैपापन की पीठ पर प्रहार किया। तीसरा यज्ञवेदी को दूषित करने लगा।

प्रहार होते ही द्वैपायन भी जमीन पर लुढ़क गए, उनका सिर घूमने लगा। लगा कि अब जो अगला प्रहार हुआ तो वह खत्म, लेकिन दूसरा प्रहार आया ही नहीं।

अर्द्धचेतन अवस्था में वे राक्षसों के पाँवों की आवाजें और चीत्कार सुनते रहे और फिर बेसुध हो गए।

महा अथर्वण जाबालि

द्वैपायन को होश हुआ तब उन्हें यह ज्ञान नहीं था कि वह कितनी देर तक बेहोश रहे थे। बस इतना ही याद था कि जिस दूसरे प्रहार की उन्हें आशंका थी वह उन पर पड़ा नहीं था। अब उन्होंने अपने इर्द-गिर्द आर्यभाषा में कुछ लोगों को बोलते सुना। कोई आदमी उनके घाव का उपचार कर रहा था, जिससे उन्हें बहुत दर्द हो रहा था।

उन्होंने आँखें खोलीं। चार-पाँच द्विज उन्हें होश में लाने की कोशिश कर रहे थे। उनके शरीर पर जनेऊ पड़ी थी। इसी से लगता था कि वे द्विज थे। पैल को

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ढूँढ़ने के लिए उन्होंने आजू-बाजू नजर घुमाई, लेकिन पैल वहाँ नहीं था। द्वैप ने बैठने की चेष्टा की लेकिन बैठ नहीं सके और इस चेष्टा में दुर्बलतावश पुनः अचेत हो गए।

दोबारा चेतना लौटी तो आँखें खोलीं, जोर लगाकर पूरी खोलीं और फिर बैठने की कोशिश की। दो आदमियों के सहारे से इस बार वह बैठने में सफल हुआ।

उनमें से एक युवक था, लगभग उन्हीं की उम्र का, मृगचर्म पहने हुए। उसके चेहरे की अभिव्यक्ति और नजरों की मृदुता को देखकर द्वैप को लगा कि वह सौम्य स्वभाव का होगा।

द्वैपायन ज्योंही उठकर बैठे त्यों ही उसने पुकारा, "पिताजी, द्विज होश में आ गया है!"

द्वैपायन ने आसपास देखा। आसपास बैठे लोगों ने एक व्यक्ति को आने का मार्ग दिया। आनेवाला व्यक्ति कोई प्रतिष्ठित मुनि प्रतीत हो रहा था। आयु से अत्यन्त वृद्ध था। क्षीणकाय देह की तुलना में मस्तक भारी था और वार्द्धक्य के कारण चेहरा कुछ पीला पड़ा हुआ, किन्तु किसी दैवी चमक से भरा लगता था। कमर कुछ झुकी हुई, किन्तु लाठी का थोड़ा ही सहारा लेते हुए बड़े-बड़े कदमों से वे आगे आए।

द्वैपायन ने मुनि को साष्टांग प्रणाम करने का प्रयत्न किया, लेकिन मुनि ने गम्भीर मन्द स्वर में कहा, "ऐसी मूर्खता मत करो।" और हाथ उठाकर सोए रहने का संकेत किया। फिर उन्होंने द्वैप की सेवा में खड़े युवक से पूछा, "सुमन्तु, अब यह कैसा है?"

सुमन्तु द्वैपायन की पीठ पर कुछ पत्तों का सेंक कर रहा था। उसने मुनि की ओर मुड़कर कहा, "ये शीघ्र ही स्वस्थ हो जाएँगे, पिताजी। लेकिन इनको कुछ भारी चोट यहाँ लगी है।" सुमन्तु ने द्वैप की पीठ पर चोट का उभरा हुआ निशान दिखाते हुए कहा।

"वत्स, अब तुम्हें कैसा लगता है?" वृद्ध ने द्वैपायन की ओर देखते हुए पूछा। उनके गम्भीर चेहरे पर सहसा वात्सल्यपूर्ण मुस्कान आ गई थी।

"अब मैं ठीक हूँ," द्वैप ने तीव्र पीड़ा होते हुए भी हँसने की चेष्टा करते हुए कहा। हाथ जोड़कर उन्होंने पुनः कहा, "पूज्य मुनि, मेरा प्रणाम स्वीकार कीजिए। आपने मुझे जीवनदान दिया है, लेकिन मेरा मित्र पैल कहाँ है?"

"तू उसकी चिन्ता मत कर," मुनि ने कहा, "मैं उसे यमराज के पास से भी वापस ले आऊँगा। लेकिन तू कौन है?"

द्वैपायन ने हाथ जोड़कर आदरपूर्वक कहा, "मैं श्रोत्रिय हूँ, श्रुति को प्रतिश्रुत एक द्विज।"

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

''राक्षसों ने तुम पर हमला किया तब तुम क्या कर रहे थे?'' वृद्ध मुनि ने पूछा।

''होम पूरा करके यज्ञवेदी को उठानेवाले थे।'' द्वैप ने उत्तर दिया।

''आप लोग इस शापित भूमि पर आए ही क्यों?''

द्वैपायन के चेहरे पर हलकी-सी मुस्कान खिल उठी, ''जिस भूमि को आप जैसे महामुनि का चरण-स्पर्श प्राप्त हो उसे शापित कैसे कहा जा सकता है?'' उसने पूछा।

इस प्रशंसा का मुनि पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। उन्होंने यज्ञवेदी की ओर देखकर पूछा ''आप लोगों ने अग्निदेवता को आहुति तो बराबर दी थी कि नहीं?''

''जी, लेकिन इस जंगल में राक्षस घूमते हैं यह ज्ञान हमें नहीं था।''

''वह तो ठीक है पर आज अमावस्या का दिन है, नहीं तो हम यहाँ आए ही नहीं होते।'' वृद्ध मुनि ने कहा और फिर पूछा, तेरा क्या नाम है?''

''मेरा नाम द्वैपायन है।'' द्वैपायन ने उत्तर दिया।

''तेरे मित्र का क्या नाम है?''

''उसका नाम है पैल।''

''तुम दोनों द्विज हो?''

''हाँ, महामुनि!'' द्वैपायन ने कहा।

''तुम दोनों मूर्ख हो! इस जगह पर क्यों आए?'' वृद्ध मुनि ने कहा।

''मेरे पिता ने और मैंने प्रण लिया था कि हम धर्मक्षेत्र की पुनःप्रतिष्ठा करेंगे। दुर्भाग्य से पिताजी का देहावसान हो गया, नहीं तो वे भी मेरे साथ यहाँ आ गए होते।''

वृद्ध हलके-से हँस पड़े। बोले, ''तुम जानते नहीं कि यह भूमि शापित है? युद्ध में मारे गए लोगों की प्रेतात्माएँ यहाँ के वायुमंडल में घूम रही हैं।''

वृद्ध मुनि की आज्ञा से उनके कुछ शिष्यों ने द्वैपायन तथा पैल द्वारा बनाई गई वेदी को बड़ी कर दिया। जो शिष्य नहा चुके थे, उन्होंने उस वेदी पर पवित्र अग्नि प्रज्वलित की और फिर मन्त्रोच्चारण करने लगे। उस विशाल यज्ञवेदी को द्वैपायन विस्फारित नेत्रों से देखता रह गया।

इस बीच वृद्ध मुनि द्वैपायन के पास आए। उन्होंने सुमन्तु से एक लकड़ी का टुकड़ा लिया और मन्त्र पढ़कर उसे डोरी से दूर्वादल के साथ उसके दाएँ बाजू पर बाँध दिया। बाँधते समय वे बराबर मन्त्र-जाप करते रहे।

''अब खड़े हो जाओ द्विज और चलकर दिखाओ!'' मुनि ने आदेश दिया। द्वैपायन के लिए उठना मुश्किल हो रहा था। मुनि ने उस पर दृढ़तापूर्वक दृष्टि जमाकर फिर आदेश दिया, ''खड़ा हो जा, चलकर दिखा...!''

द्वैपायन अपनी दृष्टि मुनि पर से हटा नहीं पा रहे थे। इच्छाशक्ति से वह

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

शून्य हो गए थे। यन्त्रवत् खड़े हुए और पाया कि उनकी समस्त पीड़ा आश्चर्यजनक ढंग से दूर हो चुकी है।

"मेरे पीछे-पीछे आओ!" महामुनि ने आदेश दिया।

द्वैपायन को लगा जैसे आकाश में तैर रहे हों और महामुनि के पीछे-पीछे चलते गए।

शिष्यों ने महामुनि के लिए आदरपूर्वक हटकर जाने का मार्ग दिया। द्वैपायन उनके पीछे-पीछे हाथ जोड़े चल रहे थे। उन्होंने सुमन्तु से कहा, "जाने कैसा विचित्र-सा लग रहा है।" सुमन्तु यह सुनकर मात्र मुसकरा दिया। तब उन्होंने फिर सुमन्तु से पूछा, "इस महामुनि का नाम क्या है?"

"तुझे पता भी नहीं?" सुमन्तु ने आश्चर्यचकित होकर पूछा, "ये तो गुरुओं के भी गुरु महाअथर्वण जाबालि हैं–जीवन एवं मृत्यु के स्वामी!"

द्वैपायन का मुख विस्मय से फैल गया। पिता जिनका नाम कई बार गम्भीर प्रसंगों में सम्भ्रम लिया करते थे, इन अथर्वण शाखा के महागुरु के सान्निध्य में वह अचानक आ पहुँचा है।

अपने पिता के साथ द्वैप की जो थोड़ी बहुत बातें कभी हुई थीं उनके आधार पर यह इतना तो जान गए थे कि पितामह वसिष्ठ से मतभेद हो जाने के कारण पिता को धर्मक्षेत्र छोड़ना पड़ा था। द्रष्टाओं अर्थात् ऋषियों में दो वर्ग बन गए थे। एक वर्ग में वसिष्ठ एवं विश्वासमित्र थे। उनकी मान्यता थी कि त्रयीविद्या–ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद–ही सबकी मूल है। दूसरी ओर भृगु तथा अंगिरस को गुरु माननेवाले अनुयायी थे जिनकी मान्यता थी कि अथर्वण शाखा भी श्रुति का अंग है। द्वैप के पिता त्रयीविद्या के अनुयायी थे, लेकिन फिर भी वे यह मानने को तैयार नहीं थे कि अथर्वण शाखा इसका अंग नहीं है। वे अथर्वण शाखा के मन्त्रों द्वारा, उसमें वर्णित वनस्पति द्वारा, चमत्कृत करनेवाले विशेष प्रयोगों द्वारा रोगियों को राहत पहुँचाते थे, व्यथित प्रेमियों की व्यथा दूर करते थे और पराजित राजाओं को विजय दिलाते थे।

महाअथर्वण ने कहा, "वत्स, मैं स्नान करता हूँ, तू भी स्नान कर ले।" द्वैप ने उनकी आज्ञा शिरोधार्य की।

विधिपूर्वक पूजा करके महाअथर्वण ने भगवान सूर्य को अर्घ्य दिया और उसके बाद उन्होंने तथा उनके शिष्यों ने समग्र विश्व को ध्यान में रखते हुए जल तथा आकाश के देवता वरुण का स्मरण करते हुए मन्त्रपाठ किया।

ज्यों ही वृद्ध मुनि ने मन्त्रोच्चार शुरू किया, त्यों ही ध्वनिवर्तुलों ने द्वैप को घेर लिया और उन्हें ऐसा लगने लगा जैसे चारों ओर से उनके बन्धन काट दिए गए हों। स्वयं द्वैप अपनी प्रसन्न-मधुर आवाज के साथ उस आह्वान-मन्त्र के पाठ

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

में शरीक हो गए।

आह्वान-मन्त्र समाप्त होने के बाद महाअथर्वण द्वैप की तरफ मुड़े और कुछ समय तक उसकी ओर ताकते रहे। द्वैप ने इन मन्त्रों का इतना अच्छा अधिकारपूर्वक उच्चारण कैसे किया, इस पर उन्हें आश्चर्य हो रहा था।

वे तालाब से बाहर आए। पैल को उन्होंने तालाब के उथले पानी में खड़ा किया हुआ था। एक शिष्य ने साँस लेने में सुविधा के लिए उसका सिर ऊपर उठा रखा था।

मुनि ने अपने पुत्र सुमन्तु की ओर मुड़कर कहा, "सुमन्तु, अपना थैला खोल।" सुमन्तु ने थैला खोला तो उन्होंने उसमें से कुछ वनस्पतियाँ इकट्ठी कीं।

"अब यज्ञवेदी में से थोड़ी भस्म ले आओ।" उन्होंने आज्ञा दी।

सुमन्तु यज्ञवेदी में से भस्म ले आया।

वृद्ध मुनि ने पैल के ललाट, गाल, छाती तथा पैरों पर भस्म का लेप किया और फिर मृत्यु के देवता यम का आह्वान करते हुए मन्त्रपाठ शुरू किया।

महाअथर्वण मन्त्रजाप करते-करते बीच में रुक गए। उन्होंने पैल की देह पर पहले की तरह फिर से भस्म का लेप किया और तब पुनः मन्त्रजाप शुरू कर दिया।

मन्त्रपाठ करने के बाद उन्होंने कुछ वनस्पतियाँ पानी में हिलाईं, उसकी बूँदें पैल के होंठों में निचोड़ीं। वे इस बीच बराबर मन्त्रपाठ करते रहे।

द्वैपायन हाथ जोड़े खड़े रहे। महाअथर्वण जो बोल रहे थे उसे वह बिना किसी विशेष आयास के स्मृति में रख रहे थे। ये मन्त्र उनके पिता को ज्ञात नहीं थे। हाँ, यह ज्ञात था कि ये मन्त्र अथर्वण शाखा के हैं।

थोड़ी देर तक महाअथर्वण स्थिर दृष्टि से पैल की ओर देखते रहे। फिर उसकी देह पर भस्मी के लेप का क्रम दोहराया और यह क्रम वे बार-बार दोहराते रहे। फल यह हुआ कि पैल की साँस फिर से नियमित होने लगी।

यज्ञवेदी को आहुति देने के बाद महाअथर्वण ने, उनके शिष्यों व द्वैपायन ने फलाहार किया।

यज्ञवेदी का विधिपूर्वक उत्थापन किया। फिर शंखनाद करते हुए दो-दो की पंक्ति में शिष्यगण आगे चले तथा सबसे पीछे एक पालकी में अथर्वण चले।

पैल अभी तक बेहोश था। उसे भी पालकी में ले लिया गया। द्वैपायन और सुमन्तु उसके साथ थे।

द्वैपायन को महाअथर्वण के चमत्कारिक प्रभाव का अनुभव हो रहा था। उनका दर्द बिलकुल दूर हो चुका था। वे महाअथर्वण के पीछे यन्त्रवत् चलते जा रहे थे।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

द्वैपायन का मारण मन्त्र से बचना

दोपहर होते-होते वे सभी लोग एक घने वन में प्रवेश करके एक पहाड़ी के पास पहुँचे। उस पहाड़ी के शिखर पर सैकड़ों कुटियाओं की एक बस्ती थी। यही महाअथर्वण का आश्रम था।

पहाड़ी पर चढ़कर वे आश्रम में पहुँचे। इस आश्रम के केन्द्र में एक विराट वेदी थी जिस पर दिन-रात पवित्र अग्नि प्रज्वलित रहती थी।

वहाँ आकर महाअथर्वण और उनके समस्त शिष्यों ने यज्ञ की भस्मी हाथ में लेकर अपने-अपने ललाट पर लगाई और फिर सभी बिखर गए।

सुमन्तु द्वैपायन को अपने कुटीर में ले गया। दो अन्य शिष्य अचेत पैल को लेकर पहले ही उस कुटीर में पहुँच चुके थे।

कुटिया में पाँव रखते ही द्वैपायन को फिर वही पहलेवाली वेदना प्रारम्भ हो गई। महाअथर्वण ने उन्हें जो कृत्रिम शक्ति दी थी वह उन्होंने वापस खींच ली थी। उनके चेहरे पर स्वेदकण उभर आए और वह गठड़ी की तरह जमीन पर ढेर हो गए।

सुमन्तु की मदद करने वाटिका आ गई। उसने वल्कल वस्त्र पहन रखे थे। बिलकुल सुमन्तु की प्रतिकृति नजर आती थी। पहली बार में ही कोई भी कह सकता था कि वह उसकी जुड़वाँ बहन थी। कद उसका सामान्य महिलाओं के कद से ऊँचा था। उसकी गति में चपलता थी। उसके गहरे काले केश भली प्रकार गुँथे हुए थे।

वह द्वैपायन के पास आई और बोली, "आँखें मूँद लो और अश्विनी-कुमारों से प्रार्थना करो। वे तुम्हें शक्ति प्रदान करेंगे।" अपने साथ लाई वनस्पति का आसव उसने उन्हें दिया। उसे लेते ही द्वैपायन के शरीर में एक नई चेतना आ गई। उनकी पीठ की जिस चोट में अभी तक दर्द था वह खत्म हो गया और शरीर में गजब की स्फूर्ति आ गई।

अब वाटिका ने पैल की तरफ ध्यान दिया। वह अभी तक बेहोश था। उसके सिर पर उसने गीली पट्टी रखी और उसके होंठ खोलकर उसे थोड़ा वही आसव पिलाया जो उसने द्वैपायन को दिया था।

द्वैपायन की आँखें भारी हो गईं, वह ऊँघने लगा। भाई-बहन के बीच धीमे-धीमे जो बातें हो रही थीं उन्हें तो वह ठीक से सुन नहीं सका, किन्तु उसे इतना आभास अवश्य हुआ कि सुमन्तु अपनी बहन को यह बता रहा है कि उसकी इन दो द्विजों से मुलाकात कहाँ व कैसे हुई और वे लोग इन्हें यहाँ लाए।

सुमन्तु और वाटिका ने बाहर खड़ाऊँ की आवाज सुनी तो हाथ जोड़कर एक

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ओर खड़े हो गए। उनके पिता महाअथर्वण आए थे। उनके साथ आए दो सेवक बाहर द्वार पर रुक गए और महाअथर्वण भीतर आए।

महाअथर्वण की उपस्थिति से वातावरण में एक नई ताजगी आ गई।

द्वैपायन की निद्रा खुल गई। उन्होंने आँखें खोलीं और मुनि को देखकर बैठने की चेष्टा की लेकिन हाथ के संकेत से मुनि ने उन्हें सोए रहने को कहा।

महाअथर्वण ने पहले पैल की ओर ध्यान दिया। एक सेवक पवित्र अग्नि की भस्मी लाया। उन्होंने पैल की देह पर उसका लेप किया और अस्फुट स्वर में मन्त्र पढ़ा। द्वैपायन ने ध्यान से इन मन्त्रों को सुना और उन्हें याद कर लिया।

मुनि के आदेश पर वाटिका ने पुनः वही आसव पैल के मुख में डाला। अचेत पैल के मुख से धीमी-सी कराह निकली।

जो सेवक भस्मी लाया था, महाअथर्वण ने उसे बाहर जाने का संकेत किया। अब वे द्वैपायन के पास एक तख्ते पर बैठ गए। उनके हाथ में दंड था। वह राजदंड की तरह उनके हाथ में सीधा खड़ा रहा।

सुमन्तु ने सहारा दिया और द्वैपायन दीवार से पीठ टिकाकर बैठ गए। मुनि ने पुत्र-पुत्री को अपने पास बुलाया और द्वैपायन की तरफ मुड़कर कहा, "वत्स, तुमने भगवान वरुण का अथर्वण आह्वान पूर्णतया शुद्ध रीति से किया था।"

द्वैपायन ने आदरपूर्वक हाथ जोड़कर कहा, "भगवन्, आपकी कृपा का पार नहीं है।"

थोड़ी देर तक मुनि द्वैपायन की ओर स्थिर दृष्टि से देखते रहे। फलस्वरूप उनका दर्द गायब हो गया।

"सौगन्ध खाकर कहो कि तुम मुझसे जो कहोगे सच कहोगे।" मुनि ने कहा।

"मैंने सदैव सच बोला है, सदा सच ही बोलूँगा।" द्वैपायन ने नम्रतापूर्वक निवेदन किया, "जब मैं द्विज बना तब मैंने यह वसिष्ठ प्रतिज्ञा ली थी और सदैव इस प्रतिज्ञा का पालन करता हूँ।"

वसिष्ठ का नाम सुनते ही मुनि की भौंहें तन गईं। तिरस्कार के भाव से बोले, "भगवान वरुण का अथर्वण आह्वान तुम्हें किसने सिखाया था?"

"मेरे पिताजी ने।" द्वैपायन ने उत्तर दिया।

वृद्ध मुनि तीर की तीव्रता से प्रश्न-पर-प्रश्न करते चले गए, "तेरा गोत्र क्या है?"

"मेरा गोत्र पराशर है।" द्वैपायन ने कहा।

"तेरे पिता का क्या नाम है?" महाअथर्वण ने पूछा।

"मुनि पराशर।"

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वृद्ध मुनि की आँखों से घृणा की चिनगारी फूटी, उसकी वाणी शस्त्र की धार बन गई, "तुम्हारे पिता किसके पुत्र थे?"

द्वैपायन ने देखा कि कुल-गोत्र का नाम सुनकर महामुनि कुपित हो गए थे, "वे मुनि शक्ति के पुत्र थे। उनके दादा का नाम महामुनि वसिष्ठ था।"

"तेरे पिता को ब्रह्मविद्या के ये सारे मन्त्र किस प्रकार आ गए?"

"मुझे पता नहीं, किन्तु उन्होंने मुझे अथर्वण शाखा के कई मन्त्र सिखाए थे।"

"उन्होंने ये मन्त्र किससे सीखे थे?"

"यह तो उन्होंने मुझे नहीं बताया, किन्तु इतना जरूर बताया था कि ब्रह्मविद्या श्रुति का चौथा खंड है।"

"क्यों, उन्होंने यह नहीं बताया कि ब्रह्मविद्या का मूल ज्ञाता कौन था?"

"एक-दो बार उन्होंने यह कहा था कि उनके जीवन और मृत्यु के स्वामी कोई पूज्य महाअथर्वण हैं। ईश्वर मुझे आपके पास ले आया इसके लिए मैं कृतज्ञ हूँ।"

वृद्ध पुरुष के चेहरे की रेखाओं को पढ़ना मुश्किल था, "तुझे पता नहीं कि तेरे दादा वसिष्ठ ब्रह्मविद्या के शत्रु थे?"

"नहीं।" द्वैपायन ने कहा।

"वे कहते थे कि श्रुति के मात्र तीन ही खंड हैं–ऋक्, यजुः और साम; तुम्हें इसका कोई पता नहीं?"

"नहीं।" द्वैपायन ने कहा।

"वे यज्ञ में अथर्वणों को अग्रपद नहीं देते थे, यह भी तुमको पता नहीं?"

"नहीं।"

"तुझे पता है कि मैंने धर्मक्षेत्र को शाप दिया था और उसी के फलस्वरूप हैहयों ने उसका ध्वंस किया था और वसिष्ठ को मार डाला था?"

"नहीं।"

"और तेरे पिता ने कई अथर्वण मन्त्र चोरी-छिपे सुन-सुनकर मेरे पुत्र से सीख लिये थे, इसका भी तुझे कोई पता नहीं?"

"नहीं।"

"वसिष्ठ को जब इसका पता चला तो उन्होंने तेरे पिता को इन मन्त्रों का पाठ न करने की आज्ञा दी और इसी कारण तेरे पिता को धर्मक्षेत्र छोड़ना पड़ा, इसका तुझे ज्ञान है?"

"नहीं।"

द्वैपायन को अब समझ में आया कि उनके पिता ने क्यों युवावस्था में अपने पिता का आश्रम छोड़ दिया था और यमुनातट पर अपना आश्रम स्वयं स्थापित किया था।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"वे कहाँ गए थे?" मुनि ने पूछा।

"मेरे पिता ने यमुना माँ के तट पर आश्रम स्थापित किया था।" द्वैपायन ने कहा।

"तेरे पिता का आश्रम कैसा था?"

"वह वेद मन्त्रों से गूँजता रहता था।" द्वैपायन ने कहा, "फिर दुष्ट राजा सहस्रार्जुन आया और उसने आश्रम को मटियामेट कर डाला और अनेक शिष्यों की हत्या कर दी।"

"मेरा शाप तेरे पिता तक पहुँच गया था। क्या वे सहस्रार्जुन से बच गए थे?"

"हाँ, जब आश्रम पर हमला हुआ और उनके शिष्य मार डाले गए तब वे सहस्रार्जुन का मुकाबला करने के उद्‌देश्य से आर्य-राजाओं को एकता के सूत्र में पिरोने गए हुए थे और जब वे वापस लौटे तब समूचा आश्रम ध्वस्त हो चुका था। सहस्रार्जुन के सैनिकों ने उन पर भी आक्रमण किया जिससे उनकी एक टाँग टूट गई थी।"

"उनकी मृत्यु कब हुई?"

"कुछ ही महीनों पहले?" द्वैपायन ने उत्तर दिया।

"तू यहाँ किसलिए आया था?"

"पिताजी और मैंने संकल्प किया था कि धर्मक्षेत्र की पुनःप्रतिष्ठा करेंगे।"

"क्यों?" मुनि की नाराजगी बढ़ती चली जा रही थी।

"धर्म का स्रोत बिना दूषित हुए प्रवहमान बना रहे, इस उद्‌देश्य से। धर्मक्षेत्र नहीं होगा तो धर्म का लोप हो जाएगा।"

"इसकी पुनःप्रतिष्ठा कभी नहीं होगी। यह मेरा शाप है।"

"आपके शाप से इसका विनाश हुआ, अब आपके आशीर्वाद से इसका नवनिर्माण होगा।" द्वैपायन ने मोहक मुस्कान के साथ कहा।

"मैं इसे कभी भी आशीर्वाद नहीं दूँगा।"

"ईश्वर आपको ऐसा करने की प्रेरणा देगा, भगवन्!"

"तुम ऐसा कैसे कहते हो?"

"आपने मुझे और पैल को राक्षसों से बचाया—यह ईश्वर का ही संकेत था।" द्वैपायन ने दृढ़ता से कहा।

वृद्ध मुनि की आँखों से अंगारे बरस रहे थे। उनकी आवाज धीमी किन्तु डरावनी थी, "धर्मक्षेत्र की पुनःप्रतिष्ठा कभी नहीं होगी—भृगु और अंगिरस का यह संकल्प है।"

"भगवन्, यदि धर्मक्षेत्र की पुनः प्रस्थापना हो जाती है तो ये सभी पुरातन ऋषि प्रसन्न होंगे।" द्वैपायन ने अटल श्रद्धा के साथ कहा।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"तू पागल है, बेटा!!" मुनि ने कहा, "धर्मक्षेत्र की पुनःप्रस्तावना करने की यह धुन तुझमें कहाँ से आ गई?"

"यदि श्रुतियों के प्रति श्रद्धा व निष्ठा रखनेवाले और श्रुतियों के अनुसार जीवनयापन करनेवाले पुरुष न हों तो धर्म जीवन को कैसे धारण करेगा? संसार ऐसे लोगों की ही प्रतीक्षा कर रहा है।"

"तू तो यों बात कर रहा है, मानो ऋषियों ने तुझे तेरे संकल्प के लिए आशीर्वाद दे दिया हो!" मुनि ने कहा।

"भगवन्, जो लोग श्रुतिसम्मत नैष्ठिक जीवन में विश्वास करते हैं उनकी प्रार्थना प्रभु अवश्य स्वीकार करते हैं, ऐसा मुनि पराशर कहा करते थे।" द्वैपायन ने कहा।

"तेरे परपितामह ने ब्रह्मविद्या का अपमान किया था और भृगु तथा अंगिरस की अवज्ञा की थी। वे तुझको और तेरे अनुयायियों को कभी क्षमा नहीं करेंगे।"

"भगवन्, मुझे आप अपना शिष्य बना लें। मैंने संकल्प लिया है कि एक बार धर्मक्षेत्र में निवास करने के बाद मैं अथर्वण शाखा के गुरु का शिष्य बनूँगा। इसी कारण तो ईश्वर मुझे आपके पास ले आया है।" द्वैपायन ने कहा।

"तू यदि धर्मक्षेत्र की पुनःप्रस्थापना करने की धुन छोड़ सके तो मैं तुझे शिष्य रूप में स्वीकार कर सकता हूँ।" वृद्ध मुनि ने कहा।

"मेरे पूज्य पिता और मैंने साथ-साथ जो प्रतिज्ञा ली थी, उसे मैं कैसे भुला सकता हूँ?" द्वैपायन ने पूछा।

वृद्ध मुनि तमतमाकर खड़े हो गए, "मैं तुझे चेतावनी देता हूँ कि यदि तू अपना यह आग्रह नहीं छोड़ेगा तो पछताएगा!"

"गुरुदेव, यदि मैं अपनी प्रतिज्ञा का पालन नहीं करता हूँ तो मेरा आध्यात्मिक मरण हो जाएगा, मैं अपने प्रभु को और पूर्वजों को मुँह दिखाने योग्य नहीं रहूँगा।"

वाटिका अपने पिता का स्वभाव जानती थी। उसने द्वैपायन की ओर देखा और नजरों के संकेत से उन्हें चेतावनी देने की कोशिश की, ताकि वह पिता को ज्यादा गुस्सा न दिलाएँ।

महाअथर्वण के सिर में जैसे चारों ओर आँखें लगी थीं। बोले, "वाटिका और सुमन्तु तुम्हें मेरे भीषण क्रोध के प्रति सचेत कर रहे हैं न!" और यह कहकर वे हँस पड़े, "शायद ये बालक ऐसा समझ रहे हैं कि एक बालक का निरीह चेहरा और उसकी वाचालता देखकर मैं नम्र बन जाऊँगा और अपना जीवनकार्य त्याग दूँगा!"

फिर द्वैप पर अपनी उग्र दहकती दृष्टि जमाकर वे बोले, "भृगु और अंगिरस जैसे ऋषियों का शाप शाश्वत काल तक बना रहेगा और जो भी इसका विरोध करेंगे उनका नाश होगा।"

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यह कहकर महाअथर्वण सुमन्तु का सहारा लेकर कुटिया के बाहर निकल गए।

थोड़ी देर बाद सुमन्तु और वाटिका वहीं लौट आए जहाँ द्वैपायन बैठे थे। हताश, हर तरह से टूटे हुए एकदम रुँआसे! फिर भी पता नहीं भीतर गहरे कहीं कोई एक ऐसा शक्तिशाली तत्त्व था जो इस घोर निराशा और रो पड़ने की तीव्र इच्छा के बावजूद उन्हें रोने नहीं दे रहा था और वह मात्र दोनों हाथों पर ठोड़ी टिकाए शून्य में टकटकी लगाए हुए थे।

वाटिका और सुमन्तु कोई चमत्कारी वनस्पति लाए थे। उन्होंने उसका लेप द्वैप के जख्मों पर किया। वाटिका ने उन्हें दुबारा आसव पिलाया। सुमन्तु ने बेहोश पैल को थोड़ा पानी पिलाया और ताजे पत्तों का बिछौना बनाकर उस पर उसे द्वैप के करीब ही लाकर लिटा दिया।

द्वैपायन कुछ देर सोए रहे, लेकिन फिर अचानक जाग उठे। अपने कानों में उन्हें माँ की चिरपरिचित आवाज सुनाई दी, 'कृष्ण, तू कहाँ है? मेरे पास क्यों नहीं आता?'

उन्होंने आँखें मलीं। पैल बेहोश था। मात्र कभी-कभी कराह निकलती थी। सुमन्तु गहरी निद्रा में निमग्न था।

रात-भर जलनेवाली यज्ञवेदी के प्रकाश में द्वैपायन ने देखा कि एक आकृति कुटिया में प्रवेश कर रही है। उन्होंने सोचा कि वाटिका अपने भाई से मिलने आई होगी।

भाई-बहन ने थोड़ी देर बातचीत की। फिर दोनों द्वैपायन के बिछौने के पास आए और पूछा, "द्वैपायन, क्या तुम जाग रहे हो?"

द्वैपायन उठकर बैठ गया। कहीं यह स्वप्न तो नहीं है, इस आशंका से द्वैप ने आँखें खोलीं, झपकाईं।

वाटिका बोली, "द्वैपायन, तुम्हें पता है कल तुम्हारे साथ क्या बीतनेवाली है?"

"मुझे तो नहीं मालूम!" द्वैपायन ने उत्तर दिया।

"पिताजी कल तुम पर मारणमन्त्र का प्रयोग करेंगे, अग्नि-पूजा के ठीक बाद!"

"यह मारणमन्त्र क्या होता है? मुझे तो कुछ भी पता नहीं।"

"इस मन्त्र-प्रयोग के तीन दिन बाद तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी!" सुमन्तु ने कहा।

"लेकिन वे मुझे मारेंगे क्यों?"

वाटिका ने कहा, "अब बातों में समय मत गँवाओ। मेरे अपने सामने पिताजी ने इस मन्त्र-प्रयोग की तैयारी के निर्देश दिए हैं जिसका प्रभाव यह होगा कि तुम भले कहीं रहो, तीन दिन में तुम्हारी मृत्यु निश्चित रूप से हो जाएगी।"

"लेकिन वे यह क्यों चाहते हैं कि मैं मर जाऊँ? मैंने तो किसी का भीं कुछ

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

नहीं बिगाड़ा!" द्वैपायन ने कहा।

"उन्होंने कल तुम्हारा आत्मविश्वास से परिपूर्ण और ज्ञान से समृद्ध स्वरूप देखा है, उन्होंने यह भी देखा कि तुम दृढ़ मनोबलवाले युवक हो।" वाटिका ने कहा, "उन्होंने ग्रह देखे और फिर यह निर्णय किया कि इस मन्त्र का तुम पर प्रयोग हो। इसलिए तुम अब यहाँ से तुरन्त निकल भागो। चिकित्सा के लिए यह आसव है जो मैंने तुम्हारे लिए बनाया है और वनस्पतियों का यह थैला है जो पैल के पास था। मैंने इस थैले में तीन अन्य रक्षा करनेवाली वनस्पतियाँ भी रख दी हैं लेकिन अनुकूल मन्त्रों के बिना उनका प्रभाव नहीं होगा।"

द्वैपायन हँसे, "मैं ये मन्त्र जानता हूँ। जब महाअथर्वण पैल के पास खड़े इनका उच्चारण कर रहे थे तभी मैंने इन्हें याद कर लिया था।"

आश्चर्य से वाटिका की आँखें फैल गईं, "तुम तो अद्भुत हो! मुझे भी तुम्हारे जैसी स्मरण-शक्ति मिल जाती तो कितना अच्छा होता!"

"लेकिन मैं रात के समय कैसे जा सकता हूँ? मैं तो रास्ता भी नहीं जानता। और मेरे मित्र पैल का क्या होगा?" द्वैपायन ने पूछा।

"इसे होश में आने में अभी समय लगेगा। लेकिन पिताजी कहते हैं कि यह ठीक हो जाएगा। हम उसकी देखभाल कर लेंगे। अब चलो जल्दी, हम तुम्हें पहाड़ की तलहटी तक ले चलते हैं।" वाटिका ने कहा।

उन्होंने खड़ाऊ पहने और चमड़े के पट्टे को पाँवों से सटाकर बाँध दिया ताकि आवाज न हो और पिछवाड़े के रास्ते निकलकर एक पगडंडी पकड़ ली।

तलहटी में पहुँचकर द्वैपायन ने उनसे विदा ली। उन्होंने सुमन्तु से कहा, "गुरु तो शिष्यों को स्वीकार करते ही हैं लेकिन मेरे साथ भिन्न घटना हो गई, किन्तु फिर भी मैंने तो महाअथर्वण को अपना गुरु स्वीकार कर लिया है, इस कारण हम दोनों भाई हैं।" और यह कहकर द्वैप ने स्नेहवश सुमन्तु को गले लगा लिया।

फिर हाथ जोड़कर उन्होंने वाटिका से विदा ली, "मैं तुम्हारे स्नेह को कभी नहीं भूलूँगा। थोड़ा-सा समय बीत जाने दो, मैं वापस आऊँगा और तुम्हारे पिताजी के आशीर्वाद से धर्मक्षेत्र की पुनःप्रतिष्ठा करूँगा।"

द्वैपायन की हताशा

द्वैपायन जब हस्तिनापुर पहुँचे तो उन्हें बहुत खुशी हुई। धर्मक्षेत्र की पुनःस्थापना की उनकी योजना में कुरुओं की इस राजधानी का विशेष स्थान था।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हस्तिनापुर का छप्पन वर्षीय सम्राट शान्तनु युद्ध और शान्ति दोनों में कुरुओं का योग्य नेता सिद्ध हो चुका था। मात्र बीस वर्ष की आयु में ही वह गद्दी पर बैठा था और उस पर बैठते ही उसे आर्यों तथा हैहयों के बीच बरसों से चले आ रहे उग्र और अन्तहीन युद्ध में भाग लेना पड़ा था। आखिर वह हैहयों को परास्त करने में सफल हुआ था।

सज्जन, शक्तिशाली और सुदृढ़ शान्तनु का प्रभाव समूचे आर्यावर्त में फैल गया था। उग्र और आक्रामक स्वभाव की प्रजा को अपने प्रभाव से उसने शान्तिप्रिय बना लिया था।

अपने पैंतीस वर्ष के शासन में शान्तनु ने इतनी सफलताएँ प्राप्त कर लीं कि लोग उसे चक्रवर्ती सम्राट कहने लगे थे। उसके पूर्वज भरत की ही तरह उसकी कीर्ति भी दसों दिशाओं में व्याप्त हो गई थी।

युद्ध से उत्पन्न अराजकता के कारण आर्य, नाग और अन्य जातियाँ पारस्परिक वैमनस्य भुलाकर एक हो गई थीं और कन्धे से कन्धा मिलाकर लड़ी थीं। उनके बीच अन्तर्जातीय विवाह होने लग गए थे और आर्य धर्म में अनार्य देवताओं का समावेश होने लगा था।

युद्धों के कारण प्राचीन शिक्षा-केन्द्रों का ध्वंस हो चुका था। ऋषिगण जहाँ उपदेश व आचार द्वारा सैकड़ों शिष्यों को धर्ममय जीवन का बोध कराते थे वह धर्मक्षेत्र अब एक दुखद स्मृति से अधिक कुछ नहीं रह गया था। आर्यों द्वारा प्रत्येक घर में स्थापित पवित्र अग्नि की महिमा अब लुप्त हो चुकी थी। सैकड़ों श्रोत्रियों के मन्त्रोच्चार के साथ लम्बे समय तक–कभी-कभी तो वर्षों तक–चलनेवाले यज्ञ अब केवल राजाओं के ही लिए सम्भव वैभव-विलास के प्रतीक बन गए थे।

शान्तनु उदार था। वह ऋषियों, विद्वानों और श्रोत्रियों को उनके नित्यधर्म का पालन करने की सुविधा देता था। लेकिन उन सबमें संस्कृतियों का एक मिश्रित स्वरूप पैदा हो गया था। कुछ लोग प्राचीन ऋषियों की परम्परा का अनुसरण करते थे, कुछ आशुतोष या शिव की पूजा करते थे और कुछ लोग ऐसी देवी शक्ति की उपासना में लगे थे जिसमें किसी नैतिक या आध्यात्मिक संयम की आवश्यकता नहीं थी।

किन्तु जो इन सभी प्रवृत्तियों का समन्वय कर सके, ऐसी किसी केन्द्रीय धर्मसत्ता का अस्तित्व नहीं था, न किसी समान अनुशासन की कोई अन्य प्रणाली ही थी। यदि कोई समान धुरी थी तो मात्र इतनी कि श्रोत्रियगण श्रुति में विश्वास करेंगे, उसका अध्ययन-अध्यापन व प्रसार करेंगे।

हस्तिनापुर में आते ही द्वैपायन सीधे प्रतीपेश्वर के मन्दिर में गए। इस मन्दिर

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

का निर्माण शान्तनु के पिता प्रतीप ने प्रारम्भ किया था और यह शान्तनु के समय में पूर्ण हुआ था। बदरि आश्रम जाते समय द्वैपायन अपने पिता के साथ यहीं ठहरे थे।

जब वह मन्दिर में पहुँचे तो उन्होंने पूछा कि क्या कोई ऐसा स्थान वहाँ है जहाँ ठहरकर वे विश्राम कर सकें। प्रत्युत्तर में उन्हें मन्दिर के आँगन में स्थित एक आम्रकुंज में ले जाया गया जहाँ साधु-संन्यासी या श्रोत्रिय आदि ठहराए जाते थे।

आम्रकुंज पहुँचने के बाद द्वैप गंगा-किनारे पहुँचे और पहला काम स्नान का किया। फिर वहीं वे सन्ध्या वन्दन से निवृत्त हुए और जब वापस आम्रकुंज लौटे तो मालूम हुआ कि यात्रियों को भोजन देने का समय समाप्त हो चुका है। पर अब किसी के यहाँ भिक्षा माँगने की बजाय एक दिन भूखे ही निकाल देना द्वैप को ज्यादा उचित लगा।

एकाध क्षण के लिए द्वैपायन को बड़ी निराशा हुई। उन्हें लगा कि हस्तिनापुर में उनका आगमन कुसमय हुआ है। सम्राट शान्तनु मृत्युशैया पर हैं और धर्मक्षेत्र की पुनर्स्थापना की बात करने में किसी की भी रुचि नहीं है।

शान्तनु-जैसे सम्राट से किस प्रकार मिला जा सकता है, इसका भी द्वैपायन को कोई ज्ञान नहीं था। इसलिए वे यात्रियों के उस समूह में शामिल हो गए जिसे युवा मन्त्री कुणिक मृत्युशैया पर पड़े सम्राट को आशीर्वाद दिलाने ले जा रहा था।

द्वैपायन को पता था कि उसने जो मृगचर्म पहन रखा है वह स्थान-स्थान पर घिस गया है, जीर्ण-शीर्ण है। इतने दिन तक चलते रहने के कारण वे स्वयं भी थके हुए थे। उनका चेहरा बता रहा था कि कई दिनों से पूरी खुराक भी नहीं मिली है।

स्वभावतः मन्त्री पर उनका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा।

"आप कहाँ से आए हैं?" कुणिक ने आदरपूर्वक पूछा। उसकी आवाज में संशय की ध्वनि स्पष्ट थी, जो छिपाई नहीं जा सकती थी।

"मैं धर्मक्षेत्र से आया हूँ।" द्वैपायन ने उत्तर दिया।

"धर्मक्षेत्र से?" कुणिक ने आश्चर्य से पूछा, "आप भेड़ियों की उस भूमि से जीवित किस प्रकार लौट आए?"

मन्त्री के प्रश्न में निहित शंका के भाव को समझने में द्वैपायन को कोई कठिनाई नहीं हुई, लेकिन उस ओर ध्यान दिए बिना उन्होंने उत्तर दिया, "हाँ, मैं धर्मक्षेत्र से आया हूँ। ईश्वर ने मेरी रक्षा की।"

"आपका गोत्र क्या है?"

"पराशर।" द्वैपायन ने कहा।

कुणिक को लगा कि यह युवक किसी विनोदवृत्तिवश उससे ऐसा कह रहा

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

है। अतः उसने प्रश्न किया, "महामुनि वसिष्ठ के पौत्र पराशर आजकल कहाँ हैं?"

"वे पितृधाम सिधार चुके हैं।"

"पूज्य मुनि का देहावसान कहाँ और कैसे हुआ?"

"वे भस्मक्षेत्र गए थे, जहाँ किसी समय उनका अपना आश्रम था। वहाँ भेड़ियों के झुंड का आहार बन गए।" द्वैपायन ने उत्तर दिया।

"आपको यह समाचार कहाँ से मिला?" कुणिक ने पूछा।

"मैं स्वयं वहीं था।" द्वैपायन ने उत्तर दिया।

कुणिक का शंका-समाधान तो नहीं हुआ किन्तु दूसरे यात्रियों को रोके रखना भी ठीक नहीं था, इसलिए उसने द्वैपायन को संकेत से उस समूह में आगे बढ़ जाने की अनुमति दे दी।

यात्रियों का वह समूह सम्राट के शयनकक्ष में ले जाया गया। शयनकक्ष के सामने एक पवित्र यज्ञवेदी पर राजपुरोहित मृत्युंजय होम कर रहे थे।

युवराज गांगेय शैया के पास खड़े थे। उनके नेत्रों में गम्भीरता थी। रह-रहकर वे चिन्तित दृष्टि से अचेत पड़े सम्राट की ओर देख लेते थे। शान्तनु के सिरहाने ही महारानी सत्यवती बैठी हुई थीं। उनका मुख एक सुनहरी चूनर से ढँका हुआ था। उनकी आँखों से बहती अविरल अश्रुधार पर यह चूनर आवरण का काम कर रही थी। महारानी के पार्श्व में उनके दोनों पुत्र चित्रांगद और विचित्रवीर्य खड़े थे।

पास खड़ी दो विदेशी कन्याएँ मृत्युशैया पर पड़े सम्राट को चँवर डुला रही थीं।

राजकुमार गांगेय ने हाथ जोड़कर अतिथियों से सम्राट की शैया के पास आने की प्रार्थना की। द्वैपायन सबसे पीछे थे। अतिथिगण हाथ ऊँचा कर-करके सम्राट को आशीर्वाद देते और आगे बढ़ जाते। एक के बाद एक आते हुए सभी चले गए। अन्त में अब द्वैपायन उस कक्ष में रह गए।

समूचे आर्यावर्त से आनेवाले अनगिनत अतिथियों का सत्कार करते-करते युवराज गांगेय थक गया था। फटा हुआ मृगचर्म पहने यह संन्यासी अन्यों के साथ बाहर नहीं गया यह देख गांगेय को बुरा लगा, इसलिए जब द्वैपायन ने पूछा कि, "क्या मैं सम्राट के पलँग के पास जा सकता हूँ?" तब उसके धैर्य का बाँध टूट गया और बोला, "नहीं, अब आप पधारिए।"

गांगेय के शब्दों में नम्रता थी, फिर भी जिस शैली में वे कहे गए थे उसमें अपमान का पुट भी था।

क्रोध को जीतनेवाली द्वैपायन की मुस्कराहट का भी गांगेय पर कोई असर नहीं हुआ। उसने फिर पूछा, "आपको क्या चाहिए?"

द्वैपायन ने गर्व से सिर ऊँचा उठाया और कहा, "मैं कुछ लेने नहीं आया, अपितु देने आया हूँ।"

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

गांगेय को लगा कि यह संन्यासी अब हद से बाहर जा रहा है। उसने मुँह फेर लिया।

द्वैपायन ने दूर से ही सम्राट को आशीर्वाद दिया और भारी मन से बाहर निकल गए। हस्तिंनापुर आने का उनका उद्देश्य व्यर्थ हो चुका था। सम्राट शान्तनु की सहायता से धर्मक्षेत्र की पुनर्स्थापना करने का स्वप्न समाप्त हो गया था। वे जिस उद्देश्य के लिए जी रहे थे उस उद्देश्य को मिट्टी में मिलते देखकर हताश हो गए। उनकी आस्था डगमगा उठी। ऐसा लगा जैसे वह अन्धकूप में जा गिरे हों। उनके पिता अभी जीवित होते तो? क्षणभर को उन्हें लगा कि वे होते तो उसे इस अन्धकार से निकलने का कोई मार्ग जरूर बताते।

द्वैपायन उस महल के प्रांगण से बाहर आ ही रहे थे कि उनके पीछे-पीछे एक प्रौढ़ायु महिला आई। उसकी वेशभूषा से लगता था कि वह उस राजभवन की कोई वरिष्ठ सेविका होगी। तेज कदमों से आकर वह द्वैपायन के बराबर चलने लगी और बोली, ''आप बहुत लम्बी दूरी से आ रहे प्रतीत होते हैं। आपने भोजन किया?''

''नहीं।'' द्वैपायन ने कहा, ''अतिथियों को भोजन मिलने के बाद ही मैं मन्दिर पहुँचा था।''

''पूज्य महादेवी ने मुझे आज्ञा दी है कि महल में ले जाकर आपको भोजन कराऊँ।'' उस स्त्री ने कहा, ''महादेवी ने यह भाँप लिया था कि आप थके हुए हैं। और राजकुमार गांगेय ने आपको निकाल दिया इससे महादेवी को बहुत दुख हुआ है। उन्होंने प्रार्थना की है कि आप कृपया राजकुमार को क्षमा करें। सम्राट की बीमारी के कारण राजकुमार बहुत अधिक परेशान हैं।''

द्वैपायन ने स्वाभिमानपूर्वक कहा, ''जिस ढंग से मुझे निकाल दिया गया उसे देखते हुए मैं यही समझता हूँ कि हस्तिनापुर में मेरे लिए अब स्थान नहीं है। आप कृपया महादेवी से कह दें कि भोजन के विना काम चला लेना मेरे लिए कुछ भी कठिन नहीं है।''

''महादेवी का प्रण है कि महल में से कोई भी श्रोत्रिय भोजन पाए बगैर नहीं जाना चाहिए। उनकी आपसे मिलने की इच्छा है।''

''किसलिए?'' द्वैपायन ने पूछा।

''आपने राजकुमार से कहा–'मैं कुछ लेने नहीं, देने आया हूँ!'–आपके इन शब्दों का महादेवी पर बहुत प्रभाव पड़ा है। महादेवी को इन शब्दों की सच्चाई में आस्था है। उनका विश्वास है कि आप भरतश्रेष्ठ को स्वस्थ बनाने में सहायता कर सकते हैं।'' उस स्त्री ने कहा।

''मैं राजकुटुम्ब पर अपने-आपको थोपना नहीं चाहता।'' द्वैपायन ने कहा।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"कृपा करके आप मेरे साथ चलिए। यदि मैं आपको अपने साथ नहीं ले गई तो महादेवी मुझ पर कुपित होंगी।" उस महिला ने आग्रह के साथ कहा।

द्वैपायन ने कुछ देर सोचा। "यदि मैं नहीं चलता हूँ तो तुम दोषी बनो यह भी उचित नहीं होगा।" उन्होंने कहा और उस महिला के पीछे-पीछे वापस राजमहल के लिए चल दिए।

एक विशाल कक्ष में प्रवेश करने पर द्वैप ने एक छोटे-से मन्दिर के समक्ष महारानी को बैठे हुए देखा। उनका सिर और चेहरा एक ओढ़नी से ढँका हुआ था।

द्वैपायन महारानी से थोड़ी दूर खड़े हो गए।

संन्यासी को वापस आया देखकर महादेवी खड़ी हो गईं और हाथ जोड़कर आगे बढ़ीं। द्वैपायन ने उन्हें आशीर्वाद देने को अपना हाथ ऊपर उठाया कि तभी महादेवी के मस्तक से वस्त्र सरक गया।

महादेवी का चेहरा देखते ही द्वैपायन की आँखें आश्चर्य से फैल गईं और उनके हाथ से दंड-कमंडल गिर पड़े।

शैशव में उन्होंने इसी स्नेहपूर्ण चेहरे को देखा था, इस चेहरे को द्वैप आज तक नहीं भूले, वही चमकती आँखें, वही सुकोमल चरण और वही तेजस्वी मुखमंडल! द्वैप तत्काल महारानी के चरणों में साष्टांग गिर पड़े।

महादेवी ने संन्यासी को यों करते देखा तो चकित रह गईं, लेकिन ज्योंही द्वैप खड़े हुए त्योंही उनका मुस्कराता चेहरा तथा प्रेमाश्रुओं से भीगी आँखें देखकर महादेवी ने उन्हें पहचान लिया। दास-दासियों की उपस्थिति के बावजूद वे सभी राजकीय मर्यादाएँ तोड़कर बोल उठीं, "कृष्ण!"

द्वैपायन भावविह्वल हो गए, उनकी आँखों से हर्ष के आँसू उमड़ पड़े। बच्चे की तरह वह सुबकने लगे।

नई परिस्थिति उत्पन्न हो गई देख सभी सेवक कक्ष से बाहर चले गए।

"कृष्ण, तेरे पिताजी कहाँ हैं?" महादेवी ने पूछा।

"चार महीने पहले उनका देहान्त हो गया। हम भस्मक्षेत्र की यात्रा पर गए तब भेड़ियों के वे शिकार हो गए।" द्वैपायन ने कहा।

"अपने पिता की छत्रछाया में तूने ब्रह्मचर्य का समय पूरा कर लिया?" महारानी ने पूछा।

"हाँ, माता!" द्वैपायन ने कहा।

"तू अकेला ही है?"

"माँ, तुम पैल को तो जानती हो, कि नहीं? वह मेरे साथ था, लेकिन गम्भीर रूप से घायल हो गया है और आजकल एक आश्रम में स्वास्थ्य-लाभ कर रहा है।" द्वैपायन ने कहा और पूछा, "इतने बरसों बाद भी तू मुझे पहचान गई?"

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"तेरा चेहरा हमेशा मेरी आँखों के सामने तैरता रहता है। तेरी आँखें और तेरी मुस्कराहट मैं कभी कैसे भूल सकती हूँ? तू मुझे याद करता था?" महादेवी ने पूछा।

"माँ, मैं तुझे कैसे भूल सकता हूँ? पिताजी पितृलोक सिधारे तब मैं तुमसे मिलने कल्पी गया था।" द्वैपायन ने कहा।

"कल्पी के सब लोग कैसे हैं?" महादेवी ने पूछा।

"मैं गाँव के लोगों से मिला। उन्होंने बताया कि तुम किसी राजा के साथ चली गई हो और दादा-दादी भी किसी के साथ चले गए हैं। लेकिन आप सब लोग कहाँ और किसके साथ गए, इसका ज्ञान उनको नहीं था।"

"अरे मैं तो बिलकुल भूल ही गई कि तूने अभी तक भोजन भी नहीं किया है!" महादेवी ने कहा। उन्होंने ताली बजाकर सेवकों को बुलाया और उनसे द्वैप के लिए भोजन लाने को कहा।

द्वैपायन ने भोजन किया। महादेवी उसके सामने सोने-चाँदी से मढ़े पाट पर बैठी रहीं।

तेरह वर्ष पूर्व मर्मान्तक परिस्थितियों में बिछुड़े माँ-बेटे विधि के किसी अद्भुत संयोग से ही आज मिले थे। बेटा धर्मनिष्ठ त्यागी संन्यासी बन चुका था और माँ आर्यावर्त की एक महान सम्राज्ञी!

"तुझे याद है, द्वैप, कि तूने मुझे वचन दिया था कि जब भी मैं याद करूँगी तू मेरे पास आ जाएगा?" महादेवी ने कहा, "मैं तुझे रोज याद करती थी।"

"मैं भी तुझे कैसे भूल सकता था, माँ? मैं रोज यही सोचता था कि तू मेरे पास है। मैंने तो तेरी आवाज भी सुनी थी। तूने कहा था–'कृष्ण तू कहाँ है? तू मेरे पास आता क्यों नहीं?' तेरी यह आवाज सुनते ही मैं चल पड़ा। ईश्वर ने साथ दिया और मुझे यहाँ ले आया।" द्वैपायन मुस्कराए और बोले, "और माँ! मैं कल्पी गया तब मिट्टी के एक घड़े में पीपल का पत्ता रखकर मैंने तुझसे क्षमा माँगने के लिए, उसे पानी में बहा दिया था!"

"क्यों?" महादेवी ने पूछा।

"मैंने जब कल्पी को छोड़ा तब तुम्हें शायद गुस्सा आया हो, ऐसा मैंने सोचा।"

"मैं गुस्सा क्यों होती भला? तूने क्या कोई अपराध किया था?" महादेवी ने हँसकर कहा।

इस बीच एक सेवक–चित्रांगद और विचित्रवीर्य–दोनों राजकुमारों को ले आया। एक ग्यारह बरस का था और दूसरे की उम्र दस वर्ष की थी। दोनों दुर्बल और श्रीहीन चेहरेवाले थे। अधिक लाड़-प्यार के कारण जिद्दी और इतराए हुए लगते थे।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हाथ जोड़कर उन्होंने माँ को प्रणाम किया, लेकिन एक जीर्ण वेशधारी संन्यासी के पास उसे बैठा देखकर उन्हें बुरा लगा। उनके मन का भाव उनके चेहरे पर आसानी से पढ़ा जा सकता था।

महादेवी सत्यवती ने उन दोनों से स्नेहपूर्ण स्वर में कहा, "बेटो, यह महामुनि पराशर का पुत्र कृष्ण द्वैपायन है। मुनि के आशीर्वाद से ही मेरा विवाह तुम्हारे पिता से हो सका था। द्वैपायन अभी अल्प वय में है लेकिन अपने महान पिता की विद्या और तप की विरासत इसे प्राप्त हुई है। इसके चरणों में प्रणाम करो और इससे आशीर्वाद माँगो।"

दोनों ने द्वैपायन को हाथ जोड़कर विधिवत् प्रणाम किया।

चित्रांगद ने माँ की ओर मुड़कर कहा, "माँ, राजकुमार गांगेय ने जिसे बाहर निकाल दिया था वही यह संन्यासी है न?"

इन अपमानसूचक शब्दों पर ध्यान न देते हुए द्वैपायन ने मुस्कराकर दोनों राजकुमारों को आशीर्वाद दिया।

"तुमसे यह क्या माँगता है, माँ?" विचित्रवीर्य ने पूछा।

द्वैपायन ने महादेवी के चेहरे पर इस प्रश्न से पैदा हुए असमंजस का भाव देखा। द्वैप ने कहा, "राजकुमार, मैं महादेवी से या अन्य किसी से भी कुछ नहीं माँगना चाहता हूँ। मैंने राजकुमार गांगेय से भी कहा था कि मैं कुछ लेने नहीं, देने ही आया हूँ!"

"आप हमें क्या दे सकेंगे?" चित्रांगद ने पूछा।

"मैं शाश्वत श्रुति के माध्यम से आपको प्रभु की सहायता दे सकता हूँ।" द्वैपायन ने कहा।

सम्राज्ञी ने अपने पुत्रों को द्वैपायन से विदा लेने की आज्ञा दी। वे अनिच्छापूर्वक वहाँ से चले गए।

जब वे दोनों और अन्य सेवक चले गए तब महादेवी ने द्वैप की ओर मुड़कर कहा, "कृष्ण, मैं बड़ी कठिनाई में पड़ गई हूँ। मैं चाहती हूँ कि आर्यपुत्र स्वस्थ हो जाएँ। मेरे पुत्रों का भविष्य उन्हीं पर अवलम्बित है।"

अब वह महारानी की तरह नहीं बल्कि मछुआरी कन्या की तरह पुत्र से बात कर रही थीं, "जब आर्यपुत्र ने मेरे साथ विवाह की इच्छा व्यक्त की थी तब तुम्हारे नाना ने शर्त रखी थी कि राजकुमार गांगेय राजगद्दी पर न बैठने और अविवाहित रहने की शपथ लें तभी मैं अपनी पुत्री का विवाह तुम्हारे साथ कर सकता हूँ। आर्यपुत्र रुग्ण हैं और उनके द्वारा राजसभा में अभी तक यह घोषित नहीं हुआ है कि राजकुमार गांगेय ने राजसिंहासन स्वीकार न करने की शपथ ली है, इसलिए राजगद्दी चित्रांगद को मिलेगी।"

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"माँ, तुम्हें इस बात का भय क्यों है कि वे यदि राजसभा के सामने यह घोषणा नहीं कर पाते हैं तो गांगेय अपने वचन का पालन नहीं करेंगे?" द्वैपायन ने पूछा।

"मैं गांगेय को जानती हूँ। वह सच्चा, सरल और ईमानदार है। वह माँ के समान ही मेरा आदर करता है। अपने पिता को दिए गए वचन का वह पालन करेगा, इसमें मुझे संशय नहीं है। यही कारण है कि वह एक नहीं अनेक विवाह-प्रस्ताव अस्वीकार कर चुका है। वह मेरे दोनों पुत्रों को राजनीति की शिक्षा भी देता है।" महादेवी ने कहा।

"तब फिर कठिनाई क्या है?" द्वैपायन ने पूछा।

"कुरु सरदारों के अभिमान का पार नहीं। यदि आर्यपुत्र गांगेय की प्रतिज्ञा की बात राजसभा में कहे बगैर पितृलोक चले गए तो सरदारों के बीच द्वन्द्व हो जाएगा। यदि तुम्हारे पिता जिन्दा होते तो मैं मन्त्र-विद्या द्वारा आर्यपुत्र को होश में लाने की प्रार्थना करती। पता नहीं क्यों मेरा मन कहता है कि तुमने वह मन्त्र विद्या अवश्य सीख ली होगी।"

द्वैपायन ने विनम्रतापूर्वक कहा, "मुझे पता नहीं, लेकिन यदि प्रभु की इच्छा हुई तो वे मेरे संकल्प को सफल बनाने में सहायता करेंगे।"

"मैं गांगेय को बुलाती हूँ। वह तुझे आर्यपुत्र के पास ले जाएगा।" महादेवी ने कहा।

गांगेय के आने पर महादेवी ने उससे कहा, "यह महामुनि पराशर के पुत्र द्वैपायन हैं। मैंने इन्हें इसलिए वापस बुलाया था क्योंकि इन्होंने भोजन नहीं किया था। आर्यपुत्र के स्वास्थ्य लाभ के लिए शायद ये मन्त्रविद्या का प्रयोग करेंगे और इन्हें ऐसा करने की अनुमति देने में कोई हानि नहीं है!"

राजकुमार गांगेय जानता था कि अब कोई उपाय उसके पिता की आयु नहीं बढ़ा सकता था। लेकिन माँ की बात रखने के लिए उसने सहमति दे दी।

द्वैपायन ने गंगा में स्नान किया और गायत्री मन्त्र का पाठ करके भगवान सूर्य नारायण से सहायता की प्रार्थना की।

द्वैपायन यों तो स्वस्थ व शान्त ही थे किन्तु जिन चमत्कारपूर्ण घटनाओं में से होकर वे गुजरे थे उनके कारण उनके भीतर करुणा का भाव उत्पन्न हो गया था। पिता की मृत्यु, भेड़ियों और राक्षसों के हाथों मौत के मुँह में जाकर भी जीवित बच जाना, महाअथर्वण जाबालि से मन्त्र विद्या की प्राप्ति और अब अचानक संयोग से माँ से भेंट और सम्राट को स्वस्थ करने का अवसर इन सबमें उन्हें हस्तिनापुर की सहायता से धर्म-क्षेत्र की पुनर्स्थापना की सम्भावना प्रतीत हुई। ईश्वर की इस अनुकम्पा को देखकर वे भीतर-ही-भीतर कृतज्ञता के

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भाव से भर उठे।

सम्राट जिस कक्ष में थे द्वैपायन को वहाँ ले जाया गया। द्वैपायन ने अपने पूर्वज पराशर, शक्ति और वसिष्ठ से सहायता का आह्वान किया, मन्त्रद्रष्टा भृगु और अंगिरस का भी आह्वान किया और गुरु महाअथर्वण का भी स्मरण किया, तेजस्विता के देवता भगवान सूर्य की भी प्रार्थना की और जिनके चरणों में अपने समग्र जीवन को अर्पित कर दिया था, उन श्रुतियों से भी बल माँगा।

फिर द्वैप ने माँ की ओर देखा। माँ के चेहरे पर आशा की झलक थी। उन्होंने सोचा, 'यदि मैं इसमें असफल हो जाता हूँ तो इसका हृदय टूट जाएगा और इसके अधरों की मुस्कान सदा के लिए समाप्त हो जाएगी।' इसलिए उन्हें असफल कदापि नहीं होना है। अब तो धर्मक्षेत्र की स्थापना करके देवताओं के संकल्प को पूरा करना ही होगा।

द्वैपायन ने पूरे विश्वास के साथ चारों ओर देखा। वृद्ध श्रोत्रियगण उस युवा संन्यासी की उद्दंडता का आघात अनुभव कर रहे थे—वर्षों की तपस्या के बाद भी जो इसमें असफल हो चुके, उसमें यह युवक किस प्रकार सफल हो सकता था?

राजपुरोहित आचार्य विभूति सम्राट की शैया के पास मृगचर्म के आसन पर बैठे हुए थे। उनके कंठ में सोने की माला थी और पद के अनुरूप रेशमी उपवस्त्र उनके कन्धे पर लहरा रहा था। मन्त्रविद्या के ज्ञाता और चमत्कार के दावे के साथ आए इस युवक की ओर उन्होंने तिरस्कारपूर्ण दृष्टि से देखा।

सेवकगण आवश्यक सामग्री ले आए और द्वैपायन ने सम्राट की शैया के पास छोटी-सी वेदी पर अग्निदेवता का आह्वान करके उन्हें आहुति दी और फिर वेदी की भस्म को सम्राट के मस्तक, कपोल, छाती और पैरों पर लगाया। जैसे महाअथर्वण ने पैल के शरीर पर भस्म लगाई थी उसी तरह से उन्होंने सम्राट के समूचे शरीर पर लगाई। पहले त्रयी विद्या के और फिर महाअथर्वण द्वारा कहे गए, मन्त्रों का उच्चारण किया। उनकी मधुर गम्भीर ध्वनि से वातावरण गूँज उठा। द्वैप ने यमदेवता का उच्चारण किया और अपनी थैली से चमत्कारी औषधि निकालकर उसे पानी में घोला और फिर उस घोल को सम्राट के होंठों में उँडेला। अनन्त विश्वास के साथ झंकृत होता उनका स्वर समस्त वातावरण को बदल रहा था। सूर्य की किरणों में नया तेज और नई स्फूर्ति प्रतीत होने लगी।

द्वैपायन ने पवित्र वेदी से फिर भस्म ली और सम्राट के शरीर पर लगाई। भस्म लगाते हुए वे बराबर मन्त्रोच्चार करते रहे। सभी लोग उन्हें स्तब्ध होकर देख रहे थे। वातावरण में गूँजता द्वैपायन का स्वर और सम्राट पर टिकी हुई दृष्टि किसी भावी चमत्कार का पूर्वाभास दे रही थी। यज्ञवेदी की ज्वालाएँ तेज और उत्तुंग थीं।

महादेवी अपने पुत्र की आँखों में उपस्थित दृढ़ता को देख रही थीं। उन्हें वे

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दिन याद आ गए जब कल्पी में नदी पट पर खड़ा द्वैप स्थिर दृष्टि से अपने पिता के आगमन की प्रतीक्षा किया करता था। उसकी अगाध निष्ठा के प्रभाव से ही खिंचकर शायद उसके पिता चले आया करते थे।

सभी की आँखें इस युवक पर टिकी हुई थीं, जिसके समस्त शरीर की शक्ति मानो उसकी आवाज में आ बैठी थी। सभी को लगा कि उसकी आँखों से शक्ति की किरणें फूटकर सम्राट की देह में प्रवेश कर रही हैं।

मन्त्रोच्चार चलता रहा। सम्राट की आँखें थोड़ी खुलीं और फिर बन्द हुईं। उनका श्वास भी समान गति से चलने लगा। सम्राट मानो प्रगाढ़ निद्रा में हों, इतने स्वस्थ वे दिखाई पड़ने लगे।

द्वैपायन ने एक बार फिर वही रसायन सम्राट के मुख में डाला। सम्राट ने क्षण-भर के लिए पुनः आँखें खोलीं, राजकुमार गांगेय की तरफ देखा और फिर बन्द कर लीं।

थोड़ी देर बाद सम्राट ने फिर आँखें खोलीं और महादेवी की ओर देखा। उनकी आँखों में पहचान की रेखाएँ उभरीं और फिर आँखें बन्द करके वे निद्रामग्न हो गए।

मन्त्रोच्चार पूरा हुआ। द्वैपायन ने विधिवत यज्ञवेदी का विसर्जन किया और अपना दंड-कमंडल उठा लिया। महादेवी को, राजकुमार गांगेय को और दोनों राजकुमारों को आशीर्वाद दिया और चुपचाप बाहर निकल गए। युवक संन्यासी के चमत्कार की बातें बाहर तक फैल गई थीं और महल के बाहर असंख्य लोग एकत्रित हो गए थे। वे सभी इस युवक को आदर और सम्मान के भाव से देख रहे थे।

द्वैप स्वयं भी इस चमत्कार से स्तब्ध हो गए थे। वे नतमस्तक और विनम्र हृदय से प्रभु की इस कृपा का ध्यान करते हुए मन्दिर की ओर चल दिए।

गांगेय की प्रतिज्ञाएँ

आठवें दिन सम्राट शान्तनु शैया पर बैठने लग गए। आसपास जो कुछ हो रहा था उसमें रुचि लेने लगे और धीमी-धीमी आवाज में थोड़ा बोलने भी लगे।

दोपहर को जब उपचार-क्रिया पूरी हुई तो द्वैपायन ने यज्ञवेदी का विसर्जन किया और मन्दिर जाने की तैयारी करने लगे।

सम्राट कोमल गद्दे पर लेटे हुए थे। उनकी बाईं ओर महारानी सत्यवती बैठी थीं और उनका हाथ धीरे-धीरे दबा रही थीं। सम्राट स्वस्थ हो गए हैं और यह

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

चमत्कारी कार्य उसके पुत्र ने कर दिखाया है, इसका सन्तोष और सुख उनके चेहरे पर साफ दिखाई दे रहा था।

शैया के पास दो परिचारिकाएँ यन्त्रवत् पंखा झल रही थीं।

शैया की दाहिनी ओर राजकुमार गांगेय बैठे थे। उनके चेहरे से अब चिन्ता की रेखाएँ जा चुकी थीं और वे द्वैपायन की ओर आदर-भाव से देख रहे थे। कितने ही उपचार निष्फल हो जाने के बाद उनके पिता किस तरह पुनः स्वस्थ हो गए हैं यह देखकर वे हैरान थे। उन्हें अब स्पष्ट लग रहा था कि यह तरुण संन्यासी भविष्य में निश्चय ही प्रख्यात होगा।

राजपुरोहित आचार्य विभूति द्वैपायन के पास बैठे हुए थे और संशय भाव से उसे देखते जा रहे थे। इस चमत्कार से उन्हें जो आघात लगा था उससे वे अभी तक उबर नहीं पाए थे। इस युवक ने जो मन्त्र पढ़े थे उनमें से अधिकांश मन्त्र तो वे भी जानते थे, मन्त्रविद्या का उनका अनुभव भी बहुत लम्बा था। पर इसके बावजूद चमत्कार किया इस अनजाने संन्यासी ने, यह तथ्य उनके गले नहीं उतर रहा था।

आचार्य विभूति का श्रोत्रियों में अनन्य आदर था। अथर्वण शाखा को श्रुति का अंग स्वीकार किए जाने के वे कट्टर विरोधी थे। रुग्ण सम्राट की शैया के पास वे कर्तव्य से बँधे होने के कारण बैठे थे, अन्यथा जिस समय द्वैपायन ने अथर्वण शाखा का मन्त्र-पाठ करना शुरू किया और उस शाखा द्वारा विहित चमत्कारी वनस्पति का उपयोग किया तभी वे उठकर चले गए होते।

युवा मन्त्री कुणिक एक विचक्षण और महत्त्वाकांक्षी मनुष्य था। शैया के पास खड़ा वह यही हिसाब लगा रहा था कि हस्तिनापुर पर द्वैपायन का कितना प्रभाव पड़ेगा और उससे वह कितना लाभ उठा सकेगा।

कक्ष छोड़ने से पहले द्वैपायन सर्वप्रथम गांगेय के पास गए और धीमे से उससे कहा, "मुझे कक्ष में थोड़ा एकान्त चाहिए।" गांगेय ने कुणिक तथा सेवकों को कक्ष से बाहर जाने का संकेत किया।

सभी के बाहर चले जाने पर द्वैपायन ने सम्राट से कहा, "हे भरतश्रेष्ठ, मेरा उपचार कल नौवें दिन समाप्त हो जाएगा। उसके बाद आप थोड़ा चलने लगेंगे। फिर मेरी जरूरत नहीं रहेगी।"

शान्तनु ने दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया और पूछा, "मैं आपका ऋण कैसे चुका सकता हूँ, पूज्य द्वैपायन?" सम्राट की आँखें कृतज्ञता से छलक उठी थीं।

"ऋण चुकाने की बात कह रहे हैं?" द्वैपायन ने हँसकर कहा, "ऋण चुकाने के लिए आप मुझे कुछ भी दीजिए मैं उसका क्या करूँगा? इसके बदले में यदि कुछ स्वीकार करता हूँ तो मेरे तप का महत्त्व घट जाएगा और मेरे मन्त्रों की शक्ति

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

क्षीण हो जाएगी। लेने लायक मैंने कोई काम किया भी नहीं है। भगवान सूर्य मुझे हस्तिनापुर की तरफ लाए और आपका उपचार करने की शक्ति दी। श्रोत्रियों की शक्ति तो भगवान सवितानारायण ही हैं न!"

शान्तनु ने गांगेय को संकेत किया। गांगेय ने झुककर पिता की बात सुनी और द्वैपायन की ओर देखकर पूछा, "पिताजी, यह जानना चाहते हैं कि आप जो लक्ष्य प्राप्त करना चाहते हैं उसमें क्या वे किसी भी प्रकार से सहायक हो सकते हैं?"

"भरतश्रेष्ठ!" द्वैपायन ने उत्तर दिया, "आपने मुझ पर बहुत बड़ा उपकार किया है। आपका उपचार करते-करते मुझे ऐसा आत्मविश्वास उपलब्ध हुआ है कि जो लक्ष्य मुझे प्राप्त करना है उसमें भगवान सूर्य मेरे साथ हैं। मेरे जीवन का एक ही लक्ष्य है। अपने पूर्वजों के धर्म की पुनर्प्रतिष्ठा!"

"पिताजी ने भी समूचा जीवन धर्म की सहायतार्थ बिताया है।" गांगेय ने कहा।

शान्तनु के होंठों पर मुस्कराहट की रेखा उभर आई। फिर उनके होंठों में थोड़ा कम्पन आया और धीमे अस्फुट स्वर में बोले, "हाँ, धर्म आज पतन की ओर जा रहा है।"

"सम्राट, यह किसी एक का दोष नहीं है। सहस्रार्जुन अग्नि की तरह चारों ओर फैल गया था। उसकी राह में जो पड़ा उसने उसका सफाया कर दिया..." द्वैपायन ने कहा, "उसके प्रतिरोध के लिए आर्यों को अपना सर्वस्व होम कर लड़ना पड़ा था। उस युद्ध में आपने स्वयं नेतृत्व किया था, आपको सब ज्ञात है। कितने आश्रम ध्वस्त हुए थे, कितने लोग बेघरबार हो गए थे, कितने परिवार उजड़ गए थे, कितनी स्त्रियों का शील खतरे में पड़ा, कितनी स्त्रियों ने मृत्यु का वरण किया और कितनी स्त्रियाँ वासना का शिकार हुईं। धर्मप्रिय लोग भुला दिए गए। आर्यों का जीवन नियमन करनेवाला प्राचीन विधान विस्मृति के गर्त में डाल दिया गया है।"

"इससे उबरने का कोई रास्ता है?" सम्राट ने पूछा। द्वैपायन जिस तरह बात कर रहे थे उसमें उन्हें रस आने लगा था।

"एक ही रास्ता है, सम्राट! उस अनर्थकारी युद्ध से पहले क्षात्रतेज और ब्रह्मतेज में जो समन्वय था, उसी की फिर से स्थापना करो।" द्वैपायन ने कहा।

गांगेय ने सहमतिसूचक सिर हिलाया, "यह सच है, द्वैपायन!" उसने कहा, "लेकिन यह कैसे सम्भव हो सकता है?"

"मेरे पिताजी, मुनि पराशर कहा करते थे कि श्रोत्रिय गण यदि धर्ममय जीवन का पालन नहीं करते हैं और क्षत्रिय गण धर्म की रक्षा नहीं करते हैं तो धर्म टिकेगा नहीं।" द्वैपायन ने कहा।

"आप जो कहते हैं वह सच है, द्वैपायन!" गांगेय ने सिर हिलाते हुए कहा,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"मनु और विवस्वान का यशस्वी काल अब नहीं है, क्षत्रियों को तपस्या के मूल्य का ज्ञान नहीं है। वे सत्ता के पीछे भागते हैं, विलास में जीवन नष्ट करते हैं, एक-दूसरे की हत्या करते हैं और धर्म की हँसी उड़ाते हैं।"

गांगेय ने स्नेहपूर्वक अपना हाथ पिता के कन्धे पर रखा और कहा, "पिताजी की भी यही उलझन है। धर्मसम्मत जीवन की कला क्षत्रिय लोग गँवा बैठे हैं। अब क्या हो सकता है?"

द्वैपायन ने मधुर मुस्कान के साथ कहा, "आप और सम्राट निश्चय कर लें तो अभी भी बहुत कुछ सम्भव है।"

"मैं तो बहुत चाहता हूँ," गांगेय ने निःश्वास फेंकते हुए कहा, "लेकिन कई बार मुझे स्वयं ही धर्म के आदेशानुसार जीवन जीने में कठिनाई का अनुभव होता है।"

"राजकुमार, आप हताश न हों!" द्वैपायन ने कहा। उनकी आवाज में अपनी उम्र से अधिक ज्ञानगाम्भीर्य परिलक्षित होता था। "अन्धकार से ही प्रकाश का जन्म होता है। अधर्म से निकलने का मार्ग न भी नजर आता हो तो भी उसमें धर्म को बल मिल जाता है।"

"आप कोई रास्ता बताइए। पिताजी हरसम्भव सहायता करेंगे।" गांगेय ने कहा। आयु में कम होते हुए भी गांगेय की इच्छा इस तरुण संन्यासी के समक्ष नमन करने की होने लगी थी।

"रास्ता सरल है। आपने, मैंने और अन्य सैकड़ों लोगों ने जब ब्रह्मचर्य की दीक्षा ली तब ये प्रतिज्ञाएँ ली थीं–

'मैं शुभ को याद रखूँगा,
अशुभ को भुला दूँगा।
मैं आचरण में विश्वास को स्थान दूँगा,
अविश्वास को भगा दूँगा।
मैं ज्ञान का आदर करूँगा,
अज्ञान को कोई महत्त्व नहीं दूँगा।
मैं सत्य का अनुसरण करूँगा,
असत्य को टिकने नहीं दूँगा।
मैं अपने जीवन को पवित्र रखूँगा,
विलास का त्याग करूँगा।'

हम सभी लोग इन प्रतिज्ञाओं का पालन करें तो भगवान सवितानारायण हमें अवश्य रास्ता बताएँगे।" द्वैपायन ने कहा।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

क्षण-भर के लिए द्वैपायन ने आँखें मूँद लीं, फिर नम्रता के साथ कहा, ''आप यह न समझें कि मैं इन तमाम प्रतिज्ञाओं का दृढ़तापूर्वक पालन करता हूँ। मात्र इनकी पालना का हरसम्भव प्रयत्न करता हूँ।''

इतना कहकर वह थोड़ा रुके। प्रासाद के गवाक्ष से धूप और द्वार से आते सूर्य के प्रकाश की ओर वह चुपचाप देखते रहे और फिर सूर्य से प्रेरणा माँगने के लिए गायत्री मन्त्र का उच्चार करने लगे। मन्त्रोच्चार के बाद बोले, ''मुझे असफलताएँ मिली हैं लेकिन मेरा आत्मविश्वास कभी डिगा नहीं। अपने पिता मुनि पराशर के साथ ली हुई प्रतिज्ञा को मैं कभी भी भुला नहीं सका।'' कहते-कहते द्वैप की आवाज और आँखों में आत्मविश्वास की जैसे नई शक्ति प्रकट हो उठी।

मुनि पराशर के नाम का उल्लेख होते ही सत्यवती के कपोलों पर रक्तिमा तैर गई। उन्होंने मधुर स्वर में पूछा, ''मुनि ने और तुमने क्या प्रतिज्ञा ली थी?'' फिर सम्राट की ओर देखकर कहा, ''आर्यपुत्र तो जानते ही हैं कि मुनि पराशर के आशीर्वाद से ही मुझे आर्यपुत्र को प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।''

द्वैपायन इस बार हिचकिचाए नहीं। दृढ़ता से और निर्णयात्मक स्वर में उन्होंने कहा, ''पिताजी ने संकल्प किया था कि धर्म का जो प्रेरणास्रोत है उस धर्मक्षेत्र की पुनर्स्थापना करनी चाहिए। मैं उसी संकल्प की पूर्ति के लिए जी रहा हूँ।''

''भेड़ियों का क्षेत्र तो अब जंगली पशुओं से भरा बीहड़ जंगल बन चुका है।'' गांगेय ने कहा।

द्वैपायन ने हँसकर कहा, ''राजकुमार, क्या मैं इतना भी नहीं जानता? अपने मित्र पैल के साथ मैंने उस वन में पूरी रात बिताई है। वहाँ भेड़ियों, रीछों और अन्य वन्य पशुओं के साथ राक्षसों का भी आवास है। यदि भगवान सवितानारायण ने हमारी सहायता के लिए पूज्य मुनि को न भेजा होता तो राक्षसों ने हमें मार ही डाला होता!''

''वन्य पशुओं का नाश करना तो आसान है, लेकिन वह भूमि शापग्रस्त है, मारे गए असंख्य योद्धाओं के प्रेत वहाँ फिरते रहते हैं। मनुष्यों के लिए वहाँ रहना असम्भव हो चुका है।'' गांगेय ने कहा।

''मैं वहाँ जाकर रहूँगा।'' द्वैपायन ने प्रसन्नता से मुस्कराकर कहा, ''जहाँ श्रोत्रियगण अपनी प्रतिज्ञाओं का पालन करते हों वहाँ आश्रम विकसित हुए बिना रहेगा नहीं।''

कुछ देर बाद द्वैपायन ने फिर कहा, ''हे राजकुमार गांगेय, ब्रह्मतेज और क्षात्रतेज का समन्वय हुए बिना धर्म का उदय नहीं हो सकता। यह नहीं हुआ तो धर्मानुरागियों को कन्दराओं में जाकर बसना पड़ेगा और अन्य लोग जंगली जानवरों

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जैसे बन जाएँगे।''

''यह जरूर याद रखिए कि पिताजी ने क्षात्रतेज के विकास का हरसम्भव प्रयास किया था, लेकिन आवश्यकतानुसार पूरा सहयोग मिला नहीं।'' गांगेय ने कहा।

''इसमें गलती हमारी ही है, राजकुमार! हम जो लोग धर्मानुरागी कहलाते हैं वे भी अपनी प्रतिज्ञाओं का पालन नहीं करते। सर्वस्व देकर भी आचार की रक्षा के लिए जब तक हम साहस नहीं जुटाएँगे, तब तक मानव हृदय में हम कोई स्फुरण पैदा नहीं कर सकेंगे।''

गांगेय विचारों में खो गया। उसे लगा कि यह युवा संन्यासी अपरिचित होते हुए भी उसे फटकार लगा रहा है।

गांगेय के मन का भाव जैसे द्वैपायन ने जान लिया हो; बोले, ''गांगेय, आपमें ये दोनों तेज एकसाथ विद्यमान हैं। आप जिस निष्ठा से प्रतिज्ञापालन करते हैं, महारानी उसकी प्रशंसा कर रही थीं।''

सम्राट ने गांगेय की ओर स्नेह से देखा और मन्द स्वर में कहा, ''गांगेय कभी भी धर्म-पथ से विचलित नहीं होता।''

''सम्राट, प्रतिज्ञा लेना और उसे पूरा करना एक बात है, लेकिन धर्म-पथ पर चलने के लिए दूसरों को तैयार करना और फिर उस पर उन्हें प्रवृत्त कर देना बिलकुल दूसरी बात है।'' द्वैपायन ने कहा।

''आप जो कहते हैं वह मैं समझ रहा हूँ।'' गांगेय ने कहा, ''मैं अपनी ओर से तो स्वयं अपने-आपको धर्म-मार्ग पर चलाने का पूरा प्रयत्न करता हूँ, किन्तु दूसरे लोगों का हृदय-परिवर्तन करने में मुझे सफलता मिली नहीं है।''

''वीर गांगेय, आप मुझसे कहीं अधिक बड़े हैं और अधिक लोगों के सम्पर्क में आए हैं, इसलिए मैं कोई सुझाव दूँ तो आप मुझे क्षमा करेंगे। तपस्यामय जीवन बिताना एक बात है लेकिन दूसरों पर इसका प्रभाव डालना दूसरी बात।'' द्वैपायन ने कहा।

''यह सच है।'' मानो स्वयं से बात कर रहा हो, इतने धीमे स्वर में गांगेय बोला, ''मुझे दिन-रात यही विचार सताता रहता है कि मैं जिस कठोरता से आचरण करता हूँ उसका लोग गलत अर्थ लगाते हैं।''

''आप अपने आचार में सच्चे हैं गांगेय, लेकिन अपने संकल्प की ज्योति से अन्य लोगों के हृदय में विश्वास की ज्योति पैदा नहीं कर सके हैं। मैं जो कुछ समझ सका हूँ यदि वह सही है तो कुछ सेनाधिकारी आपका नेतृत्व छिन जाने की कल्पना मात्र से काँप रहे हैं।''

द्वैपायन ने जो कहना चाहा था वह गांगेय की समझ में आ गया। थोड़ी देर

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तो वह चुप रहा फिर स्वीकार करते हुए बोला, ''यह बात मेरे, मेरे पिता और मेरी माँ के बीच की है, ऐसा मानना मेरी भूल थी। लोग मनमानी बातें किया करते हैं। माँ ने मुझे सगे पुत्र-सरीखा रखा है फिर भी लोग माँ को दोष दिया करते हैं।''

''चित्रांगद का युवराज-पद पर अभिषेक हो जाए तो लोगों की बातें बन्द हो जाएँगी।'' द्वैपायन ने कहा।

शान्तनु ने कहा, ''मैं पितृलोक को जाऊँगा तब कुछ सरदार न जाने क्या करेंगे, इसकी मुझे बहुत चिन्ता हुआ करती है।''

गांगेय ने धीमे स्वर में कहा, ''हाँ, आपका कथन सत्य है। कुछ लोग मेरे तथा चित्रांगद के पक्षधरों के बीच द्वन्द्व खड़ा करने में लगे हैं और यदि यह द्वन्द्व हुआ तो हस्तिनापुर का बुरा हाल होगा।''

''तुम ही कोई उपाय करो इस स्थिति को टालने का।'' सम्राट बोले।

''पिताजी, आज्ञा दें तो कल ही हम राजसभा बुला लेते हैं और युवराज-पद पर चित्रांगद का अभिषेक कर देते हैं। उस अवसर पर मैं अपनी प्रतिज्ञा की घोषणा भी करूँगा और यह भी घोषणा कर दूँगा कि राजा कोई भी हो, मैं हर तरह हस्तिनापुर में भरतवंशी राज्य की रक्षा करूँगा।''

द्वैपायन ने कहा, ''राजकुमार की बात सही है। ऐसा हो गया तो इनका जीवन धर्म की तेजस्वी तलवार बन जाएगा।''

''द्वैपायन यहाँ से जाएँ, उससे पहले राजसभा बुला लो।'' शान्तनु ने कहा।

''मैं अब यहाँ अधिक समय नहीं रुक सकता; तीन दिन में हस्तिनापुर छोड़ देने का मैंने निर्णय किया है।'' द्वैपायन ने कहा।

''पिताजी की आज्ञा हो तो हम परसों राजसभा बुला लें।'' गांगेय ने कहा, ''तब तक, द्वैपायन ने जैसा कहा है, पिताजी चलने-फिरने लायक हो जाएँगे।''

राजसभा

हस्तिनापुर में दावानल की तरह यह खबर फैल गई कि सम्राट स्वस्थ हो गए हैं और बात भी करने लगे हैं। जिस युवा संन्यासी ने यह चमत्कार कर दिखाया था उसका दर्शन करने के लिए लोग राजमहल की ओर उमड़ पड़े।

प्रतीपेश्वर मन्दिर में इस संन्यासी का आशीर्वाद लेने को भारी जनसमुदाय एकत्रित हो गया। इस भीड़ में बीमार और अपंग भी थे जो करुण स्वर में संन्यासी से प्रार्थना कर रहे थे कि वह उन्हें भी स्वस्थ बना दें। द्वैपायन ने मधुर मुस्कान के साथ हाथ उठाकर सभी को आशीर्वाद दिया।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भीड़ इतनी अधिक थी कि रात को वह जिस कुटीर में विश्राम करते थे वहाँ से उन्हें भोजन के लिए पाकशाला ले जाने में भी मन्त्री कुणिक और उनके साथ आए रक्षकों को बहुत कठिनाई हुई।

द्वैपायन नदी पर गए। सन्ध्यावन्दन किया। प्रतीपेश्वर मन्दिर में पूजा की और फिर अपने विश्रामस्थल पर वापस आ गए।

सम्राट की चिकित्सा के दौरान द्वैपायन रोज शाम को एक ही समय भोजन करते थे। द्वैपायनजी की सेवा में लगे मन्त्री कुणिक को अब यह ज्ञात हो गया था कि भोजन में वह क्या लेना पसन्द करते हैं। द्वैपायन वहाँ एकत्रित बालकों के भोजन कर लेने पर ही भोजन करते थे।

समूचे हस्तिनापुर में उस समय हर्ष छा गया जब राज्य की ओर से यह घोषणाएँ हुईं–

"पूज्य भरतश्रेष्ठ सम्राट हस्तिनापुर के प्रिय प्रजाजनों से निवेदन करते हैं कि वे अब लगभग पूरी तौर से स्वस्थ हो गए हैं।

"भगवान प्रतीपेश्वर की कृपा से कल वे अपने गवाक्ष से प्रजाजनों को दर्शन प्रदान करेंगे।

"कल सवेरे ही सूर्योदय के बाद छह घटिकाएँ बीतने पर राजसभा बुलाने का निर्णय किया गया है। उसमें युवराज गांगेय सत्ताधिकार छोड़ने की अपनी प्रतिज्ञा की घोषणा करेंगे। उसके बाद राजकुमार चित्रांगद का राज्याभिषेक होगा।

"सम्राट को नवजीवन प्रदान करनेवाले मुनिश्रेष्ठ द्वैपायन भी राजसभा में उपस्थित रहेंगे।"

यह घोषणा कई कुरु सरदारों को वज्रपात के समान लगी। वे चाहते थे कि युवराज गांगेय ही सम्राट के उत्तराधिकारी हों। इनमें कुछ ऐसे भी थे जो यह जानते हुए भी कि राजकुमार गांगेय राजगद्दी स्वीकार नहीं करेंगे, गांगेय को ही सम्राट बनाने की योजनाएँ बना रहे थे। उनकी मान्यता थी कि यह सब महारानी सत्यवती की ही चाल है।

लेकिन सामान्यजन को राजमहल की इन भीतरी गतिविधियों में कोई रुचि नहीं थी। उनको इसी में आनन्द था कि उनके प्रिय सम्राट शान्तनु स्वस्थ हो गए हैं। अब वे यदि कुछ चाहते थे तो मात्र इतना ही कि उस युवा संन्यासी का आशीर्वाद उनको भी मिले।

उपचार के नौवें दिन द्वैपायन ने हाथ पकड़कर सम्राट को खड़ा किया। काँपते हुए पैरों से सम्राट पलँग से उतरे और कुछ कदम चले।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दसवें दिन का उपचार होने के बाद राजसभा की वैठक हुई। कोई-न-कोई घटना घटनेवाली है, इस आशा में प्रमुख श्रोत्रियगण, कुछ सरदार और सभा में बैठने योग्य अधिकारी सभी सभा में उपस्थित थे।

सम्राट शान्तनु को सभा-भवन में लाते ही सभी सभासद उनके चरण-स्पर्श के लिए आगे की ओर उमड़े।

पुरोहित, आचार्य विभूति तथा प्रमुख श्रोत्रियजनों ने आशीर्वादपूर्ण श्लोकों का उच्चार किया। फिर राजकुमार गांगेय खड़े हुए। राजसभा को सम्बोधित करते हुए उन्होंने अपनी विशिष्ट शैली–शान्त किन्तु दृढ़ स्वर में कहा, "मेरे पूज्य पिताजी, श्रद्धेय सम्राट भरतश्रेष्ठ अब स्वस्थ हो रहे हैं। मैं कामना करता हूँ कि प्रभु इन्हें दीर्घायु प्रदान करें।"

"कई वर्ष पूर्व पिताजी का जब महारानी सत्यवती से विवाह हुआ था तब मैंने कुछ प्रतिज्ञाएँ की थीं। कोई घोषणा न होने के कारण इनके विषय में तरह-तरह की अफवाहें फैली हुई हैं। सत्य क्या है, वह मैं ही बता सकता हूँ और इसीलिए यह आज की सभा बुलाई गई है।

"मैंने प्रतिज्ञा की है कि मैं आजन्म अविवाहित रहूँगा और इस कारण कभी भी हस्तिनापुर के राज्य-सिंहासन पर अधिकार का दावा नहीं करूँगा।

राजसभा साँस रोककर गांगेय की ये प्रतिज्ञाएँ सुन रही थी। कुछ क्षण रुककर गांगेय ने फिर कहा, "इसके अतिरिक्त मैंने यह भी प्रतिज्ञा की है कि जब तक मैं जीवित रहूँगा तब तक हस्तिनापुर के साम्राज्य की रक्षा करूँगा।

"कुछ कुरु सरदार हैं जिनकी इच्छा मुझे गद्दी पर बैठाने की है। उनका मैं कृतज्ञ हूँ, लेकिन मैं इस राजगद्दी को स्वीकार करूँगा नहीं।.

"मेरी प्रार्थना स्वीकार कर पूज्य सम्राट ने मेरे प्रिय भाई चित्रांगद का हस्तिनापुर के युवराज के रूप में राज्याभिषेक किए जाने की अनुमति प्रदान की है। इससे किसी को भी चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है।"

राजसभा के अधिकांश सदस्य यह सुनकर भाव-विह्वल हो गए, उनकी आँखों में आँसू छलक आए। कुछ देर बाद जब वे प्रकृतिस्थ हुए तो उन्होंने जयनाद किया, "गांगेय की जय हो।"

कुछ कुरु सरदारों को लगा कि उनकी उपेक्षा की गई है। वे बहुत निराश हुए, नाराज भी हुए। उनको लगा कि यह सब महारानी सत्यवती ने कुरुओं की शक्ति को छिन्न-भिन्न करने के उद्देश्य से ही किया है। लेकिन राजकुमार गांगेय के मन में ऐसी कोई शंका नहीं थी।

उन्होंने आगे कहा, "मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप सब भरत-श्रेष्ठ के निर्णय को शिरोधार्य करें। उनकी जो इच्छा है वही प्रभु की आज्ञा है। आप जो

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

निष्ठा और मान मुझे दिया करते थे वैसा ही कृपया युवराज चित्रांगद को देते रहें, यही आपसे मेरा अनुरोध है। मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप उनसे असहमति का कोई क्षीण स्वर भी मुख से न निकालें। मैंने भरतश्रेष्ठ को वचन दिया है कि जब तक मैं जीवित रहूँगा तब तक हस्तिनापुर और इसके शासन का साथ दूँगा और हस्तिनापुर की कीर्ति को अक्षुण्ण रखूँगा।''

पुरोहित आचार्य विभूति ने खड़े होकर पवित्र यज्ञवेदी के समक्ष चित्रांगद का युवराज के रूप में अभिषेक किया। सम्राट ने उसे आशीर्वाद दिया और उसके मस्तक पर मुकुट रखा।

द्वैपायन शान्त बैठे थे। उनके चेहरे पर मन्द मुस्कान थी। मन-ही-मन उन्होंने कहा, ''हे सवितानारायण, आपने यहाँ लाकर मुझ पर बहुत बड़ा उपकार किया है। अब हस्तिनापुर धर्म को स्थिरता दे सकेगा और इससे माँ को सुख मिलेगा।''

राजसभा की बैठक समाप्त हुई। सम्राट शान्तनु को शय्यासमेत सभा-भवन से बाहर ले जाकर उनके शयनकक्ष में पहुँचा दिया गया। उनके सेवकों के अलावा गांगेय, चित्रांगद तथा विचित्रवीर्य ने भी इसमें सहारा दिया।

कई लोग द्वैपायन का चरण-स्पर्श करने लगे। वृद्ध श्रोत्रियों ने आ-आकर उसे आशीर्वाद दिया।

कुणिक के लिए द्वैपायन को सभा-भवन से बाहर ले जाना समस्या हो गई। बड़ी मुश्किल से वह उन्हें बाहर ले जा सका। बाहर भी भारी संख्या में भीड़ उनसे आशीष प्राप्त करने को एकत्रित थी।

महारानी ने द्वैपायन को राजमहल में भोजन करने का निमन्त्रण दिया, लेकिन द्वैपायन ने उत्तर दिया, ''मन्दिर के आँगन स्थित आम्रकुंज में मेरे भोजन में हिस्सा बँटानेवाले बालवृन्द प्रतीक्षा कर रहे होंगे। उन्हें मैं निराश नहीं कर सकता।''

'यह रहा वह पुत्र'

दोपहर के समय द्वैपायन विदा लेने के लिए राजमहल गए। जब वे सम्राट के पास पहुँचे तब गांगेय अपने नियत स्थान पर बैठा था। पलँग पर सम्राट की बाईं ओर महारानी सत्यवती बैठी थीं। राजपुरोहित आचार्य विभूति भी अपने आसन पर विराजमान थे।

द्वैपायन ने जब कक्ष में प्रवेश किया तब गांगेय ने कुणिक तथा सेवकों को बाहर चले जाने का संकेत किया।

औपचारिक प्रणाम-वन्दना के बाद गांगेय ने अपना हाथ पिता के हाथ पर

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

रखा और कहा, "पूज्य द्वैपायन, आप कल चले जाएँगे। आपने उस दिन जिस विषय पर बात की थी उस पर पिताजी, माताजी और मैंने विचार किया है। पिताजी का कथन सत्य है। हम आपके परम ऋणी हैं। उऋण होने के लिए कुछ तो करना ही चाहिए। आप ही बताइए, हम कैसे आपके सहायक हो सकते हैं?"

द्वैपायन ने कहा, "मेरी सबसे पहली इच्छा धर्मक्षेत्र में एक आश्रम स्थापित करने की है।"

"आप आज्ञा करें तो अभी से तैयारियाँ प्रारम्भ कर दी जाएँ?" गांगेय ने पूछा।

"नहीं, अभी नहीं।" द्वैपायन ने कहा, "मैं यमुना तट पर बसे आश्रमों में प्रतीक्षा करते अपने पिता के शिष्यों से मिलने जा रहा हूँ। उनको साथ लेकर मैं वापस धर्मक्षेत्र आऊँगा।"

"आपके पूज्य पिताश्री के शिष्य यमुना-तट पर रहते हैं?" सम्राट ने पूछा।

"हाँ, मुझे पता है।" महारानी ने कहा, "जब सहस्रार्जुन ने मुनि के आश्रम को ध्वस्त किया तब अधिकांश शिष्य तो मार डाले गए थे, लेकिन कुछ वरिष्ठ शिष्य बच निकले और उन्होंने यमुना-तट पर छोटे-छोटे आश्रम स्थापित कर लिए।" सत्यवती आँखें झुकाए बोल रही थीं।

गांगेय द्वैपायन की ओर मुड़े और उनसे पूछा, "आपके पिता इस नरसंहार से कैसे बचे?"

"सहस्रार्जुन ने जब उनके आश्रम को आग लगाई तब वे वहाँ नहीं थे, इस कारण वे बच गए। लेकिन बाद में अपने शिष्यों के आश्रम की वे प्रतिवर्ष यात्रा करते थे। मैं बड़ा हुआ तब मुझे भी इन आश्रमों की यात्रा पर ले जाते थे। वे वहाँ जाते तब आश्रमवासियों को ऋत और धर्म की महत्ता समझाते, ईश्वर की पूजा और श्रुतियों का आदर करने की प्रेरणा देते। अब मैं इन आश्रमों की यात्रा करके यह जानने का प्रयास करूँगा कि इनमें से कितने द्विज धर्मक्षेत्र में आकर आश्रम स्थापित करने को तैयार हैं।" द्वैपायन ने कहा।

"इस अभिशप्त स्थान पर आप क्यों जाना चाहते हैं?" गांगेय ने पूछा, "आश्रम स्थापित करने के लिए मैं आपको गंगा किनारे कोई रमणीक स्थान ढूँढ़ दूँ तो?"

द्वैपायन ने अस्वीकृति में सिर हिलाते हुए कहा, "गंगातट पर बसे आश्रम पिता द्वारा निर्धारित ऋत् और धर्म की आचारसंहिता का पालन नहीं करते।"

आचार्य विभूति इन आश्रमों के धर्मगुरु माने जाते थे, इसलिए उनको यह टिप्पणी आपत्तिजनक लगी। बचाव में कुछ कहने को वे उद्यत हुए किन्तु होंठों तक आए शब्दों पर उन्होंने नियन्त्रण कर लिया और संयम रखा।

द्वैपायन ने आगे कहा, "यदि धर्ममय जीवन की रक्षा करनी है तो श्रुतिपरायण

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जीवन के सुदृढ़ आधार पर हमें धर्मक्षेत्र का फिर से निर्माण करना ही होगा।''

आचार्य विभूति के चेहरे पर अप्रसन्नता का भाव झलका। यह युवा संन्यासी अब उनको उद्दंडता की ओर बढ़ता हुआ प्रतीत हुआ।

''जैसी आपकी इच्छा,'' गांगेय ने कहा, ''मैं आखेटकों और वनवासियों को भेजकर वन से जंगली जानवरों का सफाया करने का प्रबन्ध कर देता हूँ।''

द्वैपायन ने थोड़ी देर सोचा। कुछ क्षण के लिए उनके चेहरे पर चिन्तन का भाव छाया रहा फिर ऊपर की ओर देखकर सम्राट से कहा, ''हे भरतश्रेष्ठ, कुरुओं की शक्ति से आपने हैहयों का नाश किया, इसी से भेड़ियों का यह क्षेत्र सच्चे अर्थ में कुरुक्षेत्र कहलाता है।''

द्वैपायन कुछ क्षणों के लिए फिर चुप हो गए। ध्यानस्थ। ऐसा लगा मानो भगवान सवितानारायण से शक्ति व प्रेरणा के लिए प्रार्थना कर रहे हों। फिर बोले, ''सम्राट विजयी हुए हैं। अनेक राजाओं ने आपको चक्रवर्ती के रूप में स्वीकार किया है। फिर भी आपने वाजपेय, राजसूय अथवा अश्वमेध जैसे महायज्ञ नहीं किए। नम्रता धारण कर ली।''

द्वैपायन फिर कुछ क्षणों के लिए चुप रहे। सभी लोग उनके बोलने की प्रतीक्षा करते हुए उत्सुकता से उनकी ओर देखते रहे।

''सम्राट!'' वह बोले, ''श्रुतियों ने आपको जीवनदान दिया है। आप ही धर्मक्षेत्र का उद्धार करेंगे ऐसा भगवान सवितानारायण का संकेत आपके इस नवजीवन में सन्निहित है। इसलिए यदि आप धर्मक्षेत्र में महायज्ञ कर सकें तो यह बिलकुल उचित और उपयुक्त होगा।''

आचार्य विभूति से अब चुप नहीं रहा गया। उनको लगा कि द्वैपायन का जाल अब बहुत दूर तक बढ़ता चला जा रहा है। उन्होंने प्रश्न किया, ''श्रद्धेय सम्राट स्वास्थ्य की इस अवस्था में किस प्रकार भेड़ियों के क्षेत्र में जा सकेंगे?''

''पूज्य आचार्य को ज्ञात है कि वाजपेय यज्ञ मात्र सत्तर दिन में पूरा हो जाता है। दूसरे महायज्ञों में तो महीनों-बरसों लग जाते हैं, अतः श्रद्धेय सम्राट इतना प्रवास तो सहन कर ही सकते हैं। उनके स्वास्थ्य पर इसका कोई विपरीत प्रभाव नहीं होगा। सम्राट चाहेंगे तो मैं भी उनके साथ चलूँगा।'' द्वैपायन ने कहा।

''यह तो अत्यन्त जोखिम-भरा काम है और सम्राट ऐसी जोखिम उठाएँ, राजपुरोहित के नाते ऐसी राय मैं तो दे नहीं सकता।'' आचार्य विभूति ने कहा।

''भगवान सवितानारायण ने सम्राट को जीवनदान दिया, इसमें उनका आशय यही है कि सम्राट धर्मक्षेत्र में महायज्ञ करें। सम्राट उस यज्ञ के होता के रूप में वहाँ होंगे तो समस्त कुरु सरदार भी वहाँ होंगे, सम्राट को चक्रवर्ती रूप में स्वीकार करनेवाले समस्त राजा भी वहाँ होंगे और सैकड़ों श्रोत्रियगण भी उपस्थित रहेंगे,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तब महायज्ञ की सफलता में लेशमात्र की बाधा पैदा नहीं होगी। वाजपेय यज्ञ पूरा होने पर कुछ श्रोत्रिय तो वहीं आश्रम बसाकर रह जाएँगे और एक बार फिर ब्रह्मतेज और कुरुओं के पराक्रम का सुन्दर समन्वय हो जाएगा।" द्वैपायन ने कहा।

सम्राट ने अपने पुत्र की ओर देखा और कहा, "पूज्य द्वैपायन की इच्छा पूरी होनी चाहिए।"

इस आज्ञा को सबने स्तब्ध होकर सुना। अभी भी उस कक्ष में यही आवाज गूँज रही थी—'पूज्य द्वैपायन की इच्छा पूरी होनी चाहिए।'

गांगेय ने कहा, "जैसी पिताजी की आज्ञा। मैं मन्त्री कुणिक से कहता हूँ कि वे शिकारियों व अन्य लोगों को उस क्षेत्र में भेजें, वन को जंगली जानवरों से मुक्त करें और तमाम झाड़-झंखाड़ साफ करवा दें। और पूज्य द्वैपायन, वाजपेय की तैयारी के लिए मन्त्री कुणिक आपके साथ चलेंगे।"

"गांगेय, मुझे तो आप अभी जाने की अनुमति दें।" द्वैपायन ने कहा, "मैंने आपसे कहा था कि मुझे अपने पिता के शिष्यों को एकत्रित करके साथ लेकर आना है। सम्भव हुआ तो मैं समस्त पराशर गोत्र को धर्मक्षेत्र में एकत्रित करूँगा। इसमें मैं बहुत शीघ्रता करना चाहता हूँ। मैंने ग्रह-नक्षत्र देख लिये हैं, चैत्री पूर्णिमा के पहले के चार दिन वाजपेय आरम्भ करने के लिए श्रेष्ठ हैं!"

सम्राट शान्तनु, पुरोहित आचार्य विभूति की तरफ मुड़े और बोले, "पूज्य आचार्य, आप जितना सम्भव हो उतनी तेजी के साथ वाजपेय के लिए तैयारियाँ करें।"

पुरोहित मन्द परन्तु स्पष्ट स्वर में बोले, "भरतश्रेष्ठ मुझे क्षमा करें। मैं अब वृद्ध हुआ। मेरा स्वास्थ्य भी अब ठीक नहीं रहता। इस दायित्व को मैं वहन नहीं कर सकूँगा।"

द्वैपायन ने पुरोहित की तरफ घूमकर आदर से कहा, "पूज्य आचार्य, आप तो श्रुतियों के स्वामी हैं। गंगातट के श्रोत्रिय मार्गदर्शन के लिए आपकी ओर निहारा करते हैं। सम्राट यदि वाजपेय करते हैं तो अध्वर्यु तो आपको ही होना होगा।"

"सम्राट, संन्यासियों में श्रेष्ठ द्वैपायन ने गंगातट के आश्रमों के विषय में अभी जो विचार व्यक्त किए थे वे आपसे छिपे नहीं हैं। तब मुझे अध्वर्यु बनाने की बात का क्या अर्थ है?" ऐसा कहकर पुरोहित ने स्वयं को सीधे द्वैपायन के प्रति उत्तरदायी होने से बचा लिया।

"यदि मैंने आपके हृदय को ठेस पहुँचाई हो तो आप कृपया मुझे क्षमा करें, आचार्य!" द्वैपायन ने दोनों हाथ जोड़कर क्षमा-याचना के स्वर में कहा, "लेकिन अपने पूज्य पिता के साथ इनमें से कुछेक आश्रमों में मैं रहा था और तब मैंने देखा था कि वे लोग आश्रम जीवन के नियमों का दृढ़ता से पालन नहीं करते हैं।"

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"द्वैपायन, जैसा श्रुति का प्रभाव आपको प्राप्त है वैसा मुझे प्राप्त नहीं है।" आचार्य ने सिर हिलाते हुए कहा, "जहाँ चारों वेदों का उच्चारण होता हो ऐसे यज्ञ में अध्वर्यु बनना मेरे लिए बहुत कठिन है। मैं जीवनभर त्रयी-विद्या का उपासक रहा हूँ। मुझे वाजपेय में शामिल करने का आग्रह कृपया न करें।"

द्वैपायन कुछ पल मौन रहे, फिर आचार्य की तरफ देखते हुए अनुरोधपूर्वक कहा, "पूज्य श्रोत्रिय, इस युगों पुराने झगड़े का शमन करने का क्या कोई उपाय नहीं है? श्रुति में क्या यह नहीं लिखा है कि ज्ञान जिस किसी मार्ग से मिले उसे स्वीकार कर लेना चाहिए?"

सम्राट ने हाथ ऊँचा करके संकेत किया कि वे कुछ कहना चाहते हैं। पुरोहित की तरफ देखकर वे बोले, "पूज्य द्वैपायन ने मुझे जीवनदान दिया है। इनकी राय से ही कल राजसभा की बैठक सफल हुई थी। आप सभी को इनकी इच्छा पूरी करनी चाहिए।"

आचार्य ने कहा, "सम्राट का कथन सत्य है। मुनिश्रेष्ठ द्वैपायन जो कहें हम सबको वही करना चाहिए। लेकिन कृपा करके मुझे इससे मुक्त रखिए। मैं जिस विश्वास के साथ आज तक जिया हूँ उसे आज एकाएक त्याग नहीं सकता।" आचार्य के इन क्षमायाचनापूर्ण शब्दों में भी अहंकार की झंकार स्पष्ट सुनाई पड़ रही थी।

गांगेय ने आचार्य की तरफ देखकर कहा, "आचार्यश्रेष्ठ, ईश्वर ने आपको अग्रणी श्रोत्रियों के बीच कलह समाप्त कराने का अवसर दिया है।"

"यह कलह नहीं है, विश्वास की बात है।" आचार्य ने असहमति में सिर हिलाते हुए कहा, "मैं हृदय से मानता हूँ कि त्रयीविद्या ही श्रुति है। तब फिर मैं अथर्वण शाखा को स्वीकार कैसे कर सकता हूँ?"

द्वैपायन ने देखा कि स्थिति अधिकाधिक नाजुक बनती जा रही है। उसने हँसकर कहा, "वाजपेय में इस कलह का प्रवेश हो यह तो मैं भी निश्चित रूप से नहीं चाहता। वाजपेय यज्ञ के अध्वर्यु आचार्य विभूति रहेंगे और जैसी इनकी आज्ञा होगी उसी तरह यज्ञ होगा। आचार्य जिस स्पष्टता से बात कर रहे हैं उससे मैं खुश हूँ। मेरे प्रपितामह वसिष्ठ जिस ढंग से सोचते थे उसी ढंग से आचार्य सोच रहे हैं।"

आचार्य ने एक बार फिर सिर हिलाया और कहा, "सम्राट, अब तो मैं वृद्ध हुआ। द्वैपायन ने आपको स्वस्थ कर दिखाने का जो चमत्कार किया उसी से मैं मान गया था कि कुरुओं के पुरोहित बने रहने के मेरे दिन पूरे हो गए। अब मुनिश्रेष्ठ द्वैपायन जैसा कोई युवक ही मेरा उत्तराधिकारी बनना चाहिए।"

द्वैपायन ने तुरन्त नम्रतापूर्वक कहा, "पूज्य आचार्य, मुझे कोई पद या अधिकार

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

नहीं चाहिए। मैं यदि ऐसा कोई पद स्वीकार कर लेता हूँ तो श्रुति की उचित सेवा नहीं कर सकूँगा।''

महारानी सत्यवती इस सारी बातचीत को ध्यान से सुन रही थीं। उन्होंने अचानक अपना मुखावरण हटाया। उनकी आँखों में अंगारे थे। क्रोध से उनका चेहरा तपे हुए ताँबे-सा लाल हो गया था। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा, ''आर्यपुत्र, आपकी बातचीत के बीच में मैं बोल रही हूँ, इसके लिए आप कृपया मुझे क्षमा करेंगे। मैं एक स्त्री और त्रयीविद्या या चतुर्वेद के बीच के अन्तर के बारे में बोलने का मेरा कोई अधिकार नहीं है। यह भी मैं जानती हूँ।''

सम्राटसहित सारे लोग महारानी के इस भीषण क्रोध को आश्चर्यसहित देखते रह गए। महारानी की आवाज काँप रही थी। सम्राट पलँग पर बैठे हो गए।

''श्रोत्रियों के बीच कोई मतभेद हो तो उसे दूर करने के लिए हमें क्या करना चाहिए यह मैं बताऊँगी।'' महारानी ने कहा, ''जहाँ द्वैपायन को स्थान न हो उस यज्ञ में मैं या मेरे पुत्र उपस्थित नहीं होंगे। वाजपेय हो या न हो। मैं कुरुक्षेत्र में जरूर जाऊँगी और वहाँ द्वैपायन का आश्रम स्थापित कराऊँगी।''

वे रुकीं। उनकी आँखें अभी भी क्रोध से लाल थीं। पुनः बोलीं, ''पूज्य मुनि...'' क्षण-भर के लिए वे फिर रुकीं, पर मुनि का नाम नहीं ले सकीं, ''जो प्रतिज्ञा आपने की है उसे पूरा करना ही चाहिए।''

सभी लोग स्तब्ध रह गए। सदैव मुस्कराती व शान्त रहनेवाली महारानी ने अचानक इतना क्रोध क्यों किया, यह किसी को भी समझ नहीं आ सका।

महारानी ने आचार्य मुनि की ओर देखा, ''पूज्य आचार्य, मैं हस्तिनापुर आई तब से आप मेरे गुरु रहे हैं। आपके ज्ञान के प्रति मेरी अगाध श्रद्धा है, लेकिन आर्यपुत्र की जो इच्छा है सबकुछ उसी प्रकार होना चाहिए। वाजपेय यज्ञ में आपको ही अध्वर्यु बनना होगा। आर्यपुत्र थके हुए हैं। अब ये विश्राम करेंगे। आप हस्तिनापुर के श्रोत्रियों से इस विषय में परामर्श कर लें।'' रानी के शब्दों में अद्भुत प्रभाव था।

आचार्य ने वन्दन किया, सभी को आशीर्वाद दिया और एक भी शब्द बोले बिना वे कक्ष से चले गए।

वातावरण में इतना तनाव आ चुका था कि द्वैपायन भी जाने के लिए उठ खड़े हुए। बाएँ हाथ में उन्होंने कमंडल उठाया और दाहिने हाथ से वे सम्राट और महारानी को आशीर्वाद देने ही वाले थे कि महारानी ने किसी अकथनीय प्रभाव की मुद्रा से देखते हुए उन्हें ऐसा करने से रोक दिया।

''नहीं, इस प्रकार नहीं।'' उन्होंने द्वैपायन के दाहिने हाथ की ओर संकेत करते हुए कहा, ''कृष्ण, तू सदैव अपना हाथ ऊँचा करके आर्यपुत्र को और मुझे आशीर्वाद

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

देता रहा है। लेकिन अब मैं तुझे ऐसा अविवेकी कृत्य नहीं करने दूँगी...''

सम्राट के नेत्र भी आश्चर्य से फैल गए। इस विचित्र विस्फोट का अर्थ वे समझ नहीं पाए।

''आर्यपुत्र!'' महारानी ने अत्यन्त मृदु स्वर में कहा, ''हमारा विवाह हुआ तब मैंने आपसे कहा था न कि मेरा एक पुत्र है, और वह अपने पिता के साथ चला गया है।''

सम्राट एकाग्रचित्त हो सत्यवती की बात सुन रहे थे। अगले ही क्षण सत्यवती ने द्वैपायन की ओर अँगुली से संकेत कर कहा, ''यह रहा वह पुत्र!''

सम्राट ने उनकी ओर देखा और फिर द्वैपायन की ओर देखा। उन्हें लगा कि महारानी पागल तो नहीं हो गईं!

''कृष्ण, सम्राट के चरणों में प्रणाम कर। ये तेरे पूज्य पिता की जगह हैं–तेरे देवता हैं!'' महारानी सत्यवती ने कहा।

अनपेक्षित मित्र

मन्त्री कुणिक के साथ द्वैपायन मन्दिर के आम्रकुंज में आ पहुँचे। वहाँ उनकी प्रतीक्षा में उनके भक्त खड़े थे और वे लोग भी खड़े थे जो बीमार थे और उनका आशीर्वाद पाकर स्वस्थ हो जाना चाहते थे।

सन्ध्या-वन्दन करके सबसे पहले द्वैपायन ने रोगियों को आशीर्वाद दिया और बालकों में भोजन वितरित किया। सेवकों ने तब लोगों से अपने-अपने घर लौट जाने की प्रार्थना की। भोजन करने के बाद द्वैपायन ने कुणिक से कहा, ''मुझे आचार्य विभूति के पास ले चलो।''

सँकरी गलियों में होते हुए वे आचार्य के निवास-स्थान पहुँचे। उनके भवन का आँगन बहुत बड़ा था। एक ओर दस-बारह गायें गौशाला में बँधी थीं, जिन्हें घर की स्त्रियाँ दुह रही थीं। दूसरी ओर से शिष्यों के मन्त्रोच्चार की ध्वनि सुनाई पड़ रही थी। आँगन के बीच में यज्ञवेदी थी।

आचार्य विभूति उस समय अपने नब्बे वर्ष के वयोवृद्ध पिता ब्रह्मिष्ठ के साथ बात कर रहे थे। ब्रह्मिष्ठ सूखी लकड़ी जैसे थे। दृष्टि धुँधला गई थी। दाएँ हाथ में लकवा था, इसलिए वह काँप रहा था। तीन अन्य प्रमुख श्रोत्रिय भी आचार्य विभूति के साथ बैठे हुए थे। ये तीनों श्रोत्रिय गंगातट पर बसे आश्रमों के गुरु थे। लोगों को अपने इस स्तर की याद दिलाने के लिए उन्होंने रेशमी धोतियाँ और सोने के बाजूबन्द पहन रखे थे। ब्रह्मिष्ठ की धोती रेशमी नहीं थी, सादी थी।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

आचार्य विभूति के दो पुत्र भी वहाँ उपस्थित थे, जो त्रयीविद्या में पारंगत थे। वे भी धोतियाँ और सोने के बाजूबन्द पहने हुए थे।

कुणिक ने जब अन्दर आकर द्वैपायन के आगमन की सूचना दी तो वे दंग रह गए। उन्हीं के विषय में वे चर्चा कर रहे थे।

द्वैपायन ने इन सभी श्रोत्रियों का चरण-स्पर्श किया। आचार्य विभूति बोले, ''पराशर के पुत्र, बैठो,'' और उन्होंने उन्हें बैठने को आसन दिया। यह आसन उनके अपने दो पुत्रों के पास रखा गया। ''यहाँ आप आएँगे ऐसा तो हमने सोचा भी नहीं था।'' विभूति ने कहा। उनके स्वर में न उमंग थी और न उत्साह या प्रसन्नता, बल्कि द्वैपायन के अचानक आगमन से पैदा हुई अचकचाहट का ही भाव अधिक था।

द्वैपायन उस आसन पर नहीं बैठे जहाँ उन्हें बैठने का संकेत किया गया था। वह आचार्य विभूति के आसन के सामने उनके चरणों में बैठे और शिष्य भाव से बोले, ''पूज्य आचार्य, आज जो कुछ घटित हुआ और जिसके कारण मैं आज आपके पास अब आया हूँ वह मुझे स्वयं को भी कुछ अटपटा लगता है।'' फिर कुछ देर चुप रहकर द्वैपायन ने कहा, ''परन्तु मैं विश्वास करता हूँ कि पूज्य आचार्य के आँगन में कृपा की याचना करने आए श्रोत्रिय की वे अवमानना नहीं करेंगे।''

''श्रोत्रियों के लिए मेरे द्वार सदा खुले रहते हैं।'' विभूति ने कहा, यद्यपि उनके शब्दों और व्यवहार में कोई मेल नहीं था।

''आचार्यश्रेष्ठ, मैंने गंगातट के आश्रमों की निन्दा की है, इसके लिए कृपया मुझे प्रायश्चित करने का आदेश दें।'' द्वैपायन ने कहा।

''विभूति कहता है कि तू मुनि पराशर का पुत्र है। मैंने उसे जब वह बहुत छोटा था, तब देखा था।'' ब्रह्मिष्ठ ने आँखों पर हाथ का छज्जा बनाकर द्वैपायन को देखा और पुनः कहा, ''तब मैं महामुनि वसिष्ठ के आश्रम में था।''

विभूति अकड़कर बैठ गए और बोले, ''मुझसे प्रायश्चित की आज्ञा माँगने का क्या अर्थ है? यदि आपको लगता है कि आपने कोई पाप किया है तो आप स्वयं ज्ञानी हैं, क्या प्रायश्चित किया जाए यह आप स्वयं तय कर सकते हैं।''

''मैं आपके पास यही सोचकर आया हूँ और मुझे लगा कि आपने मुझे क्षमा नहीं किया।'' द्वैपायन ने बालसुलभ मुस्कराहट के साथ कहा। द्वैपायन की इस मोहक मुस्कान का भी आचार्य विभूति पर कोई प्रभाव नहीं हुआ।

''मैंने आपको क्षमा किया कि नहीं किया इससे क्या फर्क पड़ता है?'' विभूति ने पूछा।

''बहुत पड़ता है, पूज्य गुरुदेव! यदि मेरी प्रार्थना सच्ची होगी तो मुझे क्षमा

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मिलेगी ही। यदि मैं अपूर्ण हूँ तो दूसरों से पूर्णता की आशा कैसे कर सकता हूँ!" द्वैपायन ने पूछा और कहा, "आप मेरा एक अनुरोध स्वीकार करेंगे?"

विभूति से अब रहा नहीं गया। तमतमाकर बोले, "यदि आपके अनुरोध का सम्बन्ध वाजपेय यज्ञ से है तो आप कुछ कहें उससे पहले ही मैं उसे अस्वीकार कर देता हूँ।"

"लेकिन मेरी बात सुनेंगे भी नहीं?" द्वैपायन ने पूछा, "ईश्वर तो पापियों की प्रार्थना भी सुन लेते हैं!'

वृद्ध ब्रह्मिष्ठ को छोड़कर शेष सभी के चेहरे पर तिरस्कारपूर्ण मुस्कराहट थी। ब्रह्मिष्ठ द्वैपायन की बात सुनने के लिए कान लगाए बैठे रहे। बोले, "तुझे जो कहना हो कह, द्वैपायन!"

"ठीक है, यथासम्भव संक्षेप में कहिए।" विभूति ने कहा। इस युवा संन्यासी को निकाल बाहर करने की इच्छा को वे बड़ी कठिनाई से दबाए हुए थे।

"गुरुदेव, जैसाकि मैंने आपसे निवेदित किया, मैं अपने अपराध का प्रायश्चित करूँगा।" द्वैपायन ने कहा। विभूति की ओर से प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा में वे एकाध क्षण रुके, फिर आगे बोले, "आचार्य विभूति से मेरी इतनी ही प्रार्थना है कि वे मुझे वाजपेय यज्ञ से मुक्ति दे दें।"

"...और मैं रानी सत्यवती का रोष अपने ऊपर ले लूँ?" आचार्य विभूति ने कहा।

"महारानी रुष्ट नहीं होंगी। उनसे मैं कह दूँगा कि ऋषियों की निन्दा करने के कारण मैं वाजपेय में भाग लेने की पात्रता खो बैठा हूँ।" द्वैपायन ने कहा।

"तूने त्रयीविद्या सीखी है?" वृद्ध ब्रह्मिष्ठ ने पूछा।

"हाँ, गुरुदेव!" द्वैपायन ने हाथ जोड़कर कहा।

"किससे?"

"अपने पूज्य पिता पराशर से।"

"वाजपेय यज्ञ कैसे किया जाता है यह तू जानता है?"

"मैंने सोमयज्ञ किया है, वाजपेय यज्ञ नहीं किया।" द्वैपायन ने उत्तर दिया।

आचार्य विभूति ने कटाक्ष करते हुए कहा, "आप वाजपेय यज्ञ करने के योग्य हैं कि नहीं इससे कोई अन्तर नहीं आता। मैं तो इस यज्ञ में भाग लूँगा ही नहीं।"

द्वैपायन ने दृष्टि झुका ली और कहा, "आचार्यश्रेष्ठ, मैंने जो मूर्खतापूर्ण स्थिति पैदा कर दी है उसमें से मुझे बाहर निकलने का मार्ग आपको ही बताना होगा। इस वाजपेय यज्ञ से मैं अब हट जाना चाहता हूँ।"

विभूति को क्रोध आ गया। वे बोले, "आपको जो करना हो, करो। मुझे जो करना है वह हमने तय कर लिया है। मैं कुरुओं का पुरोहित-पद त्याग दूँगा और

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

संन्यास ले लूँगा।''

''कृपा कर ऐसा क़ोई कदम न उठाएँ,'' द्वैपायन ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की, ''सम्राट ने वाजपेय यज्ञ करने का निर्णय कर लिया है और केवल आप ही यह यज्ञ करा सकते हैं।''

विभूति ने नकार भाव से सिर हिलाया, ''क्या आप सम्राट और महारानी के मन में यह बिठा देना चाहते हैं कि मैंने आपको इस यज्ञ से निकलवा दिया कि आपको निकलवाने में मेरी ही कोई चाल थी। इस उम्र में अब षड्यन्त्रकारी या प्रपंची कहलाने की मेरी कोई कामना नहीं है।'' उन्होंने दृढ़ता के साथ कहा।

द्वैपायन ने करुण भाव से कहा, ''वे ऐसा कभी नहीं सोचेंगे। मेरे भाग न लेने का कारण वे समझ जाएँगे।''

''आपसे मैं उन्हें कहीं ज्यादा जानता हूँ।'' विभूति ने कहा।

''वाजपेय यज्ञ करने का विचार मेरे मन में क्यों आया यह बताने की क्या आप मुझे आज्ञा देंगे?'' द्वैपायन ने पूछा।

विभूति ने सहमति में सिर हिला दिया, लेकिन उनके पिता आचार्य ब्रह्मिष्ठ ने कहा, ''कहो।'' उन्होंने द्वैपायन की बात सुनने के लिए कान उधर लगा दिए।

''पूज्य आचार्य, मेरे पूज्य पिता पराशर सारी परिस्थिति को अच्छी तरह जान गए थे। वे कहते थे कि धर्म का भविष्य संकट में है। श्रोत्रियों में मतैक्य नहीं है, बिखरे हुए हैं। आश्रमों में एकता का अभाव के कारण उनका प्रभाव कम हुआ है। आश्रमों का प्रभाव घटेगा तब ईश्वर भी हमारा साथ नहीं देगा और श्रुतियों की पवित्रता का लोप होगा और इन सबका प्रभाव यह होगा कि धर्म का पतन हो जाएगा। इसलिए हमें वह प्रयास करना चाहिए जिससे धर्म का उत्थान हो।'' द्वैपायन के शब्दों में जैसे मुनि पराशर की आवाज प्रतिध्वनित हो रही थी।

''श्रोत्रियों को दोष मत दो। उनसे जितना कुछ सम्भव है वह सब वे कर ही रहे हैं।'' वहाँ उपस्थित आचार्यों में से एक आचार्य देवायन ने कहा।

''जो करना चाहिए वह सब क्या वास्तव में सभी श्रोत्रिय करते हैं?'' वृद्ध ब्रह्मिष्ठ ने पूछा।

''हाँ,'' देवायन ने कहा, ''सभी युवाओं की भाँति ये भी उस सबकी सराहना नहीं कर पा रहे हैं जो हमारे पूर्वजों ने किया है। युद्ध के बाद जो अराजकता फैली उसमें भी बिना किसी से सहायता पाए भारी जोखिम उठाकर और अगाध परिश्रम करके उन्होंने आश्रम स्थापित किए थे।''

आचार्य विभूति शान्त बैठे थे। वे द्वैपायन से विवाद मोल नहीं लेना चाहते थे, लेकिन पिता व अन्य श्रोत्रिय उनके साथ बातचीत को लम्बी किए जा रहे थे।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"पूज्य आचार्य, आज के श्रोत्रिय श्रुतियों की शाश्वत कसौटी पर खरे उतर सकें, क्या ऐसे हैं? क्या वे श्रुतिपरायण होकर ब्रह्मचर्य का कठोरता से पालन करते हैं? क्या वे पारिवारिक जीवन को धर्ममय बनानेवाले वातावरण का निर्माण करके ही गृहस्थ जीवन में प्रवेश करते हैं? और क्या वे विवाह-संस्कार की पवित्रता की रक्षा भी करते हैं?" द्वैपायन ने पूछा।

"जब सहस्रार्जुन के हमलों ने धर्ममय जीवन की जड़ें खोद डाली थीं तब तो आपका जन्म भी नहीं हुआ था।" देवायन ने पूछा।

"यह बात तो ठीक है, किन्तु धर्ममय जीवन के विकास योग्य आधार बनाए बिना क्या हमारा काम चल सकता है?" द्वैपायन ने पूछा।

वृद्ध आचार्य ब्रह्मिष्ठ ने प्रश्न किया, "वत्स, तू किस प्रकार धर्ममय जीवन का आधार सुदृढ़ बनाना चाहता है?"

"मैंने अपने पूज्य पिता के साथ बरसों इस प्रश्न पर चर्चा की है, वे कहा करते थे कि हमें ऐसे श्रोत्रियों के नए समूह तैयार करने होंगे जो धर्ममय जीवनयापन को प्राथमिकता दें और नए उत्साह से उस दिशा में बढ़ने का आग्रह रखें...।" द्वैपायन ने कहा।

"ये सभी खोखले शब्द हैं..." विभूति ने कहा। वे इस वार्तालाप को शीघ्र ही समाप्त कर देना चाहते थे। परन्तु ब्रह्मिष्ठ ने उन्हें बीच में रोककर द्वैपायन से पूछा, "तू कौन-सा मार्ग बताना चाहता है?"

"हमें चाहिए कि हम श्रोत्रियों को कठोर अनुशासन और तपस्या के मार्ग पर वापस ले जाएँ। हमें कुछ ऐसा करना चाहिए कि जिससे उनमें श्रुतियों के प्रति आस्था पैदा हो कि जिससे श्रुत्रियों, क्षत्रियों और वैश्यों में नए धर्मनिष्ठ जीवन के प्रति विश्वास जाग्रत हो।"

"विस्तार से कहो, यह किस प्रकार होगा?" वृद्ध आचार्य ब्रह्मिष्ठ ने पूछा।

विभूति और अन्य श्रोत्रियों के चेहरों पर क्षोभ और खीझ स्पष्ट दिखाई दे रही थी लेकिन ब्रह्मिष्ठ को रोकने का साहस किसी में नहीं था।

"मुझे ऐसी आशा रही है कि हस्तिनापुर-सम्राट वाजपेय यज्ञ का आयोजन करें और उसमें आचार्य विभूति जैसे विद्वान पुरोहित हों तो धर्म-क्षेत्र एक बार फिर ऐसा केन्द्र बन जाएगा जहाँ से नित्यप्रति धर्मभावना प्रवाहित होती रहेगी।" द्वैपायन ने कहा, "प्रत्येक श्रोत्रिय, प्रत्येक स्त्री-पुरुष का हृदय धर्मभावना से स्पन्दित हो उठेगा। आचार्य के नेतृत्व में कुरुओं का क्षात्रतेज और श्रोत्रियों का ब्रह्मतेज आपस में मिलेंगे और इसके फलस्वरूप धर्मनिष्ठ जीवन का आधार गहरा हो जाएगा।"

"तू अभी बालक है," आचार्य देवायन ने अधीरता से कहा, "श्रोत्रियों के

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वर्तमान दृष्टिकोण में विशेष परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है।''

''आपके मतानुसार धर्म में नया मोड़ लाने के लिए वाजपेय यज्ञ में मेरे साथ अथर्वण शाखा के एक ऋषि को बिठाना भी आवश्यक होगा न!'' आचार्य विभूति ने कटाक्ष करते हुए कहा, ''युवा पुरुष, अपने मस्तिष्क को स्थिर रखो, तरंगित मत होने दो। जिस यज्ञ का नेतृत्व करने में कोई अथर्वण भी अग्रणी हो, उसमें मैं सम्मिलित होता हूँ तो धर्म में अराजकता पैदा हो जाएगी।'' यह कहकर आचार्य खड़े होने लगे।

द्वैपायन ने आदरपूर्वक आचार्य से बैठने का अनुरोध किया और कहा, ''यदि आप और अथर्वण गुरु दोनों मिल जाएँ तो नया उत्साह उत्पन्न होगा और नई प्रणाली का निर्माण होगा।''

''निरर्थक प्रलाप कर आप समय मत गँवाइए।'' आचार्य विभूति ने तिरस्कारपूर्ण स्वर में कहा और वृद्ध पिता को खड़ा होने में सहारा देने के लिए हाथ बढ़ाया।

''तुझे अथर्वण शाखा की कोई जानकारी है?'' ब्रह्मिष्ठ ने विभूति के बढ़े हुए हाथ पर कोई ध्यान दिए बिना पूछा।

''वाजपेय यज्ञ पूरा होने के बाद योग्य गुरु मिलते ही मैं अथर्वण विद्या सीखूँगा।'' द्वैपायन ने कहा।

''श्रुति में अथर्वण शाखा का समावेश हो, यह बात मैं कदापि नहीं मान सकता,'' विभूति ने कहा और पुनः बलपूर्वक बोले, ''कदापि नहीं, कदापि नहीं!'' ऐसा कहकर उन्होंने अपना उपवस्त्र एक कन्धे पर से उतारकर दूसरे कन्धे पर डाला और पिता को उठ खड़ा होने में सहायता के लिए फिर हाथ लम्बा किया।

और जैसे द्वैपायन को अब वे कुचलकर ही रहेंगे, ऐसे कठोर आक्रामक स्वर में बोले, ''तुम जो चाहते हो वह मैं सब जानता हूँ! आर्यावर्त के श्रोत्रियों में एक अभूतपूर्व व्यक्ति के रूप में ऊपर उठने के लिए तुम्हें तो मात्र आधार-रूप एक पीठिका का निर्माण करना है!''

आचार्य विभूति के इस प्रहार से द्वैपायन विचलित हो उठे। वे काँपने लगे। फिर एकाएक उनमें और परिवर्तन आ गया। तने हुए कन्धे झुक गए। आँखें निस्तेज हो गईं। होंठों में कम्पन होने लगा और वे जैसे नैराश्य की साक्षात् प्रतिमा बन गए। चारों ओर सन्नाटा छा गया।

इस तरह शान्त होकर द्वैप ने कुलदेवता भगवान सूर्य का स्मरण किया और पूछा, ''हे प्रभु, आपने अपने पुत्र को त्याग तो नहीं दिया है न?''

आचार्य विभूति तथा अन्य श्रोत्रियों ने द्वैपायन की इस परास्त भग्नावस्था को देखा तो आनन्दित हुए।

''पूज्य आचार्य, मैंने जो कुछ भी कहा या किया हो उसके लिए कृपया मुझे

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

क्षमा करें।" द्वैपायन ने कहा और चुप हो गए। उन्हें लगा कि उनकी आवाज अब साथ नहीं देगी। हाथ जोड़कर पुनः मन्द स्वर में इतना ही कहा, "ऐसा लगता है जैसे इतना प्रबल तप मेरा नहीं है कि मेरा स्वप्न साकार हो सके।"

कहकर उन्होंने आचार्य विभूति व उनके पिता को साष्टांग प्रणाम किया, अन्य श्रोत्रियों के पाँव छुए और दंड उठाकर जाने के लिए खड़े हो गए।

वृद्ध ब्रह्मिष्ठ ने सूखा हुआ अशक्त हाथ उठाकर उन्हें रुकने का संकेत किया और कहा, "द्वैपायन, जाते क्यों हो? रुको और नीचे बैठो।"

"पिताजी! पिताजी!" विभूति ने वृद्ध पिता का कन्धा पकड़कर बाधा देनी चाही और कहा, "इसे जाने दो!"

"विभूति, मेरी बात सुन," पिता ने अपना काँपता हाथ ऊपर करते हुए कहा। श्रोत्रियों के कुलगुरु के रूप में उन्होंने जो दायित्व कभी उठाया था वही दायित्व और प्रभाव उनकी वाणी में उतर आया। उन्होंने दृढ़ अधिकारपूर्ण स्वर में कहा, "यह बालक जो कह रहा है उसमें कुछ तथ्य है। जैसा परिवर्तन यह लाना चाहता है वह यदि आ जाता है तो श्रुति का आधार मजबूत होगा और श्रोत्रियों का प्रभाव भी बढ़ेगा।"

"आप यह क्या कह रहे हैं, पिताजी?" विभूति ने स्तब्ध होकर पूछा, "आप! आप यह क्या कह रहे हैं?"

"हाँ, और पूरे विवेकसहित कह रहा हूँ।" वृद्ध ब्रह्मिष्ठ ने कहा, "श्रुति के विषय में जो विवाद उठाया गया था उसका मैं भी एक निमित्त था। लेकिन इस बालक का कथन सत्य है। श्रुतियों को लेकर श्रोत्रियों के बीच जो विवाद उत्पन्न हुआ उससे श्रोत्रिय अशक्त हुए हैं। सामान्य जन को ऊँचा उठाने की क्षमता वे खो बैठे हैं।"

विभूति सकते में आ गए। कभी वे अपने पिता की ओर देखते और कभी द्वैपायन की ओर। उन्होंने सोचा, इस युवक ने कहीं पिता पर कोई अथर्वण जादू तो नहीं कर दिया? पिता ये शब्द क्या अपने मन से बोल रहे हैं? दुखी और विनम्र स्वर में उन्होंने कहा, "मुझे चतुर्वेद स्वीकार करने को न कहना, पिताजी!"

वृद्ध पिता ने पुत्र की ओर देखा। उनकी आँखों में निर्णयात्मक चमक थी, "क्या तू मात्र इसीलिए वाजपेय यज्ञ में सम्मिलित नहीं होगा कि उसमें कोई अथर्वण ऋषि ब्रह्मास्थान पर बैठेगा और उसमें अथर्वण मन्त्रों का पाठ होगा?" उन्होंने पूछा।

"आपने ही तो त्रयीविद्या के प्रश्न पर मुझे समझौता नहीं करना सिखाया था!" विभूति ने कहा।

और जब उन्होंने देखा कि उनके पिता अधिक उत्तेजित हो गए हैं तो उन्होंने

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उनकी बाँह थाम ली जो बुरी तरह से काँप रही थी और कहा, "अभी द्वैपायन को जाने दो, पिताजी! हम शान्ति से इस सारे प्रश्न पर विचार करेंगे।"

"क्यों जाने दूँ इसे?" ब्रह्मिष्ठ ने काँपती, किन्तु अटल निश्चय से परिपूर्ण आवाज में घोषणा की, "मैंने अपने सम्पूर्ण जीवन में ऐसा श्रोत्रिय नहीं देखा। इसमें दृष्टि भी है, आस्था भी है। पीढ़ियों तक हमें ऐसा व्यक्ति देखने को नहीं मिलेगा।" वे द्वैपायन की ओर मुड़े और आँखों पर हाथ का छज्जा बनाकर पुनः गौर से देखते हुए बोले, "पुत्र, तू जा, वाजपेय की तैयारी कर! मेरी समझ में आ गया है कि यदि श्रोत्रियों में कलह चलती रही तो धर्म में प्राण-प्रतिष्ठा नहीं हो सकेगी। यदि विभूति संसार से वैराग्य ले लेगा तो इसके लिए जो मैंने कुरुओं का पुरोहित पद छोड़ दिया था, पुनः स्वीकार कर लूँगा और वाजपेय यज्ञ का अध्वर्यु बनूँगा।"

वृद्ध ब्रह्मिष्ठ का यह निर्णय सुनकर वहाँ उपस्थित श्रोत्रिय अत्यन्त क्रोधित हो गए, लेकिन वे यह नहीं तय कर सके कि क्या कहें और क्या करें।

काँपती हुई आवाज में वृद्ध ने पुनः द्वैपायन से कहा, "वत्स, हताश मत होना। मैं भी तेरे परदादा वसिष्ठ के आश्रम का ही एक प्रमुख उत्साही श्रोत्रिय था। मैंने भी त्रयीविद्या सम्बन्धी विवाद बढ़ाने में योग दिया था। लेकिन तेरा कथन सही है। युद्ध के कारण परिस्थिति बदल गई है। हमें हर मूल्य पर धर्म का विखंडन रोकना चाहिए। वाजपेय यज्ञ में अर्ध्वयु मैं बनूँगा। अध्यक्षता मैं करूँगा। ब्रह्मा के रूप में बैठने योग्य अथर्वण पंडित को खोज लाओ!"

विभूति के हाथ का सहारा लेकर लड़खड़ाते हुए वे उठे और बोले, "मैं चाहता हूँ कि यह विवाद समाप्त हो जाए तो मैं सुख से पितृलोक जाऊँ। तुझे मेरा आशीर्वाद है, वत्स!" यह कहकर उन्होंने आशीर्वादस्वरूप हाथ ऊँचा किया और दो श्रोत्रियों के बीच आशिष-अभिवादन के लिए जो शब्द कहने की प्रथा थी वे शब्द बोले, "तेरा तप बढ़ता रहे।"

द्वैपायन का हृदय कृतज्ञता से भर आया।

फिर वृद्ध ब्रह्मिष्ठ विभूति की ओर मुड़े और बोले, "मैं अब थक गया हूँ, सोऊँगा।"

महाअथर्वण जब भयानक मारण-मन्त्र का प्रयोग करते हैं

महाअथर्वण अपने आश्रम से थोड़ी दूर ध्यान करने के लिए बनी गुफा में मौन धारण करके बैठे थे। जब-जब भी उन्हें लगता कि उनकी शक्ति व दृष्टि में कमी

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

आ गई है तब-तब वे गुफा में जा बैठते थे।

कई सप्ताह से कुछ ऐसी विचित्र घटनाएँ घट रही थीं कि उनसे वे विचलित थे। भेड़ियों के क्षेत्र की घटना भी ऐसी ही थी। उस घटना का कारण ढूँढ़ने के लिए वे अपनी तमाम शक्ति को केन्द्रित करने में लगे थे।

क्षेत्र के भेड़ियों और अन्य जंगली जन्तुओं को भगाने के लिए शिकारियों के झुंड और वृक्ष काटनेवाले आए। उन लोगों ने पाँच स्यमन्तक सरोवरों के आसपास की वन्य लताएँ, पेड़-पौधे, झाड़-झंखाड़ काटकर जमीन साफ कर डाली।

साँझ होते ही हर रोज वनवासी और गाँववाले ऋषि के आश्रम में आया करते। वे अपनी और अपने परिजनों की बीमारियों का उपचार कराते, यातुविद्या (जादू) का लाभ उठाते, अनिष्टकारक ग्रहों से मुक्त होने का उपाय करते और अपने पारिवारिक झगड़ों को निपटाने में उन्हें मध्यस्थ बनाते। उनके ये सब काम ऋषि के शिष्यगण कर डालते। तब वे पवित्र यज्ञवेदी के पास आते जहाँ महाअथर्वण शान्त गम्भीर भाव से बैठे रहा करते थे। महाअथर्वण में उनकी अगाध श्रद्धा थी। उन्हें वे मृत को जीवित और जीवित को मृत करनेवाला देवता मानते थे।

कुछ दिनों से गाँवों में अफवाहें फैल रही थीं कि एक युवा संन्यासी ऐसा है जिसने हस्तिनापुर के सम्राट शान्तनु को जीवन-दान देने में सफलता प्राप्त की है और यमराज पर भी विजय पा ली है!

वे ये समाचार भी लाए थे कि हस्तिनापुर की राजसभा में युवराज गांगेय ने विवाह न करने और राजगद्दी पर न बैठने की प्रतिज्ञा की है। गांगेय ने हस्तिनापुर के राजसिंहासन की रक्षा करने की प्रतिज्ञा की है और अपने सौतेले भाइयों में बड़े युवराज चित्रांगद का उसने अभिषेक भी किया है। ऐसा भी सुनने में आया कि वह युवा संन्यासी अचानक अदृश्य हो गया है। कुछ लोगों ने उसे हवा में उड़ते देखा है, ऐसी खबरें भी लोग लाए!

महाअथर्वण के शिष्यों ने इसे एक चुनौती के रूप में लिया। जीवन और मृत्यु के स्वामी तो एकमात्र महाअथर्वण ही हो सकते हैं, ऐसी उनकी मान्यता थी। वे सोचते थे कि कोई दूसरा व्यक्ति ऐसे चमत्कार करने का दावा करने की धृष्टता कैसे कर सकता है?

महाअथर्वण की पुत्री वाटिका, उनका पुत्र सुमन्तु और उनके मुख्य शिष्यगण उन्हें ऐसी समस्त अफवाहों की सूचना देते रहते थे।

भेड़ियों के क्षेत्र में जो कुछ हुआ, उससे इन घटनाओं का भी कोई न कोई सम्बन्ध जरूर होना चाहिए, ऐसा महाअथर्वण को लगने लगा था। लगता था इन दोनों के बीच कोई गहरा सम्बन्ध जरूर है। अतः अब वे अपनी सम्पूर्ण शक्ति इसी खोज में लगा रहे थे कि उनकी इच्छा के विरुद्ध यह सब हो क्यों रहा है!

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इस रहस्य को जानने का वे जितना भी प्रयास करते वे सब एक ही बिन्दु पर जाकर टिकते थे, युवा संन्यासी द्वैपायन जो उनके मारण-मन्त्र का प्रयोग होने से पहले ही आश्रम से भाग गया था।

उनके ध्यान में विक्षेप पड़ा। उन्होंने देखा कि एक युवा संन्यासी उनके आश्रम की पहाड़ी पर चढ़ रहा है। उनकी भँवें तन गईं। द्वैपायन का यह साहस कि अपना विजयी अहंकार प्रदर्शित करने के लिए वापस वहीं आने की धृष्टता करे! इस बार भूल नहीं होनी चाहिए। महाअथर्वण ने निर्णय किया कि ज्योंही वह आश्रम में पहुँचेगा त्योंही वे उस पर अपनी मरण विद्या का प्रयोग कर देंगे।

महाअथर्वण का मन अब आगे ध्यान में नहीं लग सका। उस युवा संन्यासी को सीख देने के लिए वे अधीर हो उठे।

उनका जवान बेटा सुमन्तु, गुफा में उनके पास आया और दरवाजे पर खड़े होकर उसने अन्दर आने की अनुमति माँगी। महाअथर्वण क्रुद्ध हो गए। उन्हें यह कदापि पसन्द नहीं था कि कोई उनके ध्यान में विघ्न डाले विशेष तौर से तब तो बिलकुल नहीं, जब वे उस अहंकारी युवा संन्यासी पर मारण-मन्त्र के प्रयोग के लिए अपनी शक्तियाँ संयोजित करने में ध्यान केन्द्रित कर रहे थे। ऐसे समय सुमन्तु का वहाँ आना उन्हें बिलकुल रुचिकर नहीं लगा।

"क्या है?" उन्होंने गुस्से में पूछा।

"पिताजी," सुमन्तु ने पिताजी के चरण-स्पर्श करके कहा, "द्वैपायन वापस आ गया है।"

"मैं जानता हूँ। आश्रम से चोरी-छिपे निकलकर इस सिरफिरे युवक ने भृगु और अंगिरस का क्रोध आमन्त्रित किया है। मैं उसका मुँह नहीं देखना चाहता।" ऋषि ने दृढ़तापूर्वक कहा।

"वह कहता है कि वह आपकी कृपा की कामना करने आया है, पिताजी!" सुमन्तु ने कहा।

"कृपा? मेरी? मैं उस पर केवल एक ही कृपा करूँगा।" महाअथर्वण का संकेत मारण-मन्त्र की ओर था।

"मैंने उससे कहा कि आप बहुत क्रुद्ध हैं, नहीं मिलेंगे। मैंने उसे वहुत समझाया कि वह वापस चला जाए।"

"उसने क्या उत्तर दिया?"

"मानता नहीं पिताजी, लेकिन वह आपकी वही कृपा माँगने आया है जो आप उस पर करना चाहते हैं! उसने कहा कि गुरु की आज्ञा का उल्लंघन करनेवाले शिष्य पर मारण-मन्त्र का प्रयोग करने की अपनी इच्छा आप अव पूरी कर सकते हैं! इसलिए वह वापस आया है!"

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"क्या?" महाअथर्वण के आश्चर्य का पार नहीं था। उन्हें अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ, "क्या वह यह चाहता है कि मैं उस पर मारण-मन्त्र का प्रयोग करूँगा? उसके कथन पर क्या तुझे विश्वास है?"

"हाँ पिताजी! सुमन्तु ने कहा, "द्वैपायन का कहना है कि वे आपके शिष्य हैं और नहीं चाहते कि गुरु की इच्छा अधूरी रहे। पहले मुझे भी ऐसा लगा कि वे मजाक करते होंगे लेकिन यह सच है कि वह जो कह रहे हैं पूरी गम्भीरता से कह रहे हैं।"

"वह मेरा शिष्य? धृष्टता की भी सीमा होती है! मैंने उसे कभी अपने शिष्य के रूप में स्वीकार नहीं किया।" महाअथर्वण ने कहा।

"मैं द्वैप को क्या बोलूँ पिताजी?" सुमन्तु ने पूछा।

महाअथर्वण ने थोड़ी देर तक सोचा, फिर होंठ भींचकर कहा, "जैसी भृगु और अंगिरस की इच्छा!" और सुमन्तु की तरफ देखकर बोले, "उसे अन्दर भेज दे।"

सुमन्तु गुफा के बाहर गया और द्वैपायन को लेकर वापस आ गया।

द्वैपायन ने महाअथर्वण को प्रणाम किया और वह उनका चरण-स्पर्श भी करने ही वाले थे कि महाअथर्वण ने अपने पैर पीछे खींच लिये।

"गुरुदेव, मैं आपका आशीर्वाद लेने आया हूँ।" द्वैपायन ने पछतावा प्रकट करते हुए कहा, "मैं जानता हूँ कि मैं इस योग्य नहीं हूँ क्योंकि आपकी आज्ञा लिये बिना ही मैं आश्रम से चला गया था। मेरे इस दुर्व्यवहार के लिए आप जो भी दंड देंगे मैं उसे स्वीकार कर लूँगा।"

"तू दंड भोगेगा?" महाअथर्वण ने तिरस्कार से कहा, "तू यह सबकुछ केवल इसीलिए कह रहा है कि तुझे यह पता ही नहीं है कि मैं क्या दंड देनेवाला हूँ!"

"गुरुदेव, आप सच मानें, अपनी आज्ञा का उल्लंघन करने के लिए आप अपने इस शिष्य पर मारण-मन्त्र का प्रयोग कीजिए, मैं इसीलिए वापस आया हूँ।" द्वैपायन ने कहा।

द्वैपायन के शब्दों की सच्चाई को जानकर मुनि ने सोचा कि यह पागल तो नहीं हो गया है।

"तू मेरा शिष्य नहीं है। मैंने अपने शिष्य के रूप में तुझे कभी स्वीकार किया ही नहीं।" महाअथर्वण ने कहा।

"गुरुश्रेष्ठ, मैं पिछली बार यहाँ था तब मैंने संकल्प किया था कि आपका शिष्य बनूँगा," द्वैपायन ने कहा, "आपके शिष्य के रूप में आपकी हृदयेच्छा पूरी करने के लिए ही मुझे यहाँ से जाना पड़ा था।"

"मेरी इच्छा पूरी करने? तुम्हें सच बोलना भी आता है?" महाअथर्वण ने कटाक्ष करते हुए कहा।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"ब्रह्मचर्य-दीक्षा के साथ-ही-साथ मैंने सच बोलने की शपथ ली थी। मैं उस शपथ का अवश्य पालन करूँगा।"

"तुमने क्या शपथ ली थी?" महाअथर्वण ने पूछा।

"प्रत्येक द्विज जो भी शपथ लेते हैं वही सब मैंने भी ली थीं।" द्वैपायन ने उत्तर दिया।

"उनके अतिरिक्त कुछ और शपथें भी तुमने ली थीं।" महाअथर्वण ने पूछा।

"मेरे पिता की सूचना के अनुसार पराशर गोत्र के सभी लोग पराशर व्रत लेते हैं।" द्वैपायन ने कहा।

"तूने यह व्रत लिया है?" महाअथर्वण ने पूछा।

"हाँ।" द्वैपायन ने उत्तर दिया।

"वह क्या है?"

"मैं किसी का बुरा नहीं करूँगा, मैं किसी की सम्पत्ति ग्रहण नहीं करूँगा; मैं हमेशा सत्य बोलूँगा; उचित अवसर आने पर मैं अपना सर्वस्व दान करूँगा; युवतियों से बात नहीं करूँगा; लोभ और वासना से दूर रहूँगा, पितरों (पूर्वजों) और देवताओं की पूजा करूँगा; श्रुति के लिए जीवित रहूँगा और श्रुति की कृपा पाने का सदा प्रयत्न करता रहूँगा क्योंकि श्रुति ही ऋत को–ब्रह्मांड की नियम-व्यवस्था को–धारण करती है।"

"हाँ,...इसमें थोड़ी त्रुटि तो है! श्रुति से तुम्हारा तात्पर्य त्रयीविद्या से है न!..." महाअथर्वण ने तिरस्कारपूर्वक कहा।

"नहीं गुरुदेव, मेरे पिताजी ने कहा था वेद चार हैं। पराशर गोत्र के सभी द्विज चारों वेदों को मानते हैं। मैं केवल त्रयीविद्या को ही नहीं, सम्पूर्ण श्रुति को मानता हूँ। अथर्वण विद्या के बिना शरीर को कष्ट से और राजसत्ता को संकट से बचाया नहीं जा सकता।" द्वैपायन ने नजरें नीची रखते हुए कहा।

जिस विधि से द्वैपायन ने अपनी प्रतिज्ञाओं का उच्चारण किया था उससे महाअथर्वण प्रभावित हुए। बोले, "सच बता, तू वापस किसलिए आया है?" महाअथर्वण के प्रश्न में अब नाराजगी नहीं थी।

"गुरुदेव, जैसा कि मैंने आपसे पहले ही निवेदन किया था, मैं इसीलिए आया हूँ कि आप मुझ पर अपनी मारण-विद्या का प्रयोग कर सकें। मेरे गुरु का संकल्प पूरा हो, सफल हो, इसी उद्‌देश्य से मैं आश्रम से चला भी गया था।" द्वैपायन ने क्षमा-याचना के स्वर में कहा।

"मेरा संकल्प सफल हो, इसी कारण?" महाअथर्वण को यह बात बड़ी विचित्र लगी। इस युवक के बारे में उनका कुतूहल बढ़ गया था, "मेरा जो संकल्प है उसका तुझे क्या पता?"

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"स्पष्टतः कहूँ?" द्वैपायन ने पूछा।

"हाँ, बिलकुल सच और साफ-साफ कहो।" महाअथर्वण ने हँसकर कहा।

"मेरे दादा वसिष्ठ अथर्वण विद्या को श्रुति के अंश के रूप में नहीं मानते थे, इसी कारण पूज्य अथर्वण ने धर्मक्षेत्र को शाप दिया था। अथर्वण ऋषि को यज्ञ में ब्रह्मा के रूप में स्थापित होने का अधिकार नहीं दिया गया था। जो त्रयीविद्या को मानते थे वे अथर्वण विद्या का तिरस्कार करते थे, इसी कारण आपने शाप दिया था न?"

महाअथर्वण को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि यह युवक तपस्वी उनके मन की बात ही कह रहा है।

"इसका क्या अर्थ हुआ?" उन्होंने पूछा।

"हस्तिनापुर के सम्राट शान्तनु ने मुझे यह वचन दिया है कि धर्मक्षेत्र में वाजपेय यज्ञ होगा, उसमें आप या आप जिसे पसन्द करें, वही ब्रह्मा के स्थान पर बैठेगा।"

"ये हवाई बाते हैं," महाअथर्वण ने कहा, "हस्तिनापुर के प्रमुख श्रोत्रिय अथर्वण विद्या को तो मानते ही नहीं हैं।"

"सम्राट को नवजीवन देने में आपकी मन्त्रविद्या पर ही तो प्रभु और ऋषियों की कृपा रही है!"

"तुम्हें यह विद्या किसने सिखाई?" महाअथर्वण ने पूछा।

"जितना कुछ मेरे पिता जानते थे उतनी मन्त्र-विद्या उन्होंने सिखाई, पर वह उतनी ही थी कि बीमार का उपचार कर सके। मनुष्य को फिर से जीवित कर सके ऐसी विद्या तो मुझे अपने गुरुजी से ही प्राप्त हुई है।" द्वैपायन ने दोनों हाथ जोड़कर कहा।

"मुझसे प्राप्त हुई?" महाअथर्वण ने गुस्से में कहा, "तुमने फिर झूठ बोलना शुरू कर दिया?"

"नहीं, मैंने आपसे ही यह मन्त्र सीखा है!" द्वैपायन ने कहा।

"लेकिन मैंने तो तुम्हें यह विद्या कभी सिखाई नहीं?" महाअथर्वण ने झुँझलाकर कहा, "मैंने तो अपने शिष्यों तक को यह विद्या नहीं सिखाई?"

"आपने ही मुझे यह विद्या सिखाई है। जब आपने पैल को जीवनदान दिया था तब आपने मन्त्रों का उच्चारण किया था। मैंने उसी समय उन मन्त्रों को याद कर लिया था। पैल को यहाँ लाने पर आपने फिर मन्त्रों का उच्चारण किया और तब फिर मैंने मन्त्रों को याद कर लिया। मैंने पुनः यह देख लिया था कि मुझे मन्त्र याद हुए थे कि नहीं। मैंने यह भी देख लिया था कि आप इन मन्त्रों का प्रयोग किस प्रकार करते हैं।" द्वैपायन ने कहा।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

महाअथर्वण को अभी भी उस पर विश्वास नहीं आ रहा था। बोले, "शुद्ध उच्चारण, स्वर का बलाघात, सभी कुछ याद रह गया?"

"हाँ गुरुदेव!" द्वैपायन ने कहा, "इसी मन्त्र-प्रयोग से मैंने सम्राट शान्तनु को जीवित कर दिया। इससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि मैंने मन्त्रों का उच्चारण बिलकुल सही और शुद्ध किया था।"

महाअथर्वण को अब उसकी बातों में रस आने लगा था। पूछा, "क्या तुमने यह चमत्कारी काम वनस्पति के लेप के बिना किया था?"

"नहीं। मेरे पास वनस्पति का लेप था।" द्वैपायन ने हँसकर उत्तर दिया।

"तुम्हें वह कहाँ से मिला?"

द्वैपायन के चेहरे पर अब कुछ विनोदी भाव आ गया था, "यह प्रसाद मेरे गुरु के आश्रम ने दिया था।"

"मेरा शिष्य होने की तूने यह क्या रट लगा रखी है? मैंने तुझे कभी अपने शिष्य के रूप में स्वीकार ही नहीं किया।" महाअथर्वण ने कहा।

"आपने किया है गुरुदेव! नहीं तो क्यों मुझ पर मारण-विद्या का प्रयोग करते और क्यों मैं आश्रम छोड़कर जाता?" द्वैपायन ने पूछा।

महाअथर्वण की तीक्ष्ण दृष्टि अब कुछ नरम पड़ गई। उन्होंने दाढ़ी पर हाथ फेरा। उनके होंठों पर मुस्कराहट आई। उन्होंने प्रश्न किया, "यज्ञ में ब्रह्मा कौन बनेंगे?"

"धर्मक्षेत्र में यह यज्ञ होगा और मेरे गुरुदेव ही इसमें ब्रह्मा के स्थान पर विराजमान होंगे।"

"अच्छा, मेरे लिए तूने यह भी तय कर डाला है?" महाअथर्वण ने पूछा। लेकिन इस प्रश्न में अब वह पहलेवाली प्रखरता नहीं थी।

"हाँ गुरुदेव! आपका संकल्प था कि अथर्वण विद्या को श्रुति के एक अंग के रूप में आप स्थापित करेंगे। अब वह संकल्प पूरा होगा।"

"तुम यह कैसे कह सकते हो?" महाअथर्वण ने पूछा।

"क्योंकि वाजपेय यज्ञ में ब्रह्मा के रूप में बैठने योग्य विद्वान ऋषि की खोज का काम सम्राट शान्तनु तथा पुरोहित विभूति ने मुझे ही सौंपा है।" द्वैपायन ने कहा।

आदर के साथ वह थोड़ी देर तक चुप रहे। फिर बोले, "अब यह अलग बात है कि आप मुझ पर मारण-मन्त्र का प्रयोग करना चाहते हैं, नहीं तो आप मुझे ही सारी अथर्वण विद्या सिखाते।"

मुनि ने पता नहीं यह सारी बात पूरी सुनी या नहीं क्योंकि थोड़ी देर तक वे मौन बैठे रहे। फिर अचानक विषय बदलकर बोले, "क्या यह सच है कि तू अदृश्य हो गया था?"

"लोगों की भीड़ रोज बढ़ती जा रही थी, इसलिए मैं वहाँ शान्ति से नहीं रह

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सकता था। मैंने सोचा कि यज्ञ को यदि ठीक समय पर शुरू करना है तो पहले चारों श्रुतियों को धारण करनेवाले धर्मक्षेत्र की स्थापना करना जरूरी है।''

''तूने कोई और भी सिद्धि प्राप्त कर ली है क्या?''

''हाँ, आपकी कृपा से एक वस्तु जरूर प्राप्त कर ली है—सम्राट शान्तनु तथा युवराज गांगेय ने वचन दिया है कि क्षात्रतेज, ब्रह्मतेज का साथ देगा।''

''उन्होंने क्या कहा है?''

''उन्होंने कहा है कि यदि क्षात्रतेज और ब्रह्मतेज का समन्वय नहीं होता है तो धर्म या राज्य कोई भी टिक नहीं सकेगा और युवराज व सम्राट ने मुझे वचन दिया है कि यह समन्वय होकर रहेगा।''

महाअथर्वण के चेहरे का भाव बता रहा था कि उन्हें इन बातों में रस आने लगा है, ''अब यह बता कि तू क्या वास्तव में हवा में अदृश्य हो गया था?''

''नहीं, भीड़ इकट्ठी हो, उससे पहले ही तड़के सवेरे मैं हस्तिनापुर से रवाना हो गया था। मैं गोधूलि आश्रम चला गया। मेरे पिता का अन्तिम संस्कार वहीं हुआ था। वहाँ मैं अपने पिता के शिष्यों द्वारा यमुनातट पर स्थापित आश्रमों में गया। वहाँ के करीब चालीस श्रोत्रिय अपने-अपने परिवारों के साथ धर्मक्षेत्र में आश्रम बसाने के लिए मेरे साथ आए हैं। उनमें कई तो आचार्य हैं।'' द्वैपायन ने कहा, ''महारानी सत्यवती ने आश्रम के लिए 300 गायें हमें प्रदान की हैं।''

''वे सब श्रोत्रिय कब आएँगे?'' महाअथर्वण ने पूछा।

''वे सब पहाड़ी की तलहटी में हैं और आपके आशीर्वाद की प्रतीक्षा कर रहे हैं।''

''यह तो मूर्खता की पराकाष्ठा है! तू भेड़ियों के क्षेत्र में शापग्रस्त स्थान पर आश्रम की स्थापना को क्यों तैयार हुआ है?'' महाअथर्वण ने पूछा।

''मैं नहीं, गुरुदेव! उस समय के आने से पहले ही आपका मारण-मन्त्र मुझे पितृलोक पहुँचा चुका होगा। पिताजी के प्रमुख शिष्यों ने वादा किया है कि यदि मैं जीवित नहीं रहता हूँ तो वे सुमन्तु को अपना गुरु स्वीकार कर लेंगे।'' द्वैपायन ने कहा।

महाअथर्वण की आँखों में मुस्कराहट आ गई, ''मैंने जितने व्यक्ति देखे हैं उन सभी में सबसे अधिक बेईमान तुम हो। तू मेरा शिष्य होने का दावा करता है और फिर भी मेरी आज्ञा का उल्लंघन करता है, आश्रम से बिना मेरी आज्ञा चला जाता है। आश्रम से चोर के समान संजीवनी चुरा ले जाता है। बिना मेरी आज्ञा अथर्वण मन्त्र का उपयोग करके शान्तनु को जीवन दे देता है। तुम यह सब कर सके, यह अभी मेरी समझ में नहीं आ रहा है। मन्त्रों के उच्चारण से या संजीवनी के प्रयोग से मेरा कोई भी शिष्य आज तक किसी मरणोन्मुख मनुष्य को जीवित नहीं कर सका है!''

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

द्वैपायन नटखट बालक के समान हँस पड़ा, "मैं आपके शिष्यों के पद-चिह्नों पर नहीं चल सका, गुरुदेव! मैं स्वयं भी नहीं जानता कि यह सब मैंने कैसे किया क्योंकि जब मैं सम्राट की चिकित्सा कर रहा था तो मुझे ऐसा लग रहा था कि मेरा कोई अस्तित्व नहीं है और केवल श्रुति की शक्ति ही मृत्यु को प्राप्त हो रहे सम्राट को स्वतः प्राप्त हो रही है।"

महाअथर्वण पल-दो पल के लिए शान्त रहे, फिर उन्होंने धीमी आवाज में कहा, "तू सफल हुआ, इसका कारण यही रहा होगा," लेकिन इसके बाद उनका पूर्व मनोभाव फिर उनके चेहरे पर आ गया, "तू मेरा शिष्य बनने योग्य नहीं है! मुझसे बिना पूछे तूने आश्रम स्थापित करने का निर्णय किया है। तू शिष्यों को और गायों को लेकर आ गया है लेकिन मुझे उनकी कोई आवश्यकता नहीं है। मेरी अनुमति के बिना तू सुमन्तु को आश्रम का मुखिया नियुक्त करता है और तू चाहता है कि मैं कुरुओं के कथन पर विश्वास करूँ, जिन पर मुझे कभी विश्वास नहीं रहा और मैं जानता हूँ कि वे धर्म पर कभी नहीं टिकेंगे। मुझे उन पर कोई भरोसा नहीं।"

मुनि क्रोधित हो उठे थे, "अब तू चाहता है कि मैं तुझ पर मारण-विद्या का प्रयोग करूँ और इस प्रकार धर्मयुग के नवनिर्माण का उत्तरदायित्व तेरे कन्धे से उतरकर मेरे कन्धे पर आ जाए!" मुनि ने द्वैपायन की ओर तीव्र दृष्टि से देखा, "नहीं, मैं यह नहीं होने दूँगा। मैं तेरे आश्रम की ओर, तेरे शिष्यों की ओर या तेरी गायों की ओर देखूँगा भी नहीं!" मुनि ने रोषपूर्वक कहा।

"महामुनि, मुझ पर एक कृपा करेंगे? मेरे पिता के शिष्यों को स्वीकार करने की अनुमति क्या आप सुमन्तु को दे सकेंगे?" द्वैपायन ने पूछा।

"नहीं, मैं नहीं दूँगा।" मुनि ने दृढ़तापूर्वक कहा। लेकिन फिर उनके स्वर में जो कठोरता थी वह मन्द पड़ गई, "मारण-मन्त्र की बजाय मैं एक दूसरी, उससे भी बड़ी विद्या तुझ पर आजमाना चाहता हूँ।" उनकी आँखों में विनोद का भाव दिखने लगा था।

"हाँ गुरुदेव, आप जो कहेंगे मैं वही करूँगा।"

"मैं मृत्यु से भी भयंकर मन्त्र का प्रयोग तुझ पर करूँगा।" मुस्कराहट को बड़ी कठिनाई से दबाते हुए उन्होंने कहा, "उसका प्रभाव यह होगा कि वाटिका तेरे पीछे पागल हो जाएगी और मुझे भी इस लड़की से छुटकारा मिल जाएगा। वह छुप-छुपकर मेरी बातें सुनती है, मेरी संजीवनी चोरी से ले जाती है!" महाअथर्वण ने पुनः कहा, "मुझे विश्वास है अभी भी वह आसपास ही कहीं होगी और हमारी बातें सुन रही होगी।" उनके चेहरे से कठोरता की रेखाएँ दूर हो गई थीं। अब वे हँसने लगे थे।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"आप गुरु हैं। आप मुझ पर जिस किसी विद्या का प्रयोग करेंगे, वह मुझे स्वीकार है।" द्वैपायन ने उत्तर दिया। उनके चेहरे पर विजय का सन्तोष था।

मुनि ने ताली बजाई। तुरन्त ही एक सेवक अन्दर आया। महाअथर्वण ने उससे कहा, "जाओ और वाटिका को यहाँ ले जाओ। वह आसपास ही कहीं होनी चाहिए।"

सेवक गया। थोड़ी देर में ही वाटिका अन्दर आ गई। "मैंने तुम्हें कहा नहीं था, द्वैपायन, कि वाटिका आसपास ही कहीं होगी?" महाअथर्वण बोले।

मुनि की आवाज में मधुरता आ चुकी थी। वाटिका उनकी प्यारी पुत्री थी।

"मुझसे क्या काम है पिताजी?" वाटिका ने अपने चेहरे पर आई बालों की लट को पीछे करते हुए कहा।

"तू हमारी बातें सुन रही थी न?" महाअथर्वण ने पूछा।

"नहीं, पिताजी!" वाटिका हँसकर बोली, "मैं तो पिछले द्वार पर खड़ी थी, यही सोचकर कि कहीं आप कुछ चाहें तो शीघ्र ही आपके पास आ सकूँ। आप इतने जोर से बोल रहे थे कि मैं नहीं सुनती तो क्या करती!"

"झूठी! द्वैपायन ने मेरी आज्ञा नहीं मानी इसके लिए और तूने संजीवनी वनस्पति की चोरी की इसके लिए, मैं तुम दोनों पर अपनी सबसे बड़ी विद्या, सबसे बड़े मन्त्र का प्रयोग करना चाहता हूँ।" कहकर महाअथर्वण ने कुछ देर के लिए आँखें मूँद लीं। फिर द्वैपायन पर दृष्टि जमाकर उन्होंने कहा, "द्वैपायन, तू वाटिका से प्रेम कर!"

"जी गुरुदेव, जैसी आपकी आज्ञा!" द्वैपायन ने कहा। उसने वाटिका की ओर देखा और उसके हृदय में उसे प्रेमभाव की प्रतीति होने लगी।

मुनि ने वाटिका की ओर देखा, "वाटिका, तू द्वैपायन से प्रेम कर!"

वाटिका ने द्वैपायन की ओर देखा और द्वैपायन जैसे उसके हृदय में आ बैठा हो, ऐसी प्रतीति उसे भी हुई। उसने भी कहा, "जी, पिताजी!"

"पुरातन ऋषि भृगु और अंगिरस की वशीकरण विद्या इसी प्रकार सफल होगी।" महाअथर्वण ने कहा।

वाटिका ने द्वैपायन की ओर देखा और दोनों के चेहरे पर प्रणय की मुस्कराहट खिल उठी।

"अब तुम जाओ," महाअथर्वण ने कहा, "नीचे मुनि पराशर के शिष्य प्रतीक्षा कर रहे हैं, उनको यहाँ ले आओ। उनको आश्रम में कोई कष्ट नहीं होना चाहिए इसका ध्यान रखना; और सुमन्तु, तू कोई अच्छी-सी तिथि ढूँढ़ ले और वाटिका से मेरा पिंड छुड़ा!"

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वाटिका की दुविधा

ऐसा होता तो कम है, किन्तु वेद-विधान के अनुसार, यदि पिता चाहे तो पुत्री का यज्ञोपवीत संस्कार हो सकता है, और तब वह बारह वर्षों तक व्रत-नियम का कठोर पालन करते हुए श्रुति का अभ्यास कर सकती है। ऐसी स्त्री को वह प्रतिष्ठा और अधिकार प्राप्त हो जाता है जो एक श्रोत्रिय को मिलता है और सामान्यतया अन्य स्त्रियों को प्राप्त नहीं हुआ करता क्योंकि वे यज्ञोपवीत धारण नहीं करतीं।

इसी परम्परा के अनुसार महाअथर्वण ने अपनी पुत्री वाटिका को उसके जुड़वाँ भाई सुमन्तु के साथ ही यज्ञोपवीत धारण करा दिया था। भाई-बहन दोनों ने आचार-संहिता का कठोरता से पालन करते हुए बारह वर्ष का ब्रह्मचारी जीवन अभी पूरा किया ही था।

फिर भी वाटिका को पिता का स्नेह अधिक प्राप्त था क्योंकि वह सुमन्त से छोटी थी और छोटे को ज्यादा स्नेह मिलने की पुरानी प्रथा है। उसकी तमाम शैतानियों को महाअथर्वण हँसकर सहन करते थे। महाअथर्वण की वह लाड़ली बेटी थी।

ऐसे दृढ़ विचारवान पिता की सन्तान होने के बावजूद वाटिका का अपना अलग दर्शन था। ब्रह्मचारी जीवन पूरा होने के बाद वह किसी उपयुक्त श्रोत्रिय के साथ विवाह की बात सोचा करती थी। उसने जब द्वैपायन को देखा, उसकी मोहक मुस्कान देखी और सरस्वती नदी के तट पर से भगवान वरुण के स्तुति-मन्त्रों का पाठ करते हुए सुना तो उसके मन में उसी से विवाह करने का विचार जाग्रत हो गया।

द्वैपायन जब महाअथर्वण को अपने जीवन के उद्‌देश्य और शान्तनु को पुनर्जीवन देने के विषय में बता रहा था वाटिका तभी बिना किसी मोहिनी-मन्त्र की अपेक्षा किए, द्वैपायन के प्रेमपाश में बँध गई थी। वह यह भी कामना करने लग गई थी कि द्वैपायन के साथ रहे और धर्मक्षेत्र का निर्माण करने में उसकी सहायता का उसे सुअवसर मिले।

पर्वत की तलहटी में प्रतीक्षा करते पराशर आश्रम के अन्तेवासियों को आमन्त्रित करने के लिए वाटिका, द्वैपायन, सुमन्तु और पैल गए।

वाटिका ने अभी तक मात्र अपने पिता का आश्रम ही देखा था और कुछ आश्रम पिता के शिष्यों के देखे थे, इसलिए आज जब उसने द्वैपायन का चलता-फिरता आश्रम देखा तो उसे अपूर्व आनन्द प्राप्त हुआ।

द्वैपायन ने उसे बताया कि इस आश्रम के अन्तेवासी मुनि पराशर के शिष्य हैं और यमुना-तट पर बसे आश्रमों से आए हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

धर्मक्षेत्र पहुँचने के लिए उनको लम्बा रास्ता तय करना पड़ा था। यात्रा के दौरान भी उन्होंने नियम-व्रत नित्य-कर्म का कठोरता से पालन किया था। उस चलते-फिरते आश्रम में कई प्रकार के लोग थे। द्वैपायन का विश्वास इस आश्रम का प्राण था। धर्मक्षेत्र के नवनिर्माण की इच्छा प्रत्येक आश्रमवासी की रग-रग में समाई हुई थी।

आश्रमवासियों में सबसे अधिक पूजनीय थे मुनि पराशर के वरिष्ठ आचार्य गौतम। आचार्य गौतम ने पितृत्व स्नेहमयी मुस्कान के साथ वाटिका को आशीर्वाद दिया।

आचार्य की पत्नी शर्मी व उनके बच्चों के अलावा और भी कई आचार्य अपने परिवारों के साथ आए थे। दंड-कमंडल लिये और मृगचर्म पहने कई द्विज थे। कुछ लोग बीमार थे। कुछ वृद्ध व कुछ बच्चे थे जो चल नहीं सकते थे, इसलिए बैलगाड़ियों में बैठे हुए थे। आश्रम पर आश्रित रहनेवाले भी कुछ लोग थे, वे भी अपने परिवार के साथ आए थे। कुछ साँड़ और सैकड़ों गायें थीं जिनकी देखभाल करनेवाले गोपालक भी साथ थे। राक्षसों व जंगली जानवरों से रक्षा करने के लिए सम्राट ने कुछ धनुर्धर भी साथ भेजे थे।

समस्त आश्रमवासी द्वैपायन को बालमुनि कहकर पुकारते थे। यह देखकर वाटिका का हृदय आनन्द से नाच उठा। द्वैपायन ने वाटिका को बताया, "ये सभी मुझे बालमुनि कहते हैं, मेरे पिता को ये पंगु मुनि कहकर पुकारते थे।"

पैल ने आश्रम की स्त्रियों से कहा, "यह वाटिका है—महाअथर्वण की पुत्री और बालमुनि की वाग्दत्ता।" यह सुनकर तो सभी के आनन्द का पार नहीं रहा। शर्मी ने पहले उसे सिर से पाँव तक देखा और फिर खुशी के मारे बाँहों में जकड़ लिया। आश्रम की अन्य सभी स्त्रियों ने उसे गले लगाया। कृतज्ञता और हर्ष से उसके आँसू छलक आए।

आश्रमवासियों ने पर्वत तलहटी में शिविर बनाए हुए थे। बैलगाड़ियाँ खड़ी थीं। गोपालक गायों को पानी पिलाने ले गए थे। कुछ लोग रसोई की तैयारी में लगे हुए थे।

द्विज और उनके कुटुम्बीजन महाअथर्वण को प्रणाम करने पहाड़ी की टेकरी पर गए।

दूसरे दिन महाअथर्वण, द्वैपायन, आचार्य गौतम तथा दोनों आश्रमों के कुछ आचार्य पराशर आश्रम की स्थापना के लिए उपयुक्त स्थान का चयन करने स्यमन्तक सरोवर पर गए।

वहाँ सबको वह जगह पसन्द आई जो तीसरे सरोवर के पास थी और जहाँ सरस्वती नदी का बहाव गहरा और चौड़ा था। वहीं पवित्र यज्ञवेदी स्थापित करने

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

के लिए भूमिपूजन किया गया।

महाअथर्वण और उनके शिष्यों ने पृथ्वी माता का आह्वान करनेवाले अथर्वण मन्त्रों का उच्चारण किया।

जब वेदी तैयार हो गई तब उसे पवित्र करने के लिए मन्त्र-पाठ हुआ। पास ही गड्ढा बनाकर उसमें एक वेदी पर कछुआ लाकर प्रतिष्ठित किया गया। कछुआ स्थिरता का प्रतीक होता है और वह पृथ्वी को धारण करनेवाला, उसे स्थापित करके पृथ्वी को प्रसन्न किया गया।

वाटिका के हृदय में आशा और आनन्द की हिलोर उठी। यहाँ उसका घर होगा, उसका पति उसके साथ यहीं रहेगा, उसके बच्चे पीढ़ी-दर-पीढ़ी यहीं रहा करेंगे, इस घर को ईश्वर का आशीर्वाद मिलेगा और दिन-रात यहाँ वेदमन्त्रों का गुंजार हुआ करेगा।

वाटिका द्वैपायन द्वारा सम्मोहित हो चुकी थी। त्रयीविद्या पर उनका अद्भुत अधिकार था। अथर्वण स्तोत्र भी वे सहज उच्चारण के साथ गाते थे और ग्रहों की स्थिति भी सरलतापूर्वक ढूँढ़ लेते थे।

होंठों पर आज्ञा या अभ्यर्थना का भाव लाए बिना ही वे हर किसी से जो चाहते थे वही करवा लेते थे। सवेरे वह आश्रम की स्त्रियों को गायें दुहने में मदद करते। श्रोत्रियों व ब्रह्मचारियों को साथ लेकर यज्ञवेदी का निर्माण-कार्य कराते। उनकी मधुर आवाज सारे वातावरण में एक नए जीवन की स्फूर्ति कर रही थी।

वह किसी को डाँटते नहीं थे और यदि कोई भूल करता तो उस भूल के प्रायश्चित में स्वयं भी साथ देते। भूल करनेवाला इससे लज्जित होता और भविष्य में ऐसी कोई भूल न हो, यह ध्यान रखता। पराशर आश्रम के सभी वरिष्ठ सदस्य पंगु मुनि की कठोर आचारसंहिता के अभ्यासी थे और इस संहिता के अधीन सीखे हुए आचरण व व्रतों का दृढ़ता से पालन करते थे।

बीमारों की सार-सँभाल में या बच्चों के भोजन की व्यवस्था में वे कभी भी ढील नहीं करते थे। भूलते नहीं थे। अपने दर्शन के लिए आनेवाले लोगों को वह अपनी मुस्कराहट से जीत लेते थे।

वाटिका को स्त्रियाँ द्वैपायन के बचपन के किस्से सुनातीं। शर्मी ज्यादा बातूनी थी। यह बताती कि द्वैपायन जब छोटा था तब किस प्रकार व्यवहार करता, किस प्रकार शैतानियाँ करता और किस प्रकार आश्रम के काम में हाथ बँटाया करता था।

धर्मक्षेत्र जाते हुए जब रास्ते में हस्तिनापुर में रुके तब सम्राज्ञी से जो भेंट हुई वह कितनी रोमांचकारी थी, यह बताती शर्मी थकती नहीं थी।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"अरे, महारानी इतनी नाजुक और इतनी सुन्दर कि क्या बताऊँ! कैसे-कैसे तो वस्त्राभूषण पहन रक्खे थे उसने!" यह जब वह कहती तो उसकी आँखों में जैसे महारानी की छवि साक्षात् नाच उठती, "वह रोज प्रतीपेश्वर के मन्दिर में आती और बालमुनि तथा आर्यपुत्रों को शिक्षा देती थी..."

ऐसे प्रसंगों को सुन-सुनकर वाटिका प्रकट में तो प्रसन्नता व्यक्त करती लेकिन भीतर-ही-भीतर व्यथित होती रहती।

उचित मुहूर्त में एक दिन द्वैपायन और वाटिका का विवाह कर दिया गया। महाअथर्वण ने कन्यादान दिया। आचार्य गौतम ने वर के पिता के स्थान पर इस दान को स्वीकार किया। वर-वधू ने पावन अग्नि के चारों ओर सप्तपदी के सात फेरे लिए और धर्मक्षेत्र के नवनिर्माण के मार्ग पर चलने में वाटिका अब द्वैपायन की सहधर्मिणी बन गई।

किंचित भय-मिश्रित उमंग के साथ वाटिका रात की प्रतीक्षा कर रही थी। रात को वह द्वैपायन से बहुत नजदीक से मिलेगी। लेकिन तब क्या होगा, यह चिन्ता भी उसके हृदय को मथ रही थी। आश्रम की स्त्रियों से उसने विवाह की प्रथम रात्रि के बारे में कई बार चर्चा सुनी थी। इन गुप्तगोष्ठियों से उसके मन में यह भाव बैठ गया था कि पहली बार जब पति अपनी पत्नी से मिलता है तब वह बड़ा कठोर और निर्दय होता है। उसे यही चिन्ता सता रही थी कि पता नहीं उसका पति उसके साथ कैसा व्यवहार करेगा, पता नहीं वह उसके व्यवहार को कितना और कैसे सहन करेगी, पता नहीं उसके पति की कठोरता उसे कितना विदीर्ण कर डालेगी और पत्नी के रूप में क्या वह उसे सन्तोष भी दे सकेगी?

लेकिन रात को जब दोनों की एकान्त में भेंट हुई तो वाटिका ने जो सोचा था उससे भिन्न अनुभव हुआ। द्वैपायन एक भिन्न ही प्रकृति का पुरुष था। उसका स्पर्श लेशमात्र भी कठोर नहीं था। जितनी मधुरता उसकी वाणी में थी उतनी ही मृदुता उसके स्पर्श में थी। उसके व्यवहार में स्वामित्व के भाव का लेशमात्र भी नहीं था। स्नेहमयी माँ-जैसा उसका संसर्ग पाकर वाटिका को आश्चर्य और आनन्द हुआ। कुछ भी कहने से पहले ही वह उसके मन की बात जान जाता था। द्वैपायन के प्रेम के वशीभूत होकर आनन्द में सराबोर उसने अपने-आपको पति के चरणों में सर्वांग समर्पित कर दिया।

'मेरी देह और मेरे मन के स्वामी, मैं तुम्हारी ही हूँ।' उसने मन-ही-मन कहा, 'जैसे ऋषि भृगु की पत्नी पौलोयी थी वैसे ही मैं तुम्हारी सहधर्मिणी बनी रहूँगी।'

उसने अनुभव किया कि जब-जब भी कहीं महारानी सत्यवती के नाम का उल्लेख होता है, द्वैपायन के चेहरे पर अनोखी प्रसन्नता छा जाती है। वाटिका को

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उनके चेहरे पर छानेवाली इस प्रसन्नता का रहस्य समझ नहीं आ रहा था। वह अपने पति को इतनी निकटता से जानती थी कि विवाह के अवसर पर ली गई प्रतिज्ञाएँ वह भंग कर देंगे, ऐसी तो वह कल्पना भी नहीं कर सकती थी।

कुछ दिनों बाद मन्त्री कुणिक हस्तिनापुर से रथ में आया। उसके साथ कुछ धनुर्बाण लिये हुए सैनिक तथा कुछ अन्य सहायक थे। इन सभी ने बाँस काट-काटकर कुटियाएँ बनानी शुरू कर दीं।

कुणिक, वाटिका के लिए चार बड़े-बड़े स्तनोंवाली दुधार गायें लाया था। प्रत्येक गाय की देख-रेख के लिए एक-एक ग्वाला भी साथ था। एक बड़ा साँड़ भी था। महारानी ने वाटिका को उपहार-रूप में ये सब भेजे थे। ये गायें पंचकल्याणी गायें थीं जो भाग्य से ही मिला करती हैं। काली चमकदार त्वचा थी उनकी, जिस पर पाँच स्थानों पर—चारों टखनों और ललाट पर—सफेद केशों के गुच्छे थे। साँड़ इतना बलवान, गर्वोन्नत और मदमस्त कि बार-बार खुरों से धूल उड़ाता और हुंकार करता था, इसलिए गायों को उससे बचाने के लिए दो ग्वाले तो उसे हरदम थामे ही रहते थे।

एक बार तो वाटिका का मन हुआ कि इस भेंट को अस्वीकार कर दे, लेकिन पति को नाराज करना भी अच्छा नहीं, यह सोचकर रह गई। महारानी का भी इससे अक्षम्य अपमान हो जाता। इसलिए उसने पति से मात्र इतना ही पूछा, "इन गायों का मैं क्या करूँ?"

"ये तुम्हारी गायें हैं, जो इच्छा हो करो।" द्वैपायन ने हँसकर कहा, "लेकिन साँड़ के पास तू मत जाना नहीं तो मैं तुझे ही गँवा बैठूँगा।" थोड़ी देर बाद वह फिर बोले, "महारानी वास्तव में बहुत उदार हैं, हैं न? वह कभी कुछ भी भूलती नहीं हैं।" लेकिन पति के ये प्रशंसापूर्ण वाक्य वाटिका के हृदय में तीर की तरह चुभ गए।

वाटिका की कई रातें बेचैनी में बीतीं। पहले कभी भी उसे ऐसा अनुभव हुआ नहीं था। नींद भी आ जाती तो दुःस्वप्न सताते रहते। जैसे महारानी किसी डायन का रूप धरकर टेंटुआ दबा रही हो, ऐसा उसे प्रतीत होता।

वाटिका ने मन-ही-मन तय किया कि महारानी के आने के बाद ही वह कोई निर्णयात्मक कदम उठाएगी। लेकिन ऐसा तय कर लेने से भी मन की गाँठ ज्यों-की-त्यों रही और उसे सालती रही।

पिता के समान ही दृढ़ता वाटिका को विरासत में मिली थी। वह हरदम महारानी से छुटकारा पाने का उपाय ही सोचती रहती। एक बार तो उसके मन में आया कि पिता से कहकर महारानी पर मारण-मन्त्र का प्रयोग करवा दे। लेकिन पिता तो द्वैपायन के प्रभाव में थे, इसलिए सम्भव था कि वे उसकी प्रार्थना को

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हँसी में ही उड़ा दें। और उसके पति को यदि इसका पता चल गया तो वह उसे कभी भी क्षमा नहीं करेंगे।

एक दिन सवेरे उसको उपाय मिल गया। अपने पिता की वृद्धा बहन ऊर्वी का उसने स्मरण किया। वह भी श्रोत्रिय थी। महाअथर्वण जिस खेत में चमत्कारी वनस्पतियाँ उगाया करते थे उसकी रखवाली वह किया करती थी। स्त्री रोगों को दूर करने में काम आनेवाले मन्त्र भी वह जानती थी। मार्ग में बाधक लोगों को हटाने में भी वह कई बार स्त्रियों की मदद किया करती थी। वाटिका ने सोचा कि उसके पति के जीवन से महारानी को दूर करने में भी शायद ऊर्वी मदद कर सके।

अतः वाटिका ने एक दिन बुआ के पास जाकर अपने सम्भावित प्रतिस्पर्द्धी को दूर करने योग्य मन्त्र सिखाने का आग्रह किया।

वृद्धा बुआ ऊर्वी हँस पड़ी, "अरे, अभी तो विवाह हुआ है और अभी से ऐसे-ऐसे मन्त्र सीखने का आग्रह करती है तू! क्यों, इतना बड़ा संकट आ गया कोई?"

"नहीं, यों तो मैं सुखी हूँ, लेकिन मुझे लगता है कि मेरे पति के जीवन में कोई दूसरी स्त्री आ सकती है, इसलिए ऐसा संकट पैदा हो उससे पहले ही मैं उससे बचाव का उपाय कर लेना चाहती हूँ।" वाटिका ने कहा।

ऊर्वी ने वाटिका को कुछ मन्त्र सिखाए जिनके प्रभाव से पति के जीवन में आनेवाली दूसरी स्त्री का शरीर विकृत हो सकता था।

मन्त्रों को सीखने के बाद बुआ से वाटिका ने वे चमत्कारी वनस्पतियाँ माँगीं जो इन मन्त्रों के साथ काम में आती थीं।

वृद्धा ऊर्वी हँस पड़ी, "गजब है! सौत तो दूर, तू तो सौत की कल्पना तक को अभी से निर्मूल करने निकल पड़ी है!"

ऊर्वी ने उसे किसी पेड़ की छाल दी और बरजते हुए कहा, "इसे पीसकर रस निकालो, उसे लाल बकरी के दूध में मिलाओ और जिसे प्रभावित करना हो उसे पिला दो। इस पेड़ के कुछ पत्ते अपने पति के पलँग के नीचे डाल दो और ये सब काम करते समय जो मन्त्र बताए हैं, उन्हें मन-ही-मन जपते रहो।"

"इस मन्त्र से उसकी मृत्यु तो नहीं होगी न?" वाटिका ने पूछा।

"नहीं, नहीं। यह कोई मारण-मन्त्र नहीं है। इस मन्त्र से तो तेरे पति और उस स्त्री के बीच झगड़ा होगा। झगड़े का परिणाम यह होगा कि दोनों ही एक-दूसरे से मुक्ति पा लेंगे!" वृद्धा ने उत्तर दिया।

वाटिका ने उन मन्त्रों को कंठस्थ कर लिया। वनस्पति का प्रयोग भी सीख लिया। अब महारानी का सामना करने को वह तैयार थी।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अतिथियों का आगमन

एक औसत आर्य परिवार का जीवन यज्ञ के आसपास घूमता रहता है। शास्त्र और परम्परा के अनुसार तीन यज्ञ सर्वश्रेष्ठ माने जाते थे—अश्वमेध, राजसूय और वाजपेय। इन यज्ञों में अग्नि और सोम की अलग-अलग विधियों से पूजा हुआ करती थी।

इन यज्ञों में आर्य, नाग और निषाद भी एकत्रित हुआ करते थे और यों एक प्रकार से ये यज्ञ सामाजिक सम्मेलन का रूप ले लिया करते थे।

इनका आयोजन सामान्य राजाओं के वश की बात नहीं थी क्योंकि उस यज्ञ में आनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को भोजन कराना, यज्ञ की सामग्री का समस्त व्यय वहन करना और यज्ञ की समाप्ति पर हर आगत को विदा करते हुए दान-दक्षिणा या उपहार देना पड़ता था।

हस्तिनापुर में अभी जो सम्राट शान्तनु थे उनके पूर्वज सम्राट भरत ने राजसूय यज्ञ किया था, लेकिन उनके बाद तो ऐसे यज्ञों की जैसे कला ही भुला दी गई।

इसलिए यह समाचार दावानल की तरह फैल गया कि बालमुनि से नवजीवन प्राप्त कर सम्राट शान्तनु चैत सुदी एकादशी के दिन भेड़ियों के क्षेत्र में वाजपेय यज्ञ का शुभारम्भ कर रहे हैं।

मित्र राजाओं को इस अवसर पर आने का निमन्त्रण देने के लिए राजकुमार गांगेय स्वयं गए थे।

समस्त आश्रमों में यह समाचार फैल गया था कि यह वाजपेय यज्ञ एक अभूतपूर्व घटना होगी, आचार्य विभूति इसके अध्वर्यु बनेंगे और आज तक त्रयीविद्या शाखा के श्रोत्रियों से कोई सम्बन्ध न रखनेवाले महाअथर्वण इस यज्ञ में ब्रह्मा के आसन पर विराजमान होंगे।

त्रयीविद्या और चतुर्वेद को माननेवाले श्रोत्रिय इस वाजपेय के अवसर पर एक मंच पर आ जाएँगे, इस समाचार को सुनकर कुछ को प्रसन्नता हुई और कुछ को चिन्ता कि न जाने क्या होगा।

विविध शाखाओं के श्रोत्रिय वहाँ आ चुके थे। श्रोत्रियों की अलग-अलग शाखाओं का मिलन वहाँ किस प्रकार होगा यह देखने की उन सभी को उत्सुकता थी। इसके अलावा भारत के प्रमुख आचार्यों का, विशेषकर शान्तनु को जीवनदान देनेवाले बालमुनि का, आशीर्वाद प्राप्त करने की भी उत्सुकता थी।

कई प्रतिष्ठित आचार्य यह सिद्ध करने के उद्देश्य से वहाँ आए थे कि उनके आश्रम की परम्परा कितनी ऊँची और शुद्ध है, तो दूसरे कई इस लोभ से आए थे कि यहाँ मुक्तभाव से भारी दक्षिणा दी जाएगी।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ऐसे भी राजा और सरदार वहाँ आए थे जिन्हें अपनी शक्ति और तड़क-भड़क दिखाने में ही ज्यादा रुचि थी।

व्यापारियों ने स्थान-स्थान पर दुकानें खोल दी थीं। यज्ञ में बलिदान के लिए बड़ी संख्या में बकरों की जरूरत होती है। बकरों की कमी न रहे इसलिए रेवड़वाले असंख्य हृष्ट-पुष्ट बकरे ले आए थे।

शिकारी मृगछालाएँ लाए थे। वे जानते थे कि श्रोत्रियों को भेंट करने के लिए राजा लोग इन्हें जरूर खरीदेंगे।

असंख्य लोग इस यज्ञ में छोटी-मोटी भेंट चढ़ाकर पुण्य कमाने के लिए आए थे। अधिकतर लोग अपना पूरा परिवार ही साथ ले आए थे। स्त्रियों के लिए तो यह यज्ञ एक उत्सव के समान था। घर के कामों से यहाँ उन्हें पूरी छुट्टी थी। नाचो, गाओ, मस्ती मारो और ऊँचे-ऊँचे श्रोतियों का आशीर्वाद लो—उत्तम पति प्राप्त करने के लिए या उत्तम सन्तान प्राप्त करने के लिए। हर तरह से उन्हें लाभ और आनन्द का अवसर था। इसके सिवाय करने-धरने को उन्हें वहाँ कोई काम था नहीं।

इस अवसर की शोभा बढ़ाने के लिए कई नर्त्तक, वादक, मदारी और पहलवान भी आए थे।

मन्त्री कुणिक द्वारा स्थापित निःशुल्क रसोड़े का प्रसाद प्राप्त करने को बिन बुलाए भिखारियों की जमात भी वहाँ उपस्थित थी। ऐसे अवसरों पर उनका आना तो अवश्यम्भावी होता है।

ज्यों-ज्यों शुभ मुहूर्त पास आता गया, त्यों-त्यों राजाओं के निवास की तैयारी करनेवाले उनके नौकर वहाँ आने लगे।

वाटिका उद्विग्न हो गई। दिनभर और आधी रात गए तक नए-नए आगन्तुकों का ताँता लगा रहता। वे सभी उसके पति का दर्शन करने की इच्छा लेकर आते थे। कोई अपना रोग दूर करने की प्रार्थना करता तो कोई उनका आशीर्वाद ही माँगता। बालक तो बालमुनि को घेरे रहते क्योंकि उनको भोजन कराए बगैर वे भोजन ही नहीं करते थे।

वाटिका को दिन-रात पति की चिन्ता सताती रहती। पति की छोटी-से-छोटी आवश्यकता का भी वह पूरा ध्यान रखती। चुम्बक के समान उसका पति इतनी मानव-मेदिनी को आकर्षित करता है, यह देख-देखकर वाटिका को गौरव की अनुभूति होती।

महाअथर्वण एकमात्र ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने कभी वाजपेय यज्ञ में भाग लिया था। वे इस यज्ञ की सम्पूर्ण कार्यविधि जानते थे। उनके मार्गदर्शन में आचार्य गौतम और उनके शिष्य यज्ञ की तैयारियाँ कर रहे थे।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

चैत्र शुक्ला सप्तमी को सोने-चाँदी से जुड़े हुए रथों में बैठ-बैठकर महाराजाओं के दल आने लगे थे। एक-दूसरे से होड़ करते आते उनके रथों को उत्तमोत्तम अश्व खींच रहे थे और वे नाना रत्नाभूषण पहने उन रथों में जगमगा रहे थे।

सन्देशवाहकों ने समाचार दिया कि अष्टमी के दिन त्रयीविद्या शाखा के महान आचार्य और सम्राट शान्तनु के राजपुरोहित विभूति पधार रहे हैं। उनके साथ उनके प्रमुख शिष्य भी आएँगे। दो विरोधी राजाओं के मुखियाओं—आचार्य विभूति तथा महाअथर्वण का मिलन किस प्रकार होगा, इस विषय में समस्त श्रोत्रिय तरह-तरह की अटकलें लगा रहे थे।

वाटिका को भी चैन कहाँ था! परिस्थिति इतनी नाजुक थी कि उसे भय था, कहीं कोई विक्षेप न आ पड़े। उसे पता था कि उसके पिता में ऐसे संकटों से निपट लेने की खूब क्षमता है, वे दृढ़निश्चयी हैं। वाटिका में यह कुशलता नहीं थी।

महाअथर्वण वाजपेय को सफल बनाने में जुटे थे। वे चाहते थे कि इस यज्ञ की सफलता के साथ द्वैपायन मुनियों की गौरवपूर्ण परम्परा में स्थान प्राप्त करे और इसी के लिए प्राणपण से प्रयत्नशील थे। सभी को यह समझ में आने लगा था कि वे प्रसन्न हैं तो फूल के समान कोमल हैं—अत्यन्त दयालु हैं और अप्रसन्न हैं तो महाकाल से भी कठोर। उन्होंने कहा, "मैं मुनि हूँ, इसलिए मुझे ब्रह्मा के आसन पर मत बैठाओ, मेरे बदले यह स्थान मेरा पट्टशिष्य शौनक लेगा।"

आचार्य विभूति आ पहुँचे। उनके शिष्यों ने उनकी पालकी उठा रखी थी। पूरे ठसके से आए थे। चारों ओर से शिष्यों ने घेर रखा था। लेकिन उनके मन में आनन्द नहीं था। भीतर-ही-भीतर उन्हें भय था कि महाअथर्वण जैसे कठोर और जिद्दी आदमी से खटकेगी जरूर। महाअथर्वण को समझौता स्वीकार नहीं था और आचार्य विभूति को अपमान।

ज्योंही आचार्य विभूति ने पालकी के बाहर पैर रखा त्योंही द्वैपायन, शौनक व अन्य आचार्यों ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया।

"मेरा शत-शत प्रणाम स्वीकार करें, पूज्य आचार्यश्री!" द्वैपायन ने कहा, "ये हैं महाअथर्वण के पट्टशिष्य शौनक। महाअथर्वण का विचार है कि वृद्ध होने के कारण शायद वे ब्रह्मा के रूप में अपना कर्तव्य ठीक से पूरा नहीं कर सकेंगे। इसलिए ब्रह्मा के स्थान पर आचार्य शौनक विराजेंगे।"

विभूति के चेहरे से दुश्चिन्ता की रेखाएँ तिरोहित हो गईं। शौनक उनसे छोटा था, इसलिए उनके मन से अब वह भय जाता रहा कि उन्हें महाअथर्वण के अधीन रहकर आचरण करना पड़ेगा।

द्वैपायन ने कहा, "आपका स्वागत करने के लिए महाअथर्वण नीचे ही खड़े हैं।"

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

आचार्य विभूति को इतने अधिक सम्मान की तो अपेक्षा ही नहीं थी। उन्हें आनन्द हुआ कि यज्ञ के अध्वर्यु के रूप में अब उनका ही वर्चस्व रहेगा।

जब अन्य आचार्यगण विभूति को प्रणाम कर रहे थे तभी जिस पालकी में वे आए थे और जो अब खाली नजर आती थी वह सजीव हो गई। उसका परदा हिला और सरककर हट गया। उसमें आचार्य ब्रह्मिष्ठ बैठे थे। वे उदास नजरों से चारों ओर देखने लगे।

सभी लोग चकित हो गए। ऐसा लगता था जैसे वह वृद्ध किसी और ही दुनिया से आया हो। उन्होंने भारी स्वर में पुकारा, "द्वैपायन! द्वैपायन!!"

आचार्य विभूति ने उनका परिचय देते हुए कहा, "ये हैं मेरे परम पूज्य पिताजी ब्रह्मिष्ठ!"

द्वैपायन ने सुमन्तु के कान में कहा, "जल्दी जा और अपने पिताजी को बुला ला। उनसे कहना कि पूज्य ब्रह्मिष्ठ आए हैं और यदि आप उनके स्वागत में आएँगे तो उन्हें बहुत प्रसन्नता होगी।"

फिर द्वैपायन पालकी के पास गए और ब्रह्मिष्ठ को साष्टांग दंडवत् प्रणाम किया। ब्रह्मिष्ठ ने द्वैपायन के मस्तक पर हाथ रखा। फिर टटोलते हुए अपना हाथ द्वैपायन के कान तक ले गए और कान के पास अपना मुँह ले जाकर बोले, "तेरी पत्नी कहाँ है? उसको यहाँ बुला ला।"

द्वैपायन ने पैल से वाटिका को बुला लाने को कहा। तब तक समस्त आचार्यों ने ब्रह्मिष्ठ को प्रणाम कर लिया।

पैल वाटिका को ले आया। इतने अधिक लोगों के बीच आने के कारण उसकी देह थरथर काँप रही थी। वाटिका ने ब्रह्मिष्ठ को साष्टांग प्रणाम किया। ब्रह्मिष्ठ ने उसकी पीठ पर हाथ रखा और पूछा, "तू रूपवती है?"

यह प्रश्न सुनकर सभी हँस पड़े। वाटिका ने लजाकर नजरें झुका लीं।

ब्रह्मिष्ठ ने पूछा, "तू श्रोत्रिय है?"

"हाँ, पूज्य गुरुदेव!" वाटिका ने कहा।

"देखो बेटी, स्वभाव में विनम्रता रखना। स्त्रियाँ जब श्रुति का अभ्यास कर लेती हैं तो उनको अहंकार आ जाता है। तू द्वैपायन की उत्तम पत्नी बनी रहना।"

सभी लोग फिर हँस पड़े। वाटिका तो लाज के मारे जमीन में गड़ी जा रही थी।

"द्वैपायन!" ब्रह्मिष्ठ ने कहा, "मुझे अपना हाथ दे, पालकी से बाहर आऊँ।"

द्वैपायन ने आचार्य को सहारा दे ऊँचा उठाया और खड़े होने में सहायता की। ब्रह्मिष्ठ ने एक हाथ द्वैपायन के कन्धे पर रखा।

विभूति को लगा कि पिता ने लोगों का ध्यान उसकी ओर से अपनी ओर

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

खींच लिया है। लेकिन वह विवश था। शौनक और गौतम भी अभी तक ब्रह्मिष्ठ की ही सार-सँभाल में व्यस्त थे।

इतने में ही वहाँ खड़े लोगों में एकाएक हलचल मच गई। सभी लोगों ने सम्मानपूर्वक पीछे खिसककर इतना रास्ता बना दिया कि एक पालकी आ सके। महाअथर्वण की पालकी आई। द्वैपायन ने आगे बढ़कर पालकी को कन्धा लगाया और दो-चार कदम चलकर उसे आगे लाने में मदद की। दो वृद्ध महाश्रोत्रिय एक-दूसरे से कैसे मिलेंगे इसका सभी को कुतूहल था।

लेकिन महाअथर्वण ने संकल्प कर रखा था कि वे वाजपेय की सफलता में कोई विघ्न पड़ने नहीं देंगे। ब्रह्मिष्ठ उसके पुराने शत्रु थे, लेकिन उनसे बड़े थे, इसीलिए उन्होंने पूर्वजों की परम्परा के अनुसार बिना किसी संकोच के झुककर ब्रह्मिष्ठ की चरण-वन्दना की।

सभी ने सन्तोष की साँस ली। ब्रह्मिष्ठ ने महाअथर्वण का हाथ अपने हाथ में लिया और कहा, "जाबालि, मैंने ही तुझे धर्मक्षेत्र के बाहर निकाला था, अब तू ही धर्मक्षेत्र में मेरा स्वागत करता है। ईश्वर ने हम दोनों को मिलने की इस घड़ी के लिए ही जीवित रखा है।"

महाअथर्वण हँस पड़े, "अवश्य, समय बदल गया है। मैंने ही कब सोचा था कि मैं अपनी पुत्री का विवाह महामुनि वसिष्ठ के प्रपौत्र के साथ करूँगा?"

अगले दिन राजकुमार गांगेय चार घोड़ोंवाले रथ में धर्मक्षेत्र आ पहुँचे। ऊँचे कद के, आकर्षक, बलशाली और भव्य व्यक्तित्ववाले गांगेय ऐसे लगते थे जैसे मानव समुदाय पर शासन करने के लिए ही जन्मे हों। उन्होंने रथ रोका और नीचे कूदकर आचार्य विभूति, गौतम, शौनक और द्वैपायन को प्रणाम किया तथा वहाँ एकत्रित अन्य लोगों का हाथ जोड़कर अभिवादन किया।

लोग उन्हें घेरे हुए एक जुलूस बनाकर राजशिविर तक ले गए। गांगेय ने द्वैपायन को सम्बोधित करते हुए पूछा, "भाई, आपकी पत्नी कहाँ है?"

द्वैपायन ने वाटिका की ओर अँगुली से संकेत किया।

गांगेय वाटिका के पास आए और हँसकर बोले, "ध्यान रखना, आपका पति ज्ञान में आपको पीछे न छोड़ दे!"

गांगेय के बाद जो रथ आया उसमें चित्रांगद तथा विचित्रवीर्य थे। उन्होंने नीचे उतरकर समस्त आचार्यों को प्रणाम किया।

वाजपेय शुरू होने में जब दो दिन शेष थे तब सम्राट और सम्राज्ञी नाना अलंकरणों से सुसज्जित हाथी पर बैठकर आए। उनके दोनों ओर पंक्तिबद्ध धनुर्धारियों का और सेवकों का एक लम्बा काफिला था। हाथी नीचे बैठा। उसकी पीठ पर लगी पालकी को नीचे उतारा गया। महारानी और गांगेय का सहारा लेकर

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सम्राट पालकी से बाहर आए।

वाटिका टुकुर-टुकर महारानी को ही देख रही थी। उसने जब से सत्यवती को देखा था तभी से उसे लग रहा था कि कहीं वह बेहोश न हो जाए। यौवन की प्रतिमूर्ति, चमकता चेहरा, छरहरा बदन और मोहक नयन देखकर वह स्तब्ध रह गई थी।

महारानी सत्यवती ने द्वैपायन की ओर विनोदपूर्ण दृष्टि से देखा। फिर वे द्वैपायन को प्रणाम करने के लिए झुकीं, लेकिन लगा जैसे कोई औपचारिकता मात्र निभा रही हों। उनके चेहरे पर एक अर्थपूर्ण मुस्कान खेल रही थी। प्रणाम की समूची प्रक्रिया परिहास-सी लग़ रही थी।

महारानी इतनी सुन्दर और इतनी मोहक थीं कि वाटिका को लगा, शायद ही कोई उनकी बराबरी कर सके।

द्वैपायन तथा अन्य आचार्यों ने सम्राट और सम्राज्ञी पर पुष्पों और आशीर्वादों की वर्षा कर दी। शंखनाद और दुन्दुभिनाद से उनका स्वागत किया गया। राजाओं ने उन्हें हाथ जोड़े और कुछ ने तो उनके चरण-स्पर्श भी किए।

महारानी सत्यवती से वाटिका का परिचय कराया गया। महारानी ने स्नेह से वाटिका की पीठ पर हाथ रखा, थोड़ी देर उसे देखती रहीं। फिर कहा, "तूने तो द्वैपायन को हमसे चुरा लिया! अपने पति को सुखी रखना और सुखी रहना!"

वाटिका का मन तो हुआ कि कुछ उत्तर दे, लेकिन आसपास इतने अधिक लोग थे कि मन में आए शब्दों को वह होंठों पर न ला सकी। महारानी और उसके अपने पति के बीच कोई-न-कोई सम्बन्ध अवश्य है, यह तो वाटिका ने भाँप लिया, लेकिन यह सम्बन्ध कैसा है यह उसकी समझ में नहीं आ सका। फिर भी उसे इस बात का आनन्द था कि अब वह उस पर मन्त्र-प्रयोग तो करेगी ही।

सम्राट और सम्राज्ञी पालकी में बैठे और पूरे जुलूस के साथ वाजपेय के लिए निश्चित किए गए स्थान की ओर गए। वहाँ स्त्रियाँ सिर पर जल से भरे घड़े लिए स्वागत-गान गा रही थीं।

कष्टदायक चक्र

समारोह को सफल बनाने के लिए उसके पति जिस ढंग से काम कर रहे थे उसे देख-देखकर वाटिका दंग थी।

अध्वर्यु के रूप में आचार्य विभूति, होता के रूप में आचार्य गौतम और

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उद्गाता के रूप में आचार्य शौनक वाजपेय की तैयारियों में व्यस्त हो गए थे।

'सत्रह' का अंक बड़ा चमत्कारी अंक बन गया था। इस अंक से वाजपेय यज्ञ में एक अद्भुत पवित्रता जुड़ गई थी।

सत्रह वेदियाँ निर्मित हुईं। बीच की वेदी सबसे बड़ी थी। इस पर भगवान अग्नि का आह्वान कर उनकी पूजा की जाएगी। अन्य छोटी-छोटी वेदियों पर अध्वर्यु, होता, उद्गाता और ब्रह्मा बैठेंगे।

उन्होंने सत्रह मन्त्र, सत्रह स्तोत्र तथा सत्रह शास्त्र चुने थे। ऐसे ही अग्नि को बलि देने के लिए सत्रह बकरे तैयार रखे गए थे।

समुचित विधि-विधान से सत्रह यूप तैयार किए थे। ये सभी सत्रह हाथ ऊँचे थे और उन पर सत्रह-सत्रह वस्त्र लपेटे गए थे।

प्रातःकाल समारोह प्रारम्भ हुआ। सम्राट और सम्राज्ञी यज्ञस्थल पर पहुँचे। सोने से मँढ़े सींगोंवाले आठ सफेद बैलोंवाली गाड़ी में हिमालय से लाए गए पवित्र वनस्पतिराज सोम का उन्होंने स्वागत किया और उसे अध्वर्यु को सौंपा।

अध्वर्यु ने समुचित मन्त्रों का उच्चार करके इसे होता को सौंपा। फिर इस वनस्पति को पीसकर इसका रस निकाला गया जिसे सत्रह पात्रों में भरा गया। और भी कई वनस्पतियों का रस निकाला गया और उन्हें भी सत्रह-सत्रह पात्रों में भरा गया।

आहुति देने के लिए सम्राट तथा महारानी दोनों ने सत्रह-सत्रह स्वर्णमालाएँ पहन रखी थीं। चार मुख्य आचार्यों को सत्रह-सत्रह स्वर्णमालाएँ दी गईं तथा शेष दसेक आचार्यों को एक-एक स्वर्णमाला दी गई।

प्रत्येक मुख्य आचार्य को सत्रह गायें दान में दी गईं।

उचित मन्त्रोच्चार के साथ सत्रह वेदियों में अग्नि प्रदीप्त की गई थी।

सैकड़ों श्रोत्रियों के मन्त्रोच्चार के साथ रसराज सोम देवताओं को अर्पित हुआ।

वाटिका की दृष्टि तो अपने पति तथा महारानी को ही निरख रही थी। वह बराबर मुस्कराते, प्रोत्साहन देते समारोह में भाग ले रहे थे। वे जहाँ भी जाते उन्हें भीड़ घेर लेती। भोजन पाने के लिए बच्चे उनके पीछे-पीछे फिरते। माताएँ अपने बच्चों को गोद लिये उनका आशीर्वाद पाने को उमड़ती रहतीं। दर्शन को आतुर भीड़ से द्वैपायन को कोई परेशानी न हो, यह व्यवस्था करने में सेवकों को बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ रहा था।

पहले तो वाटिका को यह ज्ञात ही नहीं हुआ कि उसके पति ने किसी भी तरह का पद स्वीकार नहीं किया है। वह तो यही समझती थी कि उसका पति ही अध्वर्यु होगा। फिर उसकी समझ में आ गया कि इस युवावस्था में भी द्वैपायन

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

को सभी लोग अजीब आदर-भाव से देखते हैं, उन्हें मुनि पराशर के पुत्र के रूप में नहीं बल्कि एक सिद्ध के रूप में भी पूजते थे। इससे उसे हर्ष और गौरव की अनुभूति हुई।

सत्रह दिन, जब तक यज्ञ चलेगा तब तक समूचे धर्मक्षेत्र में पति का पत्नी से दूर रहना आवश्यक था। इसलिए रात को हारे-थके द्वैपायन जब घर आते तो कुछेक क्षण की जो भेंट होती थी उसके सिवाय उससे मिलने का और कोई अवसर उसे नहीं मिलता था।

पति के बारे में शिकायत का वाटिका को अभी कोई अवसर नहीं मिला था। जब भी दोनों की आँखें मिलतीं, पति के होंठों का मुस्कराहट रूपी पंछी उड़कर उसके होंठों पर आ बैठता। लेकिन महारानी का उसके पति के प्रति जो बर्ताव है, वह उसे अभी तक नहीं समझ सकी थी। जब भी उन दोनों की आँखें मिलतीं परस्पर समझौते की भाषा उसमें साफ पढ़ी जा सकती थी। यह समझौता क्या था?

उसने एक और बात देखी कि महारानी की आँखें जब वाटिका की आँखों से मिलतीं तब वह ऐसे हँसती जैसे वाटिका उसकी कोई निजी सम्पत्ति हो। उसके मन में आया, महारानी दुष्ट है। उसकी मुस्कराहट में उसे पाखंड नजर आता। वह सोचती कि कहीं यह मुस्कराहट उसके पति को जीत लेने के गर्व से भरी हुई मुस्कराहट तो नहीं है!

ब्रह्मचर्यावस्था के बारह वर्षों तक वाटिका ने यौन-सम्बन्धों में कठोर आत्म-संयम का पालन किया था। फिर जब उसने द्वैपायन को देखा तब उसके हृदय के कपाट खुल गए और कामनाओं का समन्दर हिलोरें लेने लगा। किन्तु जब उसने सोचा कि उसके पति को किसी ने चुरा लिया है तो वह ईर्ष्या से पागल ही हो गई। उसने ठान लिया कि ऐसी मोहिनी शक्तिशाली महारानी को रास्ते से हटाना ही होगा।

यज्ञ के सोलहवें दिन रथ-प्रतियोगिता का आयोजन हुआ। यह प्रतियोगिता यज्ञ का एक महत्त्वपूर्ण अंग थी।

यूप (बलिखम्भ) पर सत्रह धारवाला पहिया स्थापित किया गया था। इसके बाईं ओर सत्रह दुन्दुभिवादक बैठे हुए थे। उन्हें दिन में सत्रह बार दुन्दुभि बजानी होती थी।

प्रतियोगिता-पथ सत्रह तीरों की गति जितना लम्बा था।

आर्यों की दृष्टि में घोड़ा एक दैवी पशु माना जाता था। वेदों में दधिक्रवा नाम के जिस घोड़े का उल्लेख है उसकी सन्तान होने के नाते हर घोड़ा उनकी दृष्टि में शक्ति और पौरुष का जीवन्त प्रतीक होता था। आर्यों का चार घोड़ोंवाला रथ

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

युद्ध में उन्हें विजय दिलानेवाला तथा शत्रुओं को मिटा देने का प्रतीक माना जाता था। शान्ति-काल में रथ-प्रतियोगिता आर्यों का प्रिय खेल था।

घोड़ों की देख-रेख व प्रशिक्षण-प्रक्रिया में क्षत्रिय प्रवीण थे। अधिकांश राजा अपनी निजी अश्वशालाएँ रखा करते थे। रथ-कौशल के स्तर के अनुसार क्षत्रियों में रथी, महारथी और अतिरथी की पदवी दी जाती थी।

इस प्रतियोगिता के लिए सत्रह रथ लाए गए थे। इनमें से सोलह रथों में चार-चार घोड़े जुते थे। जिस सत्रहवें रथ में सम्राट और महारानी को बैठना था उसमें तीन शक्तिशाली घोड़े तो जुते हुए थे किन्तु चौथा प्रचंड घोड़ा बिना जोते खुला रखा गया था। सारथी यह ध्यान रखता था कि वह चौथा घोड़ा जोता हुआ न होने के बावजूद अन्य तीनों जुते हुए घोड़ों के साथ कदम मिलाता चले। यह चौथा घोड़ा दैवी घोड़े के रूप में पूज्य माना जाता था।

सम्राट के स्वास्थ्य को ध्यान में रखकर मुख्य आचार्य ने तय किया था कि रथ-प्रतियोगिता में राजकुमार गांगेय रथ चलाएँगे।

महाअथर्वण और द्वैपायन प्रतियोगिता-स्थल पर खड़े थे। उन्होंने देखा कि पाँवों से अस्थिर हो गए सम्राट को गांगेय ने बाँह पकड़कर रथ में चढ़ाया। महाअथर्वण और द्वैपायन ने एक-दूसरे की ओर अर्थपूर्ण दृष्टि से देखा। महाअथर्वण ने सहमतिसूचक सिर हिलाया और द्वैपायन ने आगे बढ़कर राजकुमार से एक ओर होने की विनम्र प्रार्थना की। फिर वे सम्राट के सामने जाकर खड़े हो गए और उनकी ओर स्थिर दृष्टि से देखने लगे। ऐसा लगा, मानो उनकी आँखों से शक्ति की अदृश्य किरणें सम्राट के शरीर में प्रवेश कर रही हैं।

द्वैपायन ने अधिकारपूर्ण स्वर में कहा, ''सम्राट, आप स्वयं ही रथ का संचालन कर सकेंगे?''

''मुझे भय है कि मैं नहीं चला सकूँगा।'' सम्राट ने अशक्त भाव से मुस्कराते हुए कहा।

''नहीं, आप रथ चला सकेंगे,'' द्वैपायन सम्राट की ओर एकटक देखते हुए बोले और पुनः कहा, ''हाँ, आप रथ अवश्य चला सकेंगे।''

सम्राट ने पल-भर द्वैपायन की ओर और पल-भर दूसरों की ओर देखा।

''हाँ, अवश्य! मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ।'' द्वैपायन ने कहा और सम्राट को रथ पर चढ़ने में सहायता के लिए हाथ बढ़ाया।

सम्राट द्वैपायन की ओर देखकर मुस्कराए और द्वैपायन का हाथ थाम लिया, और तभी सम्राट में जैसे कोई विचित्र परिवर्तन आ गया। उनके अस्थिर पाँवों में दृढ़ता आ गई और वे अपने कन्धे तानकर स्वयं ही रथ पर चढ़ गए। सम्राट में यह चेतना देखकर सभी को विस्मय हुआ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

द्वैपायन ने नम्रतापूर्वक गांगेय से कहा, "सम्राट स्वयं ही रथ चलाएँगे।"

किसी समय अतिरथी के रूप में प्रसिद्धि पाए हुए सम्राट ने बाएँ हाथ में तीन घोड़ों की और दाएँ हाथ में चौथे खुले घोड़े की लगाम ले ली।

आचार्य विभूति ने महारानी की ओर घूमकर कहा, "महाअथर्वण की पुत्री वाटिका आपको रथ पर चढ़ने में सहायता करेगी।"

वाटिका को यह अच्छा नहीं लगा, किन्तु इस प्रार्थना का अनादर नहीं किया जा सकता था, अतः उसने अपना हाथ बढ़ाया। महारानी ने उसके गाल पर एक हलकी-सी चपत लगाई और उसका हाथ थामकर वे रथ पर चढ़ गईं।

वाटिका ने देखा कि कहीं महारानी चढ़ते-चढ़ते फिसल न पड़ें, इसलिए उन्हें सँभालने को तैयार द्वैपायन भी रथ के पास ही आ खड़े हुए हैं। उसने मन–ही-मन महारानी के विषय में सोचा, 'ओह, कैसी दुष्ट स्त्री है यह! मुझे अभी इसी समय कुछ-न-कुछ कर लेना चाहिए!'

महारानी सत्यवती पति के पास तनकर सीधी खड़ी थीं। उनकी आँखों में विजय का आयास अभी से उतर आया प्रतीत हो रहा था।

सत्रह दुन्दुभिवादकों ने दुन्दुभिनाद किया। प्रतियोगिता शुरू हुई। उत्तम कोटि के अड़सठ घोड़े लक्ष्य की ओर द्रौड़ पड़े। सभी प्रसन्नता से इस दृश्य को देखने लगे। बच्चे तो आनन्द से नाच उठे।

जब सभी लोग साँस रोके इस दृश्य को देख रहे थे, तब वाटिका चुपचाप वहाँ से खिसक गई।

अद्‌भुत प्रतियोगिता थी। किसी का घोड़ा प्रचंड वेग से ऐसा दौड़ता कि रथ उलटा हो जाता और जब रथ चलानेवाला उसमें से उछलकर बाहर गिर पड़ता तो वह जैसे-तैसे अपने को बचाता हुआ उठ खड़ा होता। कभी दो रथों के घोड़े आपस में टकराकर सन्तुलन खो बैठते।

सम्राट जब रथ पर चढ़े थे तो उनमें अतिरथी की शक्तियाँ प्रकट होने लग गई थीं। घोड़े भी जैसे अपने स्वामी का हाथ पहचानकर वायुवेग से उड़ चले थे, और चौथा मुक्त घोड़ा भी शेष तीन घोड़ों के साथ बराबर गतिमान था। पलक मारते ही सम्राट का रथ सभी से आगे निकल गया। सम्राट प्रतियोगिता जीत गए।

"साधु! साधु!" सभी दर्शक पुकार उठे।

प्रतियोगिता के बाद बलिदान का कार्यक्रम हुआ और उसके बाद सामूहिक भोजन हुआ।

राजपरिवार जब शिविर की तरफ वापस चला तब महारानी ने कहा, "स्वामी, आज तो सचमुच आपने कमाल कर डाला।"

"इसका श्रेय तुम्हारे पुत्र को जाता है। मुझे ऐसा लगा मानो मैं बीस बरस

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

छोटा हो गया हूँ।"

"वह पुत्र आपका भी तो है?" महारानी ने कहा।

सम्राट को उनकी शैय्या पर सुलाकर महारानी ने उन्हें प्रणाम किया, विदा ली और पास के अपने शयनागार में चली गईं। जाते-जाते द्वारपाल को दीप बुझाने का संकेत कर गईं।

दासियों ने उनके आभूषण और मुकुट आदि उतारे, भारी औपचारिक वस्त्र उतारकर दूसरे हलके और साफ वस्त्र पहनाए। नीचे सादा घाघरा और ऊपर वक्षस्थल पर एक दुपट्टा हल्का-सा कसा हुआ। फिर उन्होंने दासियों को विदा कर दिया। एक दासी वहीं रुक गई। वह द्वार के बीचोंबीच सोती थी। उसका नाम था दावी।

महारानी जब सोने के लिए पलँग के पास गईं तो ठिठककर खड़ी हो गईं। दावी को दीप लाने के लिए कहा। दावी दीप लाई और उसे उसने ऊँचा करके उधर प्रकाश किया जिधर महारानी को कुछ दिखाई दिया था।

दोनों ने देखा कि पलँग के चारों ओर किसी दूधिया पदार्थ का घेरा बना हुआ है। कुछ क्षणों के लिए महारानी स्तब्ध रह गईं और उस वर्तुल का रहस्य जानने का प्रयास करने लगीं।

उस दूधिया घेरे को लाँघने का जोखिम उन्होंने नहीं उठाया। हाथ लम्बा करके बिस्तर से ऋक्ष-चर्म खींच लिया और उसे झटक दिया। उसमें से चार-पाँच छोटे-छोटे पत्ते निकलकर जमीन पर गिरे। उन पत्तों को उन्होंने हाथ में लिया और पहचानने की कोशिश की, पर पहचान नहीं पाईं। ऐसा लगा कि किसी अज्ञात जादुई वनस्पति के पत्ते हैं। शायद किसी ने उन पर जादू-टोना करना चाहा था। कौन कर सकता है यह? उन पर यह टोना-टोटका करने का क्या प्रयोजन हो सकता है? दिनभर विजय का जो उल्लास उनके मन में उपस्थित रहा था, वह एकाएक विलीन हो गया।

"दावी, दिन-भर इस कुटीर खंड की रखवाली में कौन रहा था यहाँ?" महारानी ने पूछा।

दावी ने धैर्यपूर्वक उत्तर दिया, "मैंने दासियों को प्रतियोगिता देखने की अनुमति दे दी थी।"

"तू पूरे दिन यहीं थी?"

दावी ने हाथ जोड़कर कहा, "क्षमा करें, जब आप रथ पर चढ़ रही थीं तब मैं भी प्रतियोगिता देखने का लोभ नहीं छोड़ सकी।"

"तूने यह घेरा बना हुआ कब देखा था?" महारानी ने पूछा।

"उधर आने से पहले मैंने ऋक्ष-चर्म धूप में डाले थे, वापस आने पर मैं उन्हें

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अन्दर ले आई और बिस्तर पर बिछा दिए। मैं जब यहाँ से प्रतियोगिता देखने गई थी, तब तो यहाँ यह जादुई घेरा नहीं था।''

''दावी, अब तू मेरा बिस्तर फर्श पर लगा दे। मैं इस जादुई घेरे में नहीं सोऊँगी।''

वे बहुत चिन्तित थीं। कौन हो सकता है यहाँ मेरा शत्रु? जब से वह हस्तिनापुर आई हैं तब से उन्होंने प्रत्येक का हृदय जीतने का ही प्रयत्न किया है। कभी भी किसी का मन नहीं दुखाया। उनका भी कोई शत्रु हो सकता है, यह जानकर उनके दुख का पार न रहा।

वह कौन हो सकता है, इसी पर विचार करते-करते उन्होंने मन-ही-मन कहा, 'मेरा तो कोई शत्रु नहीं है। मैंने किसी को दुखी किया नहीं। सम्राट की पत्नी बनकर भी मैंने प्यार पाया है, गांगेय को मैंने माँ के नाते पूरा वात्सल्य दिया है। कुछ सरदारों पर भी मैंने सदैव कृपादृष्टि ही रखी है। मेरे अधीनस्थ जो हैं वे भी हस्तिनापुर के प्रजाजनों के भले की ही कामना करते हैं। तो फिर यह कौन हो सकता है जिसे मुझसे चोट पहुँची है? जान जाऊँ तो मैं उससे क्षमा माँग लूँ।'

महारानी ने दावी को बुलाया। दावी आई और थोड़ी देर खड़ी रही। महारानी बोलीं, ''दावी, बालमुनि के पास जा और उससे कह कि मुझ पर कोई व्यक्ति मैली विद्या आजमा रहा है। ये पत्तियाँ उसे दिखा देना। उससे कहना कि वह इस व्यक्ति को ढूँढ़े जो मेरा अहित करने में संलग्न है। यह भी कहना कि मुझसे वह सुबह मिले। मुझे किसी षड्यन्त्र की आशंका है।''

माँ की बेटी

द्वैपायन की कुटिया में पति से दूर एक अलग खंड में जाकर वाटिका सोई।

द्वैपायन भी मृगचर्मवाले अपने बिछौने पर जाकर सो गए। सोने से पहले उन्होंने अपने मृगचर्म को उठाकर झटका तो उसमें से चार पत्ते निकलकर बाहर गिर पड़े। द्वैपायन ने इन पत्तों को उठाया और कुटिया में जल रहे दीपक के पास ले जाकर उन्हें देखा।

गौर से देखा तो ज्ञात हुआ कि वे 'पात' नाम की चमत्कारी वनस्पति के पत्ते हैं। वह उन्हें देखकर आश्चर्य में पड़ गए। यह काम चतुर्विद्या में प्रवीण किसी अथर्वण का ही हो सकता था।

पिता से उन्होंने सीखा था कि एक विशेष मन्त्र पढ़कर 'पात' के पत्ते का प्रयोग किया जाए तो शत्रु कुरूप या दुष्ट हो जाता है। वह सोच में पड़ गए कि

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उन्हें कौन वहाँ डाल सकता है।

महाअथर्वण ऐसा करें, यह तो एकदम असम्भव है। वे तो द्वैपायन को समस्त मुनि समाज में प्रतिष्ठा दिलाने का प्रयत्न कर रहे थे। शौनक और सुमन्तु भी उनके मित्र थे। कोई और अथर्वण होगा जो उनसे ईर्ष्या रखता है। इस प्रकार कई तरह के विचार उनके मन में उथल-पुथल मचाने लगे।

वह चिन्तामग्न बैठे इस घटना पर सोच-विचार कर ही रहे थे कि वहाँ तभी महारानी का सन्देश लेकर दावी आ पहुँची। वह बोली, "पूज्य मुनि, मेरी स्वामिनी रात होने पर सोने को गईं तो उन्होंने देखा कि उनके बिस्तर के चारों ओर किसी ने दूध-जैसे पदार्थ से घेरा बना रखा था और बिस्तर में उन्हें ये पत्ते भी मिले।"

द्वैपायन ने दावी के हाथ से पत्ते ले लिये।

"मेरी स्वामिनी को आशंका है कि किसी ने उनके विरुद्ध कोई षड्यन्त्र रचा है।" दावी ने कहा।

द्वैपायन ने देखा कि ये पत्ते भी 'पात' वनस्पति के ही हैं। कहा, "दावी, तू जाकर अपनी स्वामिनी से कहना कि मैं सवेरे उनसे मिलूँगा।"

दावी के जाने के बाद द्वैपायन फिर विचार में डूब गए। अब इसमें कोई सन्देह नहीं रहा कि जिस व्यक्ति ने उन पर अपनी विद्या का प्रयोग किया है, उसी ने महारानी पर भी इसका प्रयोग किया है। सम्भवतः उसका उद्देश्य उनकी अपेक्षा महारानी को ज्यादा हानि पहुँचाने का था।

यह कौन हो सकता है? जो व्यक्ति महारानी पर जादू-टोना करने चला है वही व्यक्ति वैसा ही जादू-टोना उन पर भी करने की इच्छा रखता है, ऐसा व्यक्ति कौन हो सकता है? एक के बाद एक नाम उनके सामने आता चला गया। महाअथर्वण ऐसा नहीं कर सकते। नहीं, शौनक भी नहीं करेगा। और महारानी और उनके बीच ऐसी कौन-सी समान बात हो सकती है जो किसी को ऐसा दुष्टतापूर्ण काम करने को प्रेरित करे?

सहसा उनके मस्तिष्क में विचार कौंधा–हो-न-हो, यह काम वाटिका का हो सकता है। जब से महारानी का यहाँ आगमन हुआ है तब से वाटिका उखड़ी-उखड़ी रह रही है। महारानी के पास रहना उसे अच्छा नहीं लगता था और जब महारानी बुलाती थीं तो ऊपर से तो वह सभी शिष्टाचार निभाती थी किन्तु चेहरे पर उमंग का कोई भाव नहीं आता था।

रथ-प्रतियोगिता के समय जब महारानी ने वाटिका से हाथ लम्बे करने को कहा था, तब भी वाटिका के चेहरे पर सफेदी झलकी थी और जब महारानी ने उसका गाल थपथपाया था तब भी उसका चेहरा सफेद पड़ गया था।

अब तो द्वैपायन को कई ऐसे प्रसंग याद आने लगे जब महारानी की

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उपस्थिति में वाटिका के चेहरे पर अप्रसन्नता व्यक्त हुई थी।

उन्हें याद आया कि महारानी उनके साथ वैसे ही मुक्त भाव से यहाँ भी व्यवहार किया करती हैं जैसे वे कल्पी में किया करती थीं। वे मछलीमारों के समाज में पली थीं। इसलिए उनका स्वभाव आर्यकन्याओं से कुछ अधिक स्वतन्त्रतापूर्वक आचरण करने का था। जनता को उनका यह स्वभाव प्रिय था किन्तु कुछ सरदारों को यह पसन्द नहीं था। सामान्य जन के साथ यों सहज हिल-मिल जाना कुल-गौरव की सीमा-रेखा बनानेवालों को भला कब पसन्द होता?

अब स्थिति साफ हो गई। उसकी माँ रूपवती हैं। उनकी मुस्कराहट मोहक है। उनके पास जो भी आता वही उनके आकर्षण में खो जाता, हालाँकि दूसरों से उनका यों मुक्तभाव से व्यवहार करना उन्हें अच्छा नहीं लगता था।

वाटिका ने ही यह प्रयोग किया होगा, इसमें अब शंका का कोई स्थान नहीं था। महारानी उनके प्रति जो ममता रखती हैं, उसी ने वाटिका के हृदय में ईर्ष्या जगाई है।

'पात' के ये पत्ते भी महाअथर्वण के बाग से ही आए होंगे। द्वैपायन को याद आया कि जब से रथ प्रतियोगिता शुरू हुई तब से वाटिका कहीं दिखाई नहीं पड़ी थी।

महारानी उनसे प्रेम करती हैं यह मानने की मूर्खता वाटिका ने क्यों की? द्वैपायन को क्रोध चढ़ने लगा। एक बार तो उनके मन में आया कि वाटिका को खरी-खोटी सुनाएँ किन्तु फिर सोचा कि वाटिका की उनके प्रति अत्यधिक चाहत का ही यह परिणाम है कि वह सन्तुलन खो बैठी!

वाटिका पर गुस्सा करने का उन्हें अधिकार है भी नहीं। महारानी से अपने विचित्र सम्बन्धों का हाल उसे समझाया पड़ेगा। सौभाग्य से महारानी ने उस घेरे में प्रवेश नहीं किया था और उन्होंने भी अपने बिस्तर से पत्ते निकालकर फेंक दिए थे, इस कारण दोनों का कोई अहित नहीं हुआ।

महारानी को कोई हानि न हो और वाटिका का यह मूर्खतापूर्ण कार्य भी प्रकट न हो इसके लिए क्या उपाय किया जाए, इस पर द्वैप विचार करने लगे।

यदि वाटिका जान जाती है कि उसके द्वारा किया गया मन्त्र-प्रयोग मुझे ज्ञात हो गया है तो उसे दुख होगा। यदि मैं उस पर जादू-टोना करने का आरोप लगाता हूँ तो वह स्वीकार भी कर सकती है और अस्वीकार भी कर सकती है। लेकिन तब वह उन्हें या महारानी को कभी क्षमा नहीं कर सकेगी। जो भी हो, उसका अपराध लोगों पर प्रकट हो गया है, यह सूचना यदि वाटिका को मिल जाती है तो अपराध की ग्रन्थि उसके हृदय से जीवनभर नहीं जाएगी।

वह सोचते रहे, सोचते रहे। बड़ी कठिन स्थिति थी। महारानी से वह नहीं

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कह सकते थे कि उन पर जादू करने का काम किसने किया। यदि कहते हैं तो महारानी के मन में वाटिका के प्रति विपरीत भाव पैदा हो जाएगा, वह उनकी दृष्टि में गिर जाएगी। तो इसका हल क्या है?

वाटिका की रक्षा उन्हें करनी ही होगी। जब से समारोह शुरू हुआ तब से आज सत्रह दिन हो गए हैं, वह बिचारी उनके प्रति प्रेम के कारण ईर्ष्याग्नि में झुलस रही है। यह सोचते ही द्वैप का हृदय करुणा से छलक उठा। मुझे न तो वाटिका को असहाय अकेला छोड़ना चाहिए और न ऐसा कुछ करना चाहिए कि महारानी और वाटिका के स्नेह-सम्बन्धों में कोई संकट पैदा हो।

द्वैपायन खड़े हुए और अपने तथा वाटिका के गृहखंड के बीचवाले द्वार पर थपकी दी। वाटिका ने तत्काल पूछा, "कौन, स्वामीनाथ, आप हैं? आपको मुझसे क्या कोई काम है?"

"हाँ जाबालेया, कोई असाधारण घटना घट गई है, इसलिए मुझे तुम्हारी सलाह की जरूरत है।" द्वैपायन ने कहा।

वाटिका उसी क्षण उठ बैठी। अपने वस्त्रों को ठीक किया। द्वैपवाले खंड में आई। वह चिन्तित थी—उसके द्वारा किए गए मन्त्र-प्रयोग का पति को पता तो नहीं चला? तब तो वे उसे कभी क्षमा नहीं करेंगे।

"बैठो, जाबालेया, खड़ी क्यों हो?" द्वैपायन ने स्नेहपूर्वक कहा।

वाटिका सामने बैठ गई। वह यों बैठी थी मानो पति का क्रोध अब भभकने ही वाला है, किन्तु द्वैपायन शान्त व स्वस्थ थे।

"कुछ विचित्र घटना घटी है," द्वैपायन ने कहा, "उसका रहस्य जानने के लिए मैं तुम्हारी सहायता प्राप्त करना चाहता हूँ।"

"क्या हुआ?" वाटिका ने पूछा। जिस क्षण की उसे चिन्ता थी, लगा कि वह अब आ गया है।

"किसी ने महारानी पर मन्त्र-प्रयोग किया है। उनके बिस्तर के चारों ओर सफेद घेरा बनाया है और उनके बिस्तर के नीचे से पात के पत्ते मिले हैं। ये रहे वे पत्ते!"

द्वैपायन ने अपने स्वयं के बिस्तर से निकले पत्तों का उल्लेख जानबूझकर नहीं किया क्योंकि इससे शायद वाटिका आगे कोई अर्थ लगा लेती। इसलिए द्वैप ने अपने को बचाकर बात चलाना ज्यादा उचित समझा।

वाटिका उलझ गई। सिर उठाकर वह पति की ओर देख भी नहीं सकी। उसे भय हुआ कि यदि द्वैपायन को पता चल गया तो वह क्रुद्ध होंगे और सम्भव है उसका परित्याग भी कर दें।

फिर धीमी आवाज में द्वैपायन ने कहा, "मैं पात के पत्ते पहचानता हूँ। पिता

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

के साथ मैं पैदल यात्रा किया करता था तब मैं कई बार इन पत्तों को बीन लिया करता था। ऐसा लगता है कि ये पत्ते तुम्हारे बगीचे से लाए गए हैं। जिसने यह काम किया है, उसका हम पता लगा लेंगे। इस बीच महारानी का कोई अहित न हो जाए इसका हमें प्रबन्ध करना है। तुम ये पत्ते अपने पिताजी को दिखाना। शायद वे इनके सम्बन्ध में हमें कोई उपयोगी सूचना दे सकें।''

वाटिका ने काँपते हाथों से पत्ते पकड़े।

वाटिका ऐसी स्थिति में नहीं थी कि एक भी शब्द बोल सके। एक बार तो मन हुआ कि चिल्लाकर कहे कि महारानी तुमसे प्रेम करती हैं इसलिए मुझे इस जादू-टोने का सहारा लेना पड़ा। लेकिन ईर्ष्या की इस धधकती आग को पति के समक्ष प्रकट करने का उसे साहस नहीं हुआ क्योंकि पति का उसे प्रगाढ़ विश्वास प्राप्त था।

''जाबालेया, तुम सहायता करो तो हम इस षड्यन्त्र का पता लगा सकते हैं। कौन जाने यही व्यक्ति किसी और तरीके से भी महारानी को हानि पहुँचा दे। इसलिए महारानी की रक्षा के लिए अब तुम्हें महारानी के साथ ही रहना होगा और यह ध्यान रखना होगा कि यातु-विद्या से उन्हें कोई हानि न हो।'' द्वैपायन ने कहा।

वाटिका का फिर मन हुआ कि ना कर दे और कहे, 'नहीं करूँगी मैं यह काम, मैं उस स्त्री की ओर देखना भी नहीं चाहती।' लेकिन जिस स्नेहपूर्ण ढंग से उसमें इतना गहरा विश्वास व्यक्त किया गया था, उससे वह अपने मन की बात बाहर नहीं ला सकी। उसने नजरें नीची कर लीं और मात्र इतना ही कहा, ''ठीक है।''

''नहीं जाबालेया, इतना ही काफी नहीं है। कल सुबह हम उनके पास चलेंगे और मैं उनसे अनुरोध करूँगा कि वे तुम्हें हरदम साथ रहने की अनुमति प्रदान करें।''

''हरदम साथ? क्या करूँगी मैं?'' वह फट पड़ी।

''जाबालि की पुत्री क्या करेगी? यातु-विद्या (जादूगरी) के अनिष्टकारी प्रभाव से उन्हें बचाएगी। जादू का प्रभाव समाप्त करनेवाला अथर्वण मन्त्र तुम जानती हो। तुम अपनी मन्त्र-विद्या की सहायता से उन्हें बचाओगी।''

अब वाटिका चुप नहीं रह सकी, बोली, ''तुम्हें महारानी की इतनी चिन्ता क्यों लगी है? बीमार तो सम्राट हैं, महारानी बीमार नहीं हैं।''

''जाबालेया, किसी भी विवाहित पुरुष को अपनी माता की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए और किसी विवाहित महिला को अपने पति और उसकी माता के बीच नहीं आना चाहिए। ऐसी मुनि पराशर की आज्ञा है।'' द्वैपायन ने कहा।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वाटिका को अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ। उसने आश्चर्य के साथ कहा, "माता! महारानी कोई तुम्हारी माता थोड़े ही हैं?"

"हैं, जाबालेया, हैं। उन्होंने ही मुझे जन्म दिया है। उन्हीं ने मुझे पाल-पोसकर बड़ा किया है। उनका जीवन मुझे ही समर्पित था। मेरे लाभ के लिए ही उन्होंने मुझे मेरे पिता को सौंपा था। सम्राट से उनका विवाह हुआ, यह उससे पहले की बात है।"

"उस समय वे क्या थीं?"

"मछुआरे की कन्या।"

वाटिका को भृगु और अंगिरस जैसे ऋषियों की वंशज होने का गौरव था। उसे लगा कि वह मूर्च्छित हो जाएगी लेकिन होंठ भींचकर उसने अपने-आपको सँभाला।

द्वैपायन ने आगे कहा, "पिछले पन्द्रह साल से मैंने उन्हें देखा नहीं था। हस्तिनापुर में ही मेरी इनसे दुबारा भेंट हुई। शायद महाअथर्वण के संकल्प का ही यह फल था कि दैवयोग से यह सम्भव हो गया।"

वाटिका का सिर चकराने लगा। उसने घबराई दृष्टि से पति की ओर देखा और दोनों हाथों से सिर थाम लिया।

"तुम जब महारानी के सम्पर्क में आओगी, तब तुम्हें ज्ञात होगा कि वे कितनी उदार, कितनी महान हैं। अभी उन्हें किसी शत्रु का भय है इसलिए तुम उनकी रखवाली करना। यदि उन्हें कुछ हो गया तो यह एक भीषण पाप होगा।" द्वैपायन ने कहा और थोड़ा ठहरकर फिर बोले, "वे मुझे जितना प्यार करती हैं उतना प्यार कोई भी माँ अपने पुत्र को नहीं करती होगी और तुम्हें अपनी पुत्री के रूप में पाने को अत्यन्त व्याकुल हैं।"

वाटिका दिग्मूढ़ हो गई। उसकी आँखों से अश्रुधारा बहने लगी। "हे भृगु, हे अंगिरस! मैंने यह क्या कर डाला?" कहकर वह सुबकने लगी।

द्वैपायन उठे, पानी का लोटा भर लाए और उसके होंठों से लगाकर बोले, "पानी पी लो जाबालेया और अपने कक्ष में जाकर अब सो जाओ। सवेरे हम जल्दी उठेंगे और महारानी से मिलने जाएँगे। वे यह जानकर बहुत खुशी होंगी कि उनका पुत्र और पुत्रवधू उनकी रक्षा को तत्पर हैं।"

वाटिका को रात-भर चैन नहीं आया। अपनी मूर्खता पर वह सारी रात पछताती रही। अपने पति के चरित्र पर सन्देह करके उसने भारी अन्याय किया था। उसे यह तो ज्ञात नहीं हो सका कि उसने अपने पति के बिछौने पर जो पात के पत्ते डाले थे वे उसके पति ने देखे या नहीं, किन्तु जिस कुशलता से उसके पति ने उसका बचाव किया है उससे वह उनके प्रति कृतज्ञता से भर उठी।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दूसरे दिन 'वाजपेय' यज्ञ की पूर्णाहुति का समारोह था जिसे स्वर्गारोहण कहा जाता है।

सवेरा होने पर द्वैपायन और वाटिका महारानी के शिविर में गए। महारानी की दासियाँ उनका श्रृंगार कर रही थीं। उन्होंने एक दासी को बाहर भेजा जो द्वैपायन और वाटिका को उनके कक्ष में ले गई।

महारानी ने स्नेहपूर्ण मुस्कान से उन दोनों का स्वागत किया और जब उन्होंने उनका चरण-स्पर्श किया तो आशीर्वाद दिया। वाटिका, महारानी के इस स्नेहपूर्ण व्यवहार से इतनी अभिभूत हुई कि अपने दुष्कृत्य के लिए मन-ही-मन अपने-आपको कोसने लगी।

संकेत से महारानी ने दावी को छोड़ शेष सभी दासियों को बाहर भेज दिया।

फिर वह द्वैपायन की ओर मुड़ीं और मन्द स्वर में पूछा, "कृष्ण, मुझ पर मन्त्र-तन्त्र करनेवाले का कुछ पता चला?"

"नहीं, यह कार्य मैंने जाबालेया को सौंप दिया है। वह अपने पिता महाअथर्वण द्वारा प्रयोग किए जानेवाले सभी मन्त्र-तन्त्र जानती है। आपको पता ही है कि यह स्वयं भी अथर्वण श्रोत्रिय है। अब यह आपके पास ही रहेगी और आपको किसी भी मन्त्र-तन्त्र से आँच नहीं आने देगी।" द्वैपायन ने कहा।

महारानी ने मुस्कराकर वाटिका की ओर देखा और पूछा, "रहोगी?"

वाटिका ने सिर हिलाकर हाँ कहा।

"मुझे इसकी खुशी है। दिन-भर भीड़ से घिरी रहती हूँ तब मैं बड़ी परेशान रहती हूँ। तुम ध्यान रखो और देखो कि कौन मेरे खिलाफ षड्यन्त्र कर रहा है, कौन यह मन्त्र-प्रयोग कर रहा है? यदि मैंने अनजाने में किसी का अहित किया हो तो मुझे उससे क्षमा माँगनी है।"

यह सुनते ही वाटिका के नेत्रों से अश्रुधारा बह चली।

"जाबालेया!" महारानी ने वाटिका की पीठ पर स्नेह से हाथ रखा और "कृष्ण!" इतना कहकर सहज उपहास के स्वर में बोलीं, "अरे, मुझसे भूल हो गई। मुझे तो तुझे 'बालमुनि' कहकर पुकारना चाहिए, है न? लेकिन तू सौभाग्यशाली है कि तुझे इतनी सुशील पत्नी मिली है।"

वाटिका महारानी के ममत्वपूर्ण व्यवहार से विगलित हो गई और उठकर उनके चरणों में गिर पड़ी। उसके मुख से इतना ही निकला, 'माता!"

महारानी ने झुककर उसे उठाया और गले से लगा लिया, "मुझे पुत्री की आवश्यकता थी और भगवान ने मुझे पुत्री दे दी।"

समुचित मन्त्रोच्चार के साथ सारा 'वाजपेय' यज्ञ का विधि-विधान पूरा हुआ, तब सम्राट आचार्य विभूति का सहारा लेकर बलिवेदी की ओर बढ़े। महारानी भी

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वाटिका के कन्धे पर हाथ रखकर गर्वित मुद्रा से वेदी पर चढ़ीं।

द्वैपायन यह देखकर प्रसन्न हुए कि वाटिका अपनी भूल का मार्जन कर रही है। वह वेदी से नीचे ही खड़ी रही–सीढ़ियों के पास ताकि आवश्यकता हो तो महारानी की सहायता कर सके।

महाराजा और महारानी वेदी पर बने मण्डप में गए और जब तक मन्त्रोच्चार होता रहा तब तक वहीं रहे, फिर विराट जनसमुदाय ने जयजयकार किया, 'भरतश्रेष्ठ और महादेवी की जय हो!' पहले अध्वर्यु आचार्य विभूति वेदी से उतरे और तब उनके बाद महाराजा और महारानी।

बचा हुआ सोमरस पहले श्रोत्रियों ने लिया, बाद में प्रसादस्वरूप अन्य सभी को बाँट दिया गया।

इसके बाद महाराजा और महारानी ने सुगन्धित जल में स्नान किया। स्नान हुआ तब भी श्रोत्रियों ने मन्त्रोच्चार किया। अब वे मनुष्य नहीं रहे थे, स्वर्गारोहण कर देवता बन गए थे।

स्नान करने के बाद वे यज्ञवेदी के सामने स्थित आसन पर बैठे। चक्रवर्ती हो जाने के प्रतीकस्वरूप उनके सिर पर श्वेत छत्र खड़ा किया गया। मुनि होने के कारण महाअथर्वण को छोड़ शेष सभी लोगों ने–राजाओं, यूथपों तथा सभी श्रोत्रियों ने, उनका चरण-स्पर्श किया। महाअथर्वण ने उन्हें आशीर्वाद दिया। अपार जनसमूह ने जय-जयकार की–'भरतश्रेष्ठ की जय हो!'

द्वैपायन देख रहे थे कि महारानी और वाटिका के चेहरों पर कितनी प्रसन्नता के भाव हिलोरें ले रहे थे।

इस समारोह का सबसे महत्त्वपूर्ण क्षण वह था जब राजकुमार गांगेय ने सम्राट की यह घोषणा पढ़कर सुनाई–

''भरतश्रेष्ठ ने प्रतिज्ञा ली है कि जहाँ-जहाँ धर्ममय जीवन का केन्द्र रहेगा उस आश्रम की रक्षा करने का दायित्व कुरुओं का होगा। सरल और श्रुतिपरायण जीवनयापन करनेवाले प्रत्येक श्रोत्रिय को कुरुओं द्वारा पूर्ण संरक्षण दिया जाएगा। अपने पति व परिवार से निष्ठापूर्वक प्रेम व स्नेह रखनेवाली प्रत्येक स्त्री की रक्षा का दायित्व भी कुरुओं का होगा। सभी वस्तुओं की जननी गौमाता की भी कुरु रक्षा करेंगे। और यह सब इसलिए किया जाएगा ताकि धर्म की स्थापना हो, धर्म का प्रसार हो।

''भरतश्रेष्ठ ने मुझे यह घोषणा करने का भी आदेश दिया है कि पराशर आश्रम में महामुनि द्वैपायन जो बारह वर्ष का श्रौतसत्र प्रारम्भ करने का विचार कर रहे हैं उसमें सम्राट पूरी सहायता करेंगे ताकि मानव जाति को श्रुति की प्रेरणा मिले और प्रभु की कृपा बनी रहे।''

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

बिजली कड़कती है

वाजपेय यज्ञ पूर्णतया सफल हो गया था। भारतवर्ष के उच्च स्तर के सभी प्रतिष्ठित श्रोत्रिय इस यज्ञ के कारण एकत्रित हुए थे। इसी यज्ञ के कारण सम्राट शान्तनु की प्रतिष्ठा अन्य राजाओं के बीच ऊँची उठी थी। युद्ध के दिनों में आर्यों की जो चेतना मन्द पड़ गई थी उसमें अब पुनः नया तेज आया था और सबसे बड़ी बात यह हुई थी कि जो स्थान 'भेड़ियों का क्षेत्र' कहा जाता था वह अब 'धर्म-क्षेत्र' का गौरव प्राप्त करने लगा।

दूसरे दिन से आगन्तुक बिखरने लगे। आचार्य विभूति ने विधिपूर्वक 'उत्थापन' किया अर्थात यज्ञ के समापन की क्रिया पूरी की और हस्तिनापुर के लिए प्रस्थान किया। उन्हें इस बात का आनन्द था कि सभी श्रोत्रियों में अग्रणी व्यक्ति के रूप में उनकी प्रतिष्ठा बढ़ी है और उनका स्तर ऊँचा उठा है।

द्वैपायन ने सहज रूप से और सभी की अनुमति से इस यज्ञ के दौरान मुनि का पद प्राप्त कर लिया था। वाजपेय यज्ञ में जितने भी राजा और यूथपति आए थे, इसी कारण वे भी जाने से पहले द्वैपायन से विदा लेने आए। द्वैपायन से विदा लिये बगैर कोई भी अपने देश लौटने के लिए नहीं चला।

मन्त्री कुणिक ने घोषणा कर दी कि दो दिन बाद निःशुल्क भोजनवाला अन्न-क्षेत्र बन्द कर दिया जाएगा। परन्तु सम्राट की इच्छा के अनुसार उन्होंने यह भी प्रबन्ध कर लिया कि पराशर आश्रम को अनाज आदि मिलता रहेगा। पराशर आश्रम में 12 वर्ष का श्रोत्र-सत्र प्रारम्भ हो रहा था और श्रुति के अध्ययन और अध्यापन के लिए इस सत्र में अनेक आचार्यों ने अपने शिष्योंसहित सम्मिलित होना तय किया था। द्वैपायन की आशीष पाकर पशु-पालक, वनवासी, व्यापारी, यात्री आदि भी बिखरने लगे।

सबसे अन्त में जब बीमार और अपंग लोगों का झुंड बालमुनि को प्रणाम करने आया तब वातावरण अपार करुणा और स्नेह से परिपूर्ण हो उठा। जो बीमार थे उन्होंने हाथ फैला-फैलाकर सहायता की याचना की। प्रार्थना की कि वे किसी चमत्कारी शक्ति से उन्हें स्वस्थ बना दें। बालमुनि ने कहा, ''मेरे पास ऐसी कोई शक्ति नहीं है। यदि कोई शक्ति है तो मात्र श्रुति की ही शक्ति है और श्रद्धालु मानव को इससे अचूक सहायता मिलती है।''

बालमुनि ने सभी बीमारों को और उनके परिवारवालों को दूध का प्रसाद दिया और दूध के कटोरे में चमत्कारी वनस्पति के कुछ पत्ते मन्त्रोच्चार करते हुए डाले। मुनि प्रत्येक बीमार के पास गए, प्रत्येक से उन्होंने उसका दुख पूछा, कष्टों तथा अन्य समस्याओं की चर्चा की और कहा, ''श्रुति में श्रद्धा रखो, आपके समस्त दुख

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दूर हो जाएँगे।''

बालक तो द्वैपायन को छोड़ते ही नहीं थे। द्वैपायन ने एक बार इन बालकों से कहा था, ''मेरी तो इस यमुना नदी की प्रत्येक मछली से दोस्ती है। मैं उनकी भाषा जानता हूँ।'' एक बालक आगे बढ़कर आया और पूछा, ''आप मुझे वह भाषा सिखाओगे?'' द्वैपायन ने उत्तर दिया, ''तुम दुबारा आओगे तब मैं तुम्हें सिखाऊँगा पर अभी तो तुम अपने माता-पिता के साथ अपने घर जाओ।''

द्वैपायन उनको आश्रम के दरवाजे तक छोड़ने गए। विदाई के ये क्षण मार्मिक थे। प्रत्येक व्यक्ति की आँखों में आँसू थे, लेकिन प्रत्येक के हृदय में खुशी भी थी क्योंकि द्वैपायन ने उन सबको 'आशीर्वाद' के रूप में एक मूल्यवान उपहार दिया था।

इस अवसर पर आए हुए श्रोत्रियों ने भी बालमुनि से विदा ली, आचार्यगण भी अपने-अपने आश्रमों की ओर चल पड़े लेकिन जाने से पूर्व उन्होंने द्वैपायन से वचन लिया कि पराशर मुनि के समान वे भी उनके आश्रमों में समय-समय पर आते रहेंगे।

उन सबको विदा करते समय द्वैपायन ने उन्हें अन्तिम चेतावनी देते हुए कहा, ''श्रुति आर्यावर्त में धर्ममय जीवन की प्रेरणा तभी दे सकेगी जब श्रोत्रियगण तप और संयम की साधना करेंगे। तपस्वी और संयमी बने बिना श्रुति से कोई सफलता, कोई उपलब्धि नहीं मिल सकती।''

फिर उन्होंने शुभकामना के रूप में मन्त्रपाठ द्वारा प्रार्थना की।

द्वैपायन, गौतम, पैल और सुमन्तु ने इस विराट आश्रम के जीवन को व्यवस्थित किया। गौतम आश्रम के आचार्य के रूप में काम करने लगे—यद्यपि आश्रम की समस्त प्रवृत्तियों का मार्गदर्शन बालमुनि ही किया करते थे। गौतम पराशर गोत्र के मुखिया थे, और बालमुनि उनके मुख्य परामर्शदाता। बालमुनि ने पैल को ऋग्वेद के अध्यापन का काम सौंपा, गौतम ने सामवेद के अध्यापक का काम लिया और सुमन्तु को अथर्वण विद्या के अध्यापन का काम दिया गया।

बालमुनि के ज्ञान और विद्या से प्रभावित होकर अनेक युवा श्रोत्रिय उस क्षेत्र में उनके काम में सहयोग देने को आने लगे। इस प्रकार आनेवाले लोगों के अध्ययन और अनुशासन, ज्ञान और कर्म, के स्तर को ऊँचा उठाने का उत्तरदायित्व भी द्वैपायन ने सँभाला।

द्वैपायन ने इस बात का ध्यान रखा कि धर्म-क्षेत्र का वह स्वरूप बने जो उनके पिताजी सोचा करते थे।

सवेरे जैसे ही प्रभात का तारा उगता कि द्वैपायन उठकर महान अथर्वण के आश्रम में जाते और अथर्वण विद्या सीखते। वहाँ से वापस आकर बीमारों की

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सार-सँभाल करते और बालकों को भोजन करवाते। दोपहर में भोजन के बाद वे आचार्य के पास बैठने और श्रुति के उच्चारण में स्वर-भार अर्थात् बलाघात के विषय में चर्चा करते। कभी-कभी वे सोम याग के विषय में भी बातचीत, विचार-विमर्श किया करते थे, जिसमें सोम नाम की चमत्कारी वनस्पति का प्रमुख स्थान हुआ करता था और जो अन्य यज्ञों के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए अपनाई जाती थी।

आश्रम की महिलाएँ गायों को दुहतीं, अनाज साफ करतीं, भोजन तैयार करतीं, बालकों को सँभालतीं, पति के प्रति आस्था व निष्ठा की प्रतिज्ञा का पालन करतीं और नाना गीत गातीं। लड़के जब आठ वर्ष के हो जाते तब उनका यज्ञोपवीत किया जाता और ब्रह्मचारी के रूप में श्रुति-अभ्यास शुरू कर देते।

जब सभी प्रकार की कसौटियों में वे उत्तीर्ण हो जाते और पूरी दक्षता धारण कर लेते तब उन्हें आचार्य पद प्रदान करके अपना स्वयं का आश्रम स्थापित करने के लिए भेज दिया जाता था, ताकि वे दूर-दूर तक धर्म और तप की महिमा का प्रसार कर सकें।

इस बीच हस्तिनापुर में परिस्थिति पलटा खाने लगी। वाजपेय यज्ञ को हुए ठीक 17 महीने हुए थे, जब सम्राट शान्तनु पितृलोक को प्राप्त हो गए। द्वैपायन को अपनी माँ की चिन्ता बराबर बनी रही तथा वह समय-समय पर हस्तिनापुर जाते रहते थे, यद्यपि हस्तिनापुर से लौटने के बाद श्रुति-सत्र में पुनः सम्मिलित होने के लिए उनको प्रायश्चित भी करना पड़ता था।

उनको इस बात की विशेष खुशी थी कि युवराज गांगेय अपने क्षेत्र के सभी राक्षसों, डाकुओं और जंगली जानवरों से प्रजा-रक्षा का पूरी निष्ठा से प्रयत्न कर रहे थे, श्रोत्रियों तथा पतिव्रता स्त्रियों को भी वे पूरा सम्मान दे रहे थे और उनकी रक्षा के लिए सदैव तैयार रहते थे।

सम्राट के देहावसान के बाद चित्रांगद को राजसिंहासन पर बैठाया गया, लेकिन कुछ ही महीनों बाद एक लड़ाई में उसकी मृत्यु हो गई।

चित्रांगद की मृत्यु से माता सत्यवती को फिर आघात लगा। चित्रांगद के बाद विचित्रवीर्य का सम्राट-पद पर अभिषेक हुआ, यद्यपि पूरे हस्तिनापुर में विवाद का वातावरण छाया हुआ था। सौभाग्य से राजकुमार गांगेय के नेतृत्व में कुरुओं की शक्ति सुदृढ़ रही और उन्होंने दृढ़ अनुशासन के साथ व्यवस्था बनाए रखी।

इन संकटपूर्ण दिनों में वाटिका प्रायः माता सत्यवती के पास हस्तिनापुर में ही रहा करती थी। अपने नन्हे पुत्र शुक को अपनी बुआ ऊर्वी के पास छोड़ आया करती थी। कुछ सप्ताह बाद धर्मक्षेत्र आती, तब अपने पति को हस्तिनापुर के समाचार सुनाया करती थी।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सत्यवती के दुख का पार नहीं था। वे बराबर यह महसूस करती रहती थीं कि कुरुओं और हस्तिनापुर पर कोई-न-कोई महान संकट आनेवाला है। विचित्रवीर्य का स्वास्थ्य भी ठीक नहीं रहता था। यदि उसे कुछ हो गया तो भरत-राजवंश समूल समाप्त हो जाएगा और कुरुओं की शक्ति क्षीण हो जाएगी। माता सत्यवती को हरदम यही चिन्ता सताया करती थी।

घर-घर आजकल यह चर्चा भी तेजी से बढ़ती जा रही थी कि बालमुनि सत्यवती से उत्पन्न मुनि पराशर का पुत्र है, लेकिन इस चर्चा से महारानी और बालमुनि दोनों के प्रति लोगों के सम्मान में कोई कमी नहीं आई।

सत्यवती के प्रति स्नेह और सम्मान का कारण यह था कि वे हरेक के प्रति स्वस्थ दृष्टिवाली, परम उदार, स्नेहशीला और हर संकट में मदद करने को तत्पर रहनेवाली स्त्री थीं। द्वैपायन के प्रति श्रद्धा और सम्मान का कारण यह था कि वे प्रकांड पंडित थे और श्रुति पर उनका पूरा अधिकार था। साथ ही प्रत्येक के कल्याण की चिन्ता करने के कारण, हर बीमार को स्वस्थ बनाने की अद्भुत क्षमता के कारण, छोटे-छोटे बच्चों को भोजन कराने की प्रतिज्ञा के कारण और इन सबके ऊपर उस चमत्कारी शक्ति के कारण जिससे उन्होंने सम्राट शान्तनु को नया जीवन प्रदान किया था, लोग उनका बहुत आदर करते थे। विचित्रवीर्य का स्वास्थ्य कमजोर था और अस्त्र-शस्त्र चलाने में भी वह कोई बहुत निपुण नहीं था। स्वभाव से अकसर चिड़चिड़ा रहता था। कानाफूसी से अन्य राजाओं के राजप्रासादों में भी यह समाचार पहुँच गया था कि उसकी माता का वंश कैसा है। इसलिए उसे कोई भी राजा अपनी पुत्री देने को तैयार नहीं था।

राजमाता को इस परिस्थिति ने घोर नैराश्य में डाल दिया, लेकिन राजकुमार गांगेय ने एक हल निकाल ही लिया।

काशीराज अपनी तीन पुत्रियों—अम्बा, अम्बिका, अम्बालिका के स्वयंवर की योजना बना रहा था। राजकुमार गांगेय ने एक मजबूत सैन्यदल लेकर काशीराज को पराजित किया और उसकी तीन पुत्रियों का अपहरण कर लाए।

कुरुसत्ता की यह विजय ही थी, लेकिन सत्यवती का आत्मविश्वास अब डगमगाने लगा था क्योंकि जिस कुरुवंश का प्रभाव बढ़ाने का उन्होंने आज तक प्रयत्न किया था, अपना पूरा सहयोग दिया था और जो वर्षों के धैर्यशील प्रयत्न से निर्मित हुआ था, अब उनको अन्दर-ही-अन्दर लगने लगा था कि अब वह जरूर टूटेगा।

वाटिका विचित्रवीर्य के विवाह में भाग लेने के लिए हस्तिनापुर गई, द्वैपायन नहीं जा सके क्योंकि श्रुति-सत्र में वे इतने व्यस्त थे कि वहाँ से हिलना सम्भव नहीं हुआ। कुछ सप्ताह बाद जब द्वैपायन और आश्रम के बड़े-बड़े आचार्य

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मन्त्रोच्चार कर रहे थे तब उन्हें पहियों की खड़खड़ाहट और घोड़ों की चाप सुनाई दी। मन्त्रोच्चार बन्द हो गया। किसी अनहोनी घटना की आशंका से वातावरण में सन्नाटा छा गया।

पहला रथ आश्रम के द्वार पर आया तो उसमें से मन्त्री कौंडिन्य उतरे और जहाँ द्वैपायन बैठे थे वहाँ तेज कदमों से पहुँचे। राजमन्त्री ने कहा, ''माता सत्यवती आ रही हैं!''

द्वैपायन चौंक उठे और तेजी से कदम बढ़ाते हुए माँ का स्वागत करने आश्रम के द्वार पर पहुँच गए। उनके पीछे-पीछे सभी आचार्य भी आ पहुँचे।

तीसरे रथ में लटके मृगछाला के पर्दे हटे तो उसमें से दावी नीचे उतरी और उसने हाथ लम्बे किए जिससे माता सत्यवती रथ से बाहर आईं। द्वैपायन का हृदय आशंकाओं से डूबने-उतारने लगा। मन में सोचा कि कोई-न-कोई गम्भीर घटना जरूर घटी है, जिससे माता को ऐसे असाधारण ढंग से धर्म-क्षेत्र में आना पड़ा है। उन्होंने माता के समक्ष धरती पर लेटकर दंडवत् प्रणाम किया। माता ने पीठ पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। सत्यवती विजय के क्षणों में जितनी सुन्दर दिखाई दिया करती थीं, विषाद के क्षणों में भी वे उतनी ही सुन्दर दिखाई दे रही थीं। सिर पर राजमुकुट होने पर वे जितनी भव्य लगती थीं उतनी ही भव्य वे आज आभूषणों के बिना, साधारण वेष में भी लग रही थीं। हीरे-जवाहरातों से जड़े वस्त्राभूषणों से आच्छादित होने पर वह जितनी जगमगाती थीं, शायद उससे भी अधिक आकर्षक आज वह काले वस्त्रों में लिपटी हुई लग रही थीं। चंचलता के स्थान पर उनके व्यक्तित्व में आज गरिमामय प्रौढ़ता अवश्य व्यक्त हो रही थी। चेहरे पर अपार विषाद की छाया अंकित थी।

सभी श्रोत्रियों ने उन्हें आशीर्वाद दिया और उसके बाद द्वैपायन माता को अपनी कुटिया पर ले गए। दावी के सिवा जब समस्त सेवकगण कुटिया से चले गए, तब वे द्वैपायन के पास मृगछाला पर बैठीं।

''माता, जाबालि की पुत्री कहाँ है?'' द्वैपायन ने अधीरता के साथ पूछा।

''मैंने उसे अम्बा के साथ भेजा है।''

सत्यवती की आँखों में अचानक आँसू छलक आए। उनके होंठ काँपने लगे। काँपते होंठों से बोलीं, ''इन्द्र के वज्र के समान हम पर संकट टूट पड़ा है, कृष्ण!''

''वज्र के समान?'' द्वैपायन ने पूछा।

''हाँ,'' सुबकती हुई माता ने उत्तर दिया, ''यह वज्र मुझ पर, गांगेय पर, हमारे पूरे परिवार पर, कुरुओं पर और एक प्रकार से देखें तो सम्पूर्ण धर्म पर टूट पड़ा है।'' द्वैपायन को बात का कोई अर्थ समझ नहीं आया। पूछा, ''लेकिन यह है क्या? मुझे तो ऐसा समाचार मिला था कि काशीराज की कन्याओं के साथ

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विचित्रवीर्य का विवाह करके तुम सुखी हो।"

"नहीं, यह विवाह तो एक भयंकर कांड बन चुका है।" महारानी ने कहा और सुबक-सुबककर रोने लगीं।

भगवान परशुराम का सन्देश

"अब थोड़ी छाछ पी लीजिए।" द्वैपायन ने मिट्टी के पात्र में कुछ छाछ डालकर माता को दी।

थोड़ी देर बाद सत्यवती स्वस्थ हुईं तो बोलीं, "जैसा सोचा था वैसा हुआ नहीं। तीन राजकुमारियों में से केवल दो ने ही विचित्रवीर्य से विवाह किया।"

"क्यों? तीसरी को क्या हुआ?" द्वैपायन ने पूछा।

"सबसे जो बड़ी थी, अम्बा, उसने विवाह करने से मना कर दिया। उसने कहा कि वह तो मन से राजा शाल्व का वरण कर चुकी है। स्वयंवर में वह उसे ही वरमाला पहनानेवाली थी, पर गांगेय ने उसका अपहरण करके उसका जीवन नष्ट कर दिया।"

महारानी ने आँसू पोंछे। पात्र से छाछ पी। फिर बोलीं, "गांगेय तो सदा से ही उदार हृदय रहा है। अम्बा द्वारा लिये गए निर्णय के औचत्य को उसने स्वीकार किया। अम्बा को उसने शाल्व के पास ऐसे भिजवा दिया मानो वह कुरु-कन्या हो। दूल्हे के लिए उपहार लेकर मन्त्री कुणिक उसके साथ गया। मेरे अनुरोध पर वाटिका भी अम्बा के साथ गई।"

"फिर क्या हुआ?" द्वैपायन ने पूछा।

माता सत्यवती ने माथा ठोंककर कहा, "हे भगवान!" उनके चेहरे पर थकान और निराशा के भाव उभर आए थे। बोलीं, "शाल्व ने अम्बा के साथ विवाह करने से इनकार कर दिया। उसने कहा कि इतने लोगों के सामने गांगेय ने उसे हराकर अम्बा को जीता है तो वह भी क्षत्रिय है, अब भेंट रूप में वह उसे स्वीकार करे यह उचित नहीं है।"

"उसके बाद क्या हुआ?"

"उसके बाद तो एक-पर-एक कई विपत्तियाँ आती चली गईं।" माता ने कहा। कुछ देर चुप रहकर वह फिर बोलीं, "अम्बा अत्यन्त क्रुद्ध होकर गांगेय के पास लौटी और उससे कहा कि तुम्हीं ने मेरा जीवन नष्ट किया है, अब तुम्हीं मुझसे विवाह करके मेरा उद्धार करो।"

"हे ईश्वर!" द्वैपायन ने आश्चर्य से उसाँस भरी।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"गांगेय ने अम्बा की बात पूरे ध्यान से सुनी। फिर उसको समझाया कि मैंने विवाह न करने का व्रत लिया है, इसलिए उचित यही होगा कि तुम विचित्रवीर्य से विवाह कर लो या कोई दूसरा पति ढूँढ़ लो।"

माता की आँखों से अश्रुधारा बह रही थी। उन्होंने कहकर आँसू पोंछे, फिर आगे कहा, "मैंने भी उससे कहा कि मेरी पुत्री के समान वह मेरे साथ हस्तिनापुर में रहे। एक राजकुमारी के समान पूरे मान-सम्मान के साथ उसे रखा जाएगा और उसी की पसन्द के किसी राजकुमार के साथ उसका ब्याह कर दिया जाएगा।"

"नहीं मानी वह?"

"नहीं, वह स्त्री नहीं थी। साक्षात् ज्वालामुखी थी। मुझ पर और गांगेय पर आग बरसाती रही। उसका एक-एक शब्द अंगारे के समान था।"

थोड़ी देर माता चुप रहीं, फिर कहने लगीं, "उसने माँग की कि उसको उसके नाना होत्रवाहन के पास हिमालय भेज दिया जाए। उसने यह भी कहा कि या तो गांगेय का विवाह उसके साथ कर दिया जाए अन्यथा फिर गांगेय को धरती पर जीवित देखना कठिन होगा।"

"कैसी स्त्री!" द्वैपायन ने विस्मय व्यक्त किया और पूछा, "फिर आपने उसे उसके नाना के पास भेजा?"

माता ने लम्बी साँस खींचकर कहा, "इसके सिवा दूसरा कोई उपाय भी नहीं था।"

"मन्त्री कुणिक और वाटिका भी उसके साथ गए होंगे?" द्वैपायन ने पूछा।

माता ने उत्तर दिया, "हाँ, वाटिका द्वारा भेजा गया अन्तिम समाचार यही है कि ऋषि शैखावत्य के आश्रम में रह रहे हैं और नाना होत्रवाहन भी वहीं आ गए हैं। ऋषि और नाना दोनों उसे समझा रहे हैं कि वह अपनी हठ छोड़ दे।"

"वाटिका कब तक वापस आ जाएगी?"

"जल्दी ही आ जाएगी, लेकिन इस बीच परिस्थिति और भी अधिक बिगड़ गई है।" माता ने कहा और आँखों से बहते आँसुओं को पल्ले से पोंछा।

"पिछले सप्ताह भगवान परशुराम का शिष्य अकृतवर्ण उनका सन्देश लेकर हस्तिनापुर आया था। शायद वे उस आश्रम में पहुँचे होंगे और अम्बा ने उनसे हस्तक्षेप करने को कहा होगा। तुम्हें पता ही है कि गांगेय परशुराम का शिष्य है!"

"भगवान परशुराम का सन्देश क्या था?"

"मुझे ज्यों-का-त्यों याद है, सन्देश यह था—मैं अमावस्या के बाद तीसरे दिन महाअथर्वण जाबालि के आश्रम में आऊँगा। तुम मुझसे आकर मिलना। या तो अम्बा से विवाह के लिए तैयार होकर आना या मुझसे युद्ध की तैयारी करके। इतना ही सन्देश भगवान परशुराम ने गांगेय को भेजा था।" कहकर माता फूट-फूटकर

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

रोने लगीं।

"गांगेय ने इस सन्देश का अर्थ ठीक से समझा कि नहीं?" द्वैपायन ने पूछा। उनके स्वर में चिन्ता थी।

"सन्देश का अर्थ बिलकुल स्पष्ट है—या तो गांगेय को जीवनभर अविवाहित रहने का अपना व्रत भंग करना है या गुरु से लड़कर प्राण विसर्जन कर देने हैं। दोनों में से कुछ भी हो कृष्ण, हस्तिनापुर का दुर्भाग्य आ गया है। हर स्थिति में हस्तिनापुर का विनाश होगा।" माता सत्यवती की आँखों में आँसू घुमड़ रहे थे। गला रुँध गया। उनसे आगे बोला न गया। हताश होकर फिर उन्होंने माथा ठोंक लिया।

"अब इससे अधिक कहने की जरूरत नहीं है, माता!" द्वैपायन ने कहा, "मैं जानता हूँ, यदि गांगेय को कुछ हो गया तो कुरुवंश आपस में लड़कर नष्ट हो जाएगा। विचित्र का स्वास्थ्य ठीक रहता नहीं, वह इस स्थिति को सँभाल नहीं सकेगा।"

"भविष्य अत्यन्त अन्धकारमय है।" माता ने कहा, "हम जिस धर्मराज्य की स्थापना का प्रयत्न कर रहे हैं, लगता है अब वह आगे नहीं बढ़ पाएगा।" माता ने आँसू पोंछे। थोड़ी देर चुप रहीं। ऊपर शून्य की ओर ताकती रहीं। फिर बोलीं, "कृष्ण, मुझे कई बार ऐसा लगता है कि मैं कल्पी में मछुआरे की लड़की के रूप में ही होती और तुझे पालने-पोसने में ही लगी रहती तो ठीक था। हम लोग यमुना माँ की पूजा करते और सुख से जीवन बिताते।"

द्वैपायन ने देखा कि माता सत्यवती को भूतकाल याद आने लगा है।

माता ने कहा, "कृष्ण, याद है मैं तुम्हें नदी में डुबकी मारना कैसे सिखाती थी? डर के कारण तुम डुबकी लगाते नहीं थे। तब एक दिन मैंने एक चाल चली। पानी में यों गिरी जैसे डूब रही होऊँ। बस, तुम्हारा भय भाग गया और मुझे बचाने के लिए तुम भी मेरे पीछे नदी में कूद गए। याद है तुम्हें वह सब?"

द्वैपायन के चेहरे पर सहज मुस्कान आ गई और उन्होंने कहा, "आप वही तो नहीं कर रही हैं अभी—डूबने का बहाना, ताकि मैं कूद पड़ूँ और आपको बचा लूँ?"

माँ-बेटा दोनों साथ-साथ हँस पड़े। लेकिन दूसरे ही क्षण दोनों के चेहरे पर फिर उदासी छा गई।

गम्भीर चिन्तन के स्वर में द्वैपायन ने कहा, "मैं जानता हूँ, गांगेय चला गया तो ब्रह्मतेज और क्षात्रतेज का कभी मेल नहीं होगा और दोनों के मिले बगैर धर्म का उद्धार असम्भव है।" थोड़ी देर ठहरकर उसने पूछा, "गांगेय वापस कब लौटेंगे?"

"गांगेय तीनेक दिन में यहाँ आ जाएगा। वापस जीवित लौटे न लौटे यही

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सोचकर नया प्रबन्ध करके को रुक गया होगा। वह शान्त और दृढ़ बन गया है आजकल। गांगेय जीवित नहीं रहता है तो हस्तिनापुर कैसे जीवित रहेगा?''

माँ-बेटे दोनों कुछ देर चुप बैठे रहे।

फिर द्वैपायन ने सिर उठाया और ऊपर की ओर देखते हुए कहा, ''माँ, तुम चिन्ता मत करो। सबकुछ भगवान सूर्य को सौंप दो। वही होगा जो उनकी इच्छा होगी।''

तीन दिन बाद राजकुमार गांगेय अपने युद्धवाले रथ में बैठकर आए। अपने-अपने रथों में बैठकर कुरुओं के कुछ महारथी भी उनके साथ आए। पराशर आश्रम के द्वार पर द्वैपायन ने राजकुमार का स्वागत किया और गांगेय ने उन्हें प्रणाम किया।

गांगेय का चेहरा गम्भीर था, होंठ दृढ़ता से भिंचे हुए थे और नेत्रों में ओज था।

द्वैपायन उन्हें उस कुटिया में ले गए जो उनके लिए तैयार की गई थी। गांगेय ने अपने शस्त्र उतारकर वहाँ रखे और द्वैपायन के साथ माता से मिलने गए।

माता को प्रमाण करके गांगेय अपने मन में घुमड़ रही बात पर सीधे आए, ''बालमुनि, माता ने तुम्हें हमारे संकट का, सारा वृत्तान्त बता दिया है न?''

''हाँ,'' द्वैपायन ने उत्तर दिया, ''आपने क्या करने का विचार किया है?''

गांगेय ने गला साफ किया और बोले, ''मेरा रास्ता अब स्पष्ट है। विवाह न करने की अपनी प्रतिज्ञा मैं भंग करूँगा नहीं और युद्ध की आज्ञापालन करने की प्रतिज्ञा भी तोड़ूँगा नहीं।''

''माँ को यही चिन्ता सता रही है कि कुरुओं का नेतृत्व करने को तुम नहीं रहोगे तो क्या होगा।'' द्वैपायन ने कहा।

''लेकिन मैं यदि अपनी प्रतिज्ञा भंग करता हूँ तो वह मृत्यु से भी बदतर होगी।'' गांगेय ने कहा, ''और एक बार भगवान परशुराम आज्ञा दे देते हैं तो उसकी अवमानना करके आप जीवित भी नहीं रह सकते।''

''गांगेय...'' माता बोलने लगीं किन्तु गला रुँध जाने के कारण आगे बोल नहीं सकीं।

''मेरे बारे में चिन्ता मत करो, माँ!'' गांगेय ने कहा।

''गांगेय, मैं जानती हूँ तुम क्या सोचते हो,'' माता ने कहा, ''तुम सत्य-प्रतिज्ञ हो। सत्य को ही तुम्हारा जीवन अर्पित है। तुम्हारी मृत्यु तुम्हारे शौर्यपूर्ण जीवन का किरीट बनेगी। प्रतिज्ञा भंग करने की बजाय मृत्यु का वरण करना पसन्द करने के कारण वीर के रूप में तुम शाश्वत काल तक लोगों की स्मृति में जीवित रहोगे। लेकिन तुमने और तुम्हारे पिता ने धर्म की स्थापना करने का जो काम हाथ में लिया था, उसका क्या होगा? वह संसार तो सारा ध्वस्त हो जाएगा।''

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

गांगेय के चेहरे पर उदासी छा गई, लेकिन सिर हिलाते हुए उन्होंने स्पष्ट उत्तर दिया, "यदि मैं अपनी प्रतिज्ञा का पालन नहीं करता तो धर्म की स्थापना भी कैसे कर सकूँगा?"

माता की आँखों से आँसू झरने लगे। गांगेय के प्रश्न का वह क्या उत्तर दें यह उनकी समझ में नहीं आया।

कानों-कान खबर फैल गई कि भार्गवश्रेष्ठ परशुराम धर्मक्षेत्र में आ रहे हैं।

परशुराम अपने जीवनकाल में ही भगवान कहलाने लगे थे। कुछ लोग तो उन्हें देवाधिदेव भगवान शिव के रूप में ही पूजने लगे थे।

वे ऋषि जमदग्नि के पुत्र थे, जिनकी सहस्रार्जुन ने हत्या कर दी थी। महिष्मती के इस राजा ने जब आर्यावर्त पर आक्रमण किया था तब कई राज्यों को रौंद डाला था। कई पूजनीय ऋषियों की हत्या कर दी थी, आश्रमों को जलाकर राख कर दिया था, स्त्रियों पर बलात्कार किया था और गौओं को मार डाला था।

परशुराम जब बड़े हुए तो उन्होंने इसका बदला लिया। आततायियों के अनेक समूहों का वध कर दिया। उनका यह पराक्रम दन्तकथाओं के रूप में चारों ओर फैल गया था कैसे उन्होंने खाली हाथों सहस्रार्जुन का वध किया, कैसे उन्होंने आक्रामकों का मुकाबला करने के लिए बड़े जनसमूहों का संगठन किया, कैसे उनके नेतृत्व में आर्यों ने कुरुक्षेत्र के मैदान में हैहयों का सफाया किया और कैसे आक्रामकों के रक्त से पाँच स्यमन्तक सरोवर लबालब भर डाले थे, यह सब लोगों की जिह्वा पर कथाओं और गीतों के रूप में अंकित हो गया था। कहते हैं कि उन्हें वह रहस्यमय प्रचंड शक्ति और बुद्धि प्राप्त थी जो अघोरी सम्प्रदाय के गुरु को होती है।

उन्होंने आर्यावर्त से आक्रमणकारियों का सफाया किया लेकिन वे स्वयं ब्राह्मण थे अतः उन्होंने अपने लिए कुछ नहीं रखा, एक सच्चे अपरिग्रही ब्राह्मण बने रहे और जो भी राज्य जीता वह उसके उचित अधिकारी या वंशज को सौंप दिया।

प्रतिवर्ष वे अपने पश्चिमी तटवर्ती शुर्पारक (सोपोरा) आश्रम से हिमालय में बसे बद्रीनाथ के नर-नारायण आश्रम की यात्रा के लिए निकलते और कुरुक्षेत्र भी जाते, जहाँ उनके पिता ऋषि जमदग्नि की हत्या हुई थी और आश्रम जला डाला गया था।

भगवान परशुराम जब यात्रा पर आते तब आर्यावर्त के आश्रमवासियों को शस्त्रविद्या की शिक्षा देने के लिए उनके शिष्य भी उनके साथ आया करते थे। वे खुले रथ में चलते। राजा उनको आतिथ्य देते। रास्ते में पड़नेवाले ग्रामवासियों के झुंड अपने इस महान रक्षक के दर्शन करने व उनका आशीर्वाद प्राप्त करने

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उमड़ पड़ते।

आर्यावर्त की यात्रा करते समय महाअथर्वण के पास वे कुछ दिन जरूर ठहरते। महाअथर्वण से पहले जो महाअथर्वण हुए थे, वे उनके दादा के शिष्य थे- महाअथर्वण ऋचिक कुरुक्षेत्र में जहाँ उनके पिता का वध हुआ था उस स्थान पर जाकर वे उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित किया करते थे।

इस अवसर पर महाअथर्वण के आश्रम में रहनेवाले सभी लोग पहाड़ी से नीचे उतर आते और उन्हें प्रणाम करते। आसपास के और भी कई आश्रमों के निवासी वहाँ आकर उनका स्वागत करते।

परशुराम का दीर्घकाय व्यक्तित्व था। बाघाम्बर ही उनका परिधान था। ढलती आयु के बावजूद शिराएँ स्फीत और मांसपेशियाँ पुष्ट थीं। चेहरा भरा हुआ, लम्बी दाढ़ी और जटाजूट से शोभित मस्तक, मस्तक पर जटाओं का जूड़ा कैलाश पर्वत की तरह गर्वोन्नत था। मोटी भँवों के नीचे बड़ी-बड़ी आँखें, जिनमें सदा व्यंग्यपूर्ण मुस्कान चमकती रहती थी।

उनके दाएँ हाथ में रथाश्वों की वल्गा रहती और बाईं ओर बगल में विशाल फरसा दबा रहता, जो सूरज की किरणों में चमकता रहता था।

उन्होंने लगाम खींची, अश्वों को रोका और रथ से नीचे कूद पड़े। सभी ने उनको दंडवत् प्रणाम किया। उन्होंने दायाँ हाथ उठाकर सभी को आशीर्वाद दिया, "शतायु हो!"

महाअथर्वण का आलिंगन कर वे गांगेय की ओर मुड़े जो उनके चरणों में साष्टांग दंडवत् कर रहा था। उन्होंने उसकी पीठ थपथपाई, "तुम आ गए, गांगेय?" ठठाकर हँसते हुए उन्होंने पूछा और बोले, "प्रातःकाल नित्यकर्म के बाद मुझसे मिलो।"

"जैसी आज्ञा, गुरुवर!" गांगेय ने उत्तर दिया।

परशुराम पुनः महाअथर्वण की ओर मुड़े, "जाबालि, तुम्हारी पुत्री काशीराज की कुमारी और एक मन्त्री के साथ अभी यहाँ पहुँचनेवाली है। किसी से कहो कि उन्हें आश्रम में ले आए।"

"जैसी गुरुदेव की आज्ञा!" महाअथर्वण ने कहा।

जब वे पहाड़ की तलहटी में पहुँचे तब परशुराम ने अपने पीछे-पीछे आते जनसमुदाय से कहा, "आप सभी अब जाइए और अपने-अपने काम में लगिए। महाअथर्वण मेरा ध्यान रख लेंगे।"

वे आगे बढ़ने ही वाले थे कि उनको कोई विचार कौंधा और सहसा ही वे अपने पीछे आ रहे गांगेय की ओर मुड़कर बोले, "गांगेय, क्या तुम्हारी माता यहाँ है?"

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"हाँ, गुरुदेव!"

"उनको भी साथ लेते आना।" उन्होंने कहा। फिर महाअथर्वण से कहा, "जाबालेया–तुम्हारी पुत्री बहुत ही होशियार है। लेकिन उसका पति कहाँ है? उसकी प्रशंसा तो बहुत लम्बे समय से सुनता आ रहा हूँ!"

द्वैपायन वहीं थे। हाथ जोड़कर बोले, "मैं यही हूँ, गुरुदेव!"

"तू पराशर का पुत्र है न?"

"हाँ, गुरुदेव!" द्वैपायन ने कहा।

"तेरी पत्नी अत्यन्त कुशल है।" गुरुदेव की आँखों में विनोद छलक रहा था, "वह मुझे शैखावत्य के आश्रम में मिली तब तेरी बहुत प्रशंसा कर रही थी।"

द्वैपायन की आँखों में भी चमक आ गई। गम्भीर बनकर उन्होंने कहा, "हाँ गुरुदेव, पूज्य अथर्वण की पुत्री को अभी मेरी दुर्बलताओं का ज्ञान नहीं है।"

"सँभलकर रहना, वत्स!" गुरुदेव ने चेतावनी के लिए तर्जनी उठाते हुए कहा, "ज्यादा प्रशंसा करनेवाली स्त्री पति के लिए प्रायः सिरदर्द बन जाती है।"

द्वैपायन ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया, "गुरुदेव, ज्यादा आलोचना करनेवाली स्त्री भी पति के जीवन को कण्टकाकीर्ण कर देती है।"

गुरुदेव तथा महाअथर्वण दोनों ही यह सुनकर खिलखिला उठे। उनके पीछे और भी सब लोग हँस पड़े। पूरे वातावरण में उनकी हँसी गूँज उठी।

"तेरा कथन सत्य है, वत्स!" गुरुदेव ने कहा।

महाअथर्वण के साथ परशुराम आश्रम की ओर जानेवाली पगडंडी पर चढ़ने लगे।

भगवान परशुराम का निर्णय

दूसरे दिन सवेरे सुमन्तु पूजा-अर्चना के बाद राजकुमार गांगेय द्वैपायन और माता को वहाँ ले आया जहाँ महाअथर्वण तथा भगवान परशुराम बैठे थे। सत्यवती के पीछे-पीछे दावी भी वहाँ आ गई। माता के चेहरे पर विषाद का भाव छाया हुआ था। सभी ने भगवान परशुराम तथा महाअथर्वण को प्रणाम किया और एक ओर बैठ गए।

महाअथर्वण का पट्टशिष्य शौनक काशी की राजकुमारी अम्बा को वहाँ ले आया। उसके साथ वाटिका, मन्त्री कुणिक तथा होत्रवाहन भी आए।

अम्बा का कद ऊँचा था। प्रतिमा-जैसी लग रही थी। बाल बिखरे हुए थे, आँखें लाल थीं और चेहरे पर उदासी थी। भगवान परशुराम के पास उसने जब राजकुमार गांगेय को बैठा हुआ देखा तो उसकी मांसपेशियाँ तन गईं और वह

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

आवेग से काँपने लगी। सिंहनी के समान क्रुद्ध आँखों से उसने गांगेय को यों देखा मानो उछलकर उस पर आक्रमण करनेवाली हो।

"भगवन्!" उसने गांगेय की ओर अँगुली से संकेत करते हुए थरथराती वाणी में कहा, "यही वह व्यक्ति है जिसने मेरा जीवन नष्ट कर दिया है। इसी ने मुझसे मेरा घर छीन लिया है, इसी के कारण मेरा विवाह शाल्व से नहीं हो सका। सुख मेरे लिए मरीचिका बन गया और पूरे संसार के लिए मैं अछूत-जैसी हो गई।"

परशुराम ने उसे बैठने का संकेत किया और कहा, "पुत्री, शान्ति रखो। सब ठीक हो जाएगा।"

अम्बा का क्रोध कुछ कम हुआ। उसने कहा, "भगवन्! यह अपने कुकृत्य का प्रायश्चित करने के लिए मेरे साथ विवाह करे, यही मेरी इच्छा है।" अन्तिम शब्द उसके गले में ही रह गए और वह फूट-फूटकर रोने लगी।

भगवान परशुराम ने हाथ ऊँचा किया, "पुत्री, तूने अपने दुख की कथा कई बार कही है। मैं इस बात से सहमत हूँ कि गांगेय ने तेरे साथ जो अन्याय किया है उसका उसे प्रायश्चित करना ही होगा।" फिर गांगेय की ओर मुड़कर उन्होंने कहा, "गांगेय, तू अम्बा से विवाह क्यों नहीं करता?"

राजकुमार गांगेय ने हाथ जोड़े और विनयपूर्वक कहा, "भगवन्, यह सच है कि मैंने काशी की राजकन्या का स्वयंवर से अपहरण किया था। आप जानते हैं कि क्षत्रिय लोग यदि स्वयंवर से किसी कन्या का अपहरण करते हैं तो यह पाप नहीं कहलाता। मैं इसे हस्तिनापुर की महारानी बनाना चाहता था, लेकिन यह विचित्रवीर्य से विवाह करने को तैयार नहीं हुई, यह शाल्व से विवाह करना चाहती थी। इसलिए मैंने इसे कुरुओं की कन्या की तरह विवाह की भेंट सहित शाल्व के यहाँ भेजा, लेकिन शाल्व ने इसे अस्वीकार कर दिया। फिर पूज्य माता ने..."

अम्बा फिर झुँझलाकर बीच में बोल उठी, "पूज्य माता ने...!" उसका चेहरा लाल हो गया, "मैं इसे जानती हूँ। यह चुड़ैल है। यह मेरी परेशानियों की जड़ है!"

गुस्से से अम्बा खड़ी हो गई। सिर से सरक आया आँचल उसने ठीक किया और सत्यवती की ओर अँगुली उठाते हुए बोली, "यह दुष्टा है, भगवन्! मेरा वश चले तो मैं इसकी आँखें निकाल लूँ।"

अम्बा के शब्द सुनकर सभी भौंचक्के रह गए। वाटिका जहाँ बैठी थी वहाँ से उठकर माता सत्यवती के पास जाकर बैठ गई।

"हम सब कुरुक्षेत्र से चले जाएँ तब तू इनकी आँखें निकाल लेना।" भगवान परशुराम ने हँसकर कहा, "अभी तो थोड़ा बैठ जाओ और शान्त रहो।"

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अम्बा ने असहमति में सिर हिलाते हुए कहा, "मैं शान्त क्यों रहूँ? यह मेरी कट्टर दुश्मन है! गांगेय को इसी ने बहकाया है!"

माता सत्यवती को चोट पहुँची। पहले कभी उन्होंने ऐसी कटु वाणी नहीं सुनी थी। उन्होंने दुखभरी आवाज में कहा, "मैं तो कभी किसी के मार्ग में बाधक नहीं बनी।"

"तू ही मेरे मार्ग में बाधक बनी है!" अम्बा ने चीखकर कहा, "मैं सब जानती हूँ। तूने जब शान्तनु से विवाह किया तभी से तुमने यह अड़चन उत्पन्न कर रखी थी। तूने ही गांगेय को यह प्रतिज्ञा लेने को विवश किया था कि वह जीवन-भर विवाह नहीं करेगा।"

ये शब्द सुनते ही माता की आँखों से अश्रुधारा बहने लगी। वाटिका ने सान्त्वना देने के लिए उनकी पीठ पर हाथ रखा।

"इसी चुड़ैल ने गांगेय पर कोई टोना-टोटका कर इसे वश में कर लिया है।" अम्बा ने क्रोध के अतिरेक में आकर कहा, "यह डाकिन गांगेय को उसकी प्रतिज्ञा से कभी छुटकारा नहीं पाने देगी।"

गांगेय की आँखों से क्रोध की चिनगारियाँ फूटने लगीं। लेकिन क्रोध पर नियन्त्रण रखते हुए कहा, "पूज्य माता पर काशी की राजकुमारी द्वारा लगाए गए आक्षेप बिलकुल झूठे हैं, जहरीले हैं। माता ने मेरा ध्यान सगी माता से भी अधिक रखा है। काशी क़ी राजकुमारी को यह ज्ञात नहीं है कि माता ने कितनी बार मुझसे मेरी प्रतिज्ञा तोड़कर काशी की राजकुमारी से विवाह कर लेने का आग्रह किया है, प्रार्थना की है।"

"कैसी तो माँ है और कैसा उसका बेटा है!" अम्बा पागलों-सी हँसी हँसते हुए बोली, "यह जानती है कि गांगेय से मेरा विवाह हो गया तो मेरा पुत्र सम्राट भरत की गद्दी का दावा करेगा और इसके अपने पुत्र को कोई पूछेगा भी नहीं। ईश्वर इसे बराबर दंड दे रहा है। इसका एक पुत्र मारा गया है और दूसरा भी यमलोक जाने की तैयारी में है।"

परशुराम ने हाथ के इशारे से अम्बा से बैठ जाने को कहा और फिर गांगेय की ओर मुड़कर बोले, "यदि सत्यवती तुझसे अपनी प्रतिज्ञा भंग करने को कहती है तो उसे भंग क्यों नहीं कर देता?"

गांगेय ने कुछ पल नीचे की ओर देखा फिर कहा, "मुझसे भी अधिक भगवान को यह तथ्य ज्ञात है कि जो मनुष्य अपनी प्रतिज्ञा भंग करता है वह मरे-समान माना जाता है, वह एक प्रकार की आत्महत्या ही है। मेरी प्रतिज्ञा मेरे जीवन की मूल शक्ति है। इस प्रतिज्ञा को तोड़नेवाले प्रलोभनों से मैं कितनी ही बार दिन-रात जूझा हूँ। मानव-स्वभाव की दुर्बलता पर विजय पाने के लिए मुझे कड़ी तपस्या

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

करनी पड़ी है। मेरी प्रतिज्ञा मेरा वह वचन है जो मैंने पिता, ईश्वर और अपने पूर्वजों को दिया है। इस वचन को तोड़ने की अपेक्षा मैं मृत्यु का वरण करना ज्यादा पसन्द करूँगा।"

अम्बा ने तिरस्कारपूर्ण दृष्टि से गांगेय की ओर देखा और व्यंग्य के स्वर में बोली, "देखो तो सही, इस संन्यासी को!"

द्वैपायन ने धीमी और मृदु वाणी में कहा, "भगवन्, अनुमति हो तो मैं कुछ निवेदन करूँ?"

"हाँ-हाँ बोलो।" परशुराम ने अनुमति दी।

"चक्रवर्ती भरत के साम्राज्य का अस्तित्व राजकुमार गांगेय के कन्धों पर टिका है।" द्वैपायन ने शान्तिपूर्वक कहा, "क्षत्रिय इन्हें क्षात्रधर्म के ज्वलन्त आदर्श के रूप में मानते हैं। प्रजा इनके असाधारण नैतिक बल पर निछावर है।" द्वैपायन कुछ देर चुप रहे फिर आगे बोले, "यदि ये अपनी प्रतिज्ञा तोड़ते हैं तो इनमें जन-जन का जो विश्वास है वह चला जाएगा। धर्म और पराक्रम के बीच राजकुमार गांगेय ने जिस सेतु की रचना की है वह चरमराकर टूट जाएगा।"

परशुराम बड़े ध्यान से द्वैपायन के शब्दों को सुन रहे थे।

"यदि मैं राजकुमार गांगेय के स्थान पर होता तो मैं भी प्रतिज्ञा भंग नहीं करता, और वैसे ही आपसे भी नहीं लड़ता क्योंकि आप मेरे गुरु हैं। दोनों स्थितियों में धर्म से हाथ धोना पड़ता है। इसलिए अम्बा के जीवन और धर्म के जीवन इन दोनों में से किसी एक का चयन करना है।" द्वैपायन ने कहा।

माता ने आँसू पोंछे और कहा, "अम्बा जो कहे वह मैं करने को तैयार हूँ। अम्बा को यदि यह लगता हो कि उसके सारे दुखों का कारण मैं हूँ तो मैं अपना जीवन त्याग देने को तैयार हूँ।"

अम्बा जोर से चीखकर बीच में ही बोल उठी, "मुझे तेरा जीवन नहीं चाहिए। यदि गांगेय ने प्रतिज्ञा ली है तो मैंने भी प्रतिज्ञा ली है, या तो यह मेरे साथ विवाह करेगा या मृत्यु को प्राप्त होगा।" माता सत्यवती की ओर क्रुद्ध नजरों से देखते हुए उसने पुनः कहा, "मुझे तेरे जीवन से कोई मतलब नहीं है।" फिर भगवान परशुराम की ओर देखते हुए उसने कहा, "यह स्त्री..."

"ये पूज्य राजमाता हैं।" परशुराम ने कठोर स्वर में कहा।

"भगवान, इसकी जीभ पर शहद के समान मीठे शब्द हैं, लेकिन..." अम्बा ने पुनः बोलना शुरू किया किन्तु परशुराम ने उसे रोक दिया।

"गांगेय," उन्होंने कहा, "तुझे अब प्रतिज्ञा छोड़ देनी चाहिए। परिस्थितियाँ अब बदल गई हैं। तुम्हारी प्रतिज्ञा का उद्देश्य पूरा हो चुका है। सत्यवती का पुत्र ही अब हस्तिनापुर के सिंहासन पर बैठा है और उसका काशीराज की दो कन्याओं

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

से विवाह भी हो चुका है।"

अम्बा कुछ बोलना चाह रही थी, लेकिन परशुराम ने उसे फिर संकेत से रोक दिया और कहा, "गांगेय, मैंने अम्बा को वचन दिया है कि उसे न्याय मिलेगा। अब या तो तुझे इसके साथ विवाह करना पड़ेगा या मेरे साथ लड़ना होगा और इसका अर्थ तुम जानते ही हो, मुझे बताने की आवश्यकता नहीं है।" परशुराम ने कहा।

"हाँ, वह मैं अच्छी तरह जानता हूँ।" गांगेय ने दृढ़तापूर्वक कहा, "मैंने गुरुदेव के साथ बारह वर्ष का जो समय बिताया है, वह पानी में विसर्जित नहीं किया।"

"तब फिर तू अपनी प्रतिज्ञा क्यों नहीं छोड़ देता?" परशुराम ने कहा।

गांगेय ने सिर हिलाते हुए कहा, "गुरुदेव, मुझे अत्यन्त दुख के साथ कहना पड़ रहा है कि आपकी आज्ञा का मैं पालन नहीं कर सकूँगा।"

"तो इसका अर्थ यही हुआ न कि तू मेरे साथ युद्ध करेगा?" परशुराम ने हँसकर पूछा।

गांगेय ने आदरसहित भगवान परशुराम की ओर देखा, "नहीं, भगवन्! मैं अपना वचन पालूँगा और यह भी ध्यान दूँगा कि आपने अम्बा को जो वचन दिया है उसका भी पालन हो। इसका कारण यह है कि आपका दिया हुआ वचन तो मेरे जीवन से भी अधिक मूल्यवान है।"

परशुराम विचार में पड़ गए। उनका हाथ उनकी दाढ़ी पर फिरने लगा।

"मैं कुछ निवेदन कर सकता हूँ?" द्वैपायन ने हाथ जोड़कर पूछा।

परशुराम ने सिर हिलाकर अनुमति दी।

द्वैपायन ने कहा, "शायद गुरुदेव जानते हों कि केवल चक्रवर्ती भरत का साम्राज्य ही नहीं बल्कि समूचा आर्यावर्त राजकुमार गांगेय की शक्ति और विश्वास पर अवलम्बित है। ये दृढ़प्रतिज्ञ हैं। अपनी प्रतिज्ञा को भंग करने के बदले प्राणत्याग करना उचित समझते हैं।"

माता ने फिर कहा, "अम्बा जो भी दूसरा मूल्य माँगे वह मैं देने को तैयार हूँ। यदि अम्बा ने जैसा कहा वैसी मैं चुड़ैल हूँ तो मैं प्राण त्याग करने को तैयार हूँ।"

"मुझे किसी का भी प्राण नहीं लेना है। मुझे तो इतना ही चाहिए कि गांगेय मेरे साथ विवाह कर ले। इससे कम कुछ भी नहीं।" अम्बा ने सत्यवती की ओर देखते हुए कहा। फिर भगवान परशुराम की ओर मुड़कर बोली, "भगवान, गांगेय तो अपनी प्रतिज्ञा भंग करने से इनकार कर रहे हैं।"

"तो मेरा इससे युद्ध होगा।" परशुराम ने हँसकर कहा।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"शायद काशी की राजकुमारी को यह पता नहीं है कि गांगेय मर गए तो क्या होगा?" द्वैपायन ने कहा।

माता ने कहा, "काशी की राजकुमारी से मैं प्रार्थना करती हूँ कि वह मेरी बात स्वीकार कर ले। वह विचित्रवीर्य से विवाह करे और हस्तिनापुर की महारानी बने। फिर मैं वनवास में चली जाऊँगी और संसार छोड़ दूँगी।"

"तू क्या करती है उससे मुझे कोई मतलब नहीं है।" अम्बा ने तिरस्कार से कहा।

भगवान परशुराम ने कहा, "गांगेय, अब तुझसे लड़ने के सिवा मेरे पास दूसरा कोई विकल्प बचा नहीं है।"

"मैं आपसे लड़ूँ? यह कभी सम्भव नहीं हो सकता।" गांगेय ने कहा, "गुरुदेव, आपने काशी की राजकुमारी को वचन दिया है, उसे पूरा करने को उठाइए अपना परशु, यह रही मेरी गर्दन..." कहकर गांगेय ने भगवान परशुराम के चरणों में अपना सिर धर दिया।

गुरुदेव की आँखों में एक चमक उठी और वे ठठाकर हँस पड़े। फिर महाअथर्वण की ओर देखते हुए बोले, "महाअथर्वण, सभी लोग मरने की इच्छा रखते हैं। अम्बा अग्नि में प्रवेश करने को तैयार है। सत्यवती भी मरना चाहती हैं। राजकुमार गांगेय को भी मरना है। धर्म की पुनःप्रतिष्ठा का प्रयत्न सफल नहीं हो तो द्वैपायन भी मरने को तैयार है और जाबालेया तो उससे भी पहले मरने को कमर कसे बैठी है..." और परशुराम अब और भी जोर से ठठाकर हँस पड़े, "महाअथर्वण, मात्र तुम और मैं ही जीना चाहते हैं क्योंकि हम ही मृत्यु के निकट ज्यादा हैं।" हँस-हँसकर उनका चेहरा लाल हो गया, "हर कोई यमराज के प्रेम में पड़ गया लगता है। तो फिर जाबालि, तू भी..." कहकर परशुराम महाअथर्वण की ओर मुड़े, लेकिन उनके चेहरे पर होनेवाले भाव-परिवर्तन को देखकर वे रुक गए।

महाअथर्वण की आँखें बन्द थीं। ऐसा लगता था मानो वे समाधि अवस्था में पहुँच गए हों। थोड़ी देर बाद वे जैसे किसी अन्य लोक से लौटे हों ऐसी गम्भीर आवाज में बोले, "यमदेव ने अपने एक महामूल्यवान रत्न का भोग प्राप्त कर लिया है। कोई यह समाचार देने के लिए आने ही वाला है। वह अभी पहाड़ी पर चढ़ रहा है।"

राजमाता के चेहरे का रंग उड़ गया। जिस प्रहार की उन्हें प्रतीक्षा थी वही प्रहार विधाता ने उन पर किया होगा। अश्रुपूरित नेत्रों के साथ रुँधे गले से उन्होंने पूछा, "महर्षि, आप किसकी बात कर रहे हैं?"

जैसे अचानक महाअथर्वण समाधि से जागे। उन्होंने आश्चर्य में डूबे सभी के

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

चेहरों की ओर देखकर कहा, "पहाड़ी पर कोई चढ़ रहा है। सुमन्तु, तू जा और उनका स्वागत कर।"

वहाँ एकत्रित सभी लोगों के चेहरों पर प्रस्तरवत् शान्ति छा गई।

सुमन्तु सन्देशवाहक को लेने गया और उसे लेकर वापस आया। सन्देशवाहक की साँस फूल रही थी। उसकी समूची देह धूल से भरी हुई थी। वह इतना अधिक व्यथाग्रस्त था कि महाअथर्वण को प्रणाम करना ही भूल गया।

गांगेय उसे पहचान गए। कुरु सरदार सुकेतु थे वे। "सुकेतु, क्या बात हुई?" उन्होंने पूछा।

आँसुओं से भीगी सत्यवती की आँखों ने भी यही प्रश्न पूछा।

सुकेतु बोलने के लिए शब्द ढूँढ़ने लगा, "सम्राट..."

सत्यवती ने अपना हाथ गले पर फेरा, उनका गला रुँध रहा था।

सुकेतु ने साहस एकत्रित करके कहा, "सम्राट छत से गिर गए हैं और गम्भीर रूप से घायल हो गए हैं। पूज्य पुरोहित ने राजमाता तथा राजकुमार गांगेय को तत्काल वापस हस्तिनापुर बुलाया है।"

"मैं जानती हूँ, जानती हूँ..." माता के होंठों पर उनके मन की पीड़ा को व्यक्त करनेवाले ये शब्द आए और वे बेहोश हो गईं। वाटिका ने उन्हें अपनी गोद में लिटा दिया। सुमन्तु ने उनके चेहरे पर पानी के छींटे दिए।

माता ने आँखें खोलीं। लगा, जैसे उनकी आँखें शून्य की ओर ताक रही हों। द्वैपायन तथा वाटिका ने खड़े होने के लिए उन्हें सहारा दिया।

द्वैपायन ने गुरुदेव से जाने की अनुमति माँगी।

"तू जा सकता है, लेकिन पहले मेरी बात सुन, तुम सभी लोग इस बात को सुनो।" परशुराम ने अधिकारपूर्ण स्वर में कहा।

सबने उनकी ओर ध्यान दिया।

"तुम लोगों ने मूर्ख की तरह यम का आह्वान किया था। यम आए और इनका भक्षण कर लिया। गांगेय ने यदि कोई पाप किया है तो इस यमदंड से वह धुल गया है।" भगवान परशुराम ने कहा।

वे खड़े हुए और हाथ में परशु लेकर माता सत्यवती के पास गए।

"भगवन्! मेरी आँखों का तारा अस्त हो गया।" माता ने सुबकते हुए कहा।

"सत्यवती, ईश्वर ने आपको जो कर्तव्य सौंपा है उसमें आपके पुत्र के अवसान से बाधा नहीं होनी चाहिए। मैं जानता हूँ कि आपका जीवन अब शुष्क बन गया है लेकिन इसका एक उद्‌देश्य है। चक्रवर्ती भरत की कुल-परम्परा समाप्त न हो यह आपको ध्यान रखना है। धर्म की जय आप लोगों के किसी के भी जीवन से ज्यादा महत्त्वपूर्ण है।" भगवान परशुराम ने कहा।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अम्बा बीच में बोलने को हुई कि परशुराम की आँखें देखकर चुप हो गई, "अम्बा, गांगेय तेरे साथ विवाह न करे तो कुरु राजकुमारी के समान माता सत्यवती के साथ रहने की प्रार्थना तुझे स्वीकार कर लेनी चाहिए। माता को तेरी-जैसी पुत्री के सहारे की जरूरत है।"

"नहीं...नहीं...!" अम्बा बोली, "मुझे तो मेरे जीवन का सर्वनाश करनेवाले के प्राण ही चाहिए।"

परशुराम ने अम्बा की ओर कठोर दृष्टिपात किया और कहा, "तो अम्बा, तू अग्नि में प्रवेश कर। अगले जन्म में तू गांगेय का वध कर सकेगी।"

और फिर भगवान परशुराम द्वैपायन की ओर मुड़े, "वत्स, तुझे मेरा आशीर्वाद है—अधूरे रह गए कार्य को पूरा कर।"

यह कहकर उन्होंने महाअथर्वण के कन्धे पर हाथ रखा और दोनों वहाँ से चले गए।

'मुझे गोधूलि ले चलो'

राजकुमार देवव्रत गांगेय अपने महल की छत पर खड़े थे और गंगा के प्रवाह को श्रद्धा भाव से निरख रहे थे। गंगा को वे अपनी माता मानते थे और युद्ध के समय गंगा से शक्ति प्राप्त करने की आशा में उसकी प्रार्थना किया करते थे।

राजमाता के सन्देश की उन्हें प्रतीक्षा थी। विचित्र के देहान्त के कारण आई विपत्ति के बाद माता ने उनकी प्रतिज्ञा के बारे में नया रवैया अपना लिया था। लेकिन गांगेय का जीवन तो उसी प्रतिज्ञा पर अवलम्बित था। अब माता गांगेय से कहती थीं कि वे उस प्रतिज्ञा को छोड़कर राज-काज सँभालें और विवाह कर लें। उनका मत था कि ऐसा होने पर ही सम्राट शान्तनु तथा पितरों का तर्पण करनेवाला उत्तराधिकारी जन्म लेगा। माता ने गांगेय को इस बात पर विचार करने के लिए दो दिन दिए थे।

वे स्पष्ट देख रहे थे कि पिता की मृत्यु से हस्तिनापुर में जो उदासीनता आई थे वह अब गम्भीर संकट के रूप में बढ़ती जा रही है।

पिता शान्तनु का सभी लोग आदर किया करते थे। उनकी उपलब्धियों पर कुरुओं को गर्व था। उनके नेतृत्व में कुरु आर्यावर्त में एक प्रबल शक्ति बनकर उभरे थे। लेकिन उनके स्वर्गवास के बाद लगातार तेजी से जो घटनाएँ घटी थीं उनके कारण प्रजा में निराशा का वातावरण छा गया था।

और फिर काशीराज की बड़ी लड़की अम्बा ने कैसी बड़ी समस्या खड़ी कर

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दी! बिजली के समान कड़कती इस तेज युवती के स्मरण-मात्र से गांगेय काँप जाते थे।

विचित्रवीर्य का आकस्मिक देहान्त ऐसे में सबसे क्रूर आघात था। घर में अब दो युवा विधवाएँ थीं और राजवंश का कोई उत्तराधिकारी नहीं था। इन समस्याओं का प्रभाव यह हुआ कि प्रत्येक यही चाहने लगा कि गांगेय प्रतिज्ञा तोड़कर राज्य-पद स्वीकार कर लें। राजमाता भी अब यही चाहती थीं।

राजमाता अत्यन्त लोकप्रिय थीं। उनका हृदय दयालु था। किसी का जरा भी दुख देखतीं तो वे द्रवित हो उठती थीं। कुरु भी उनका आदर करते थे क्योंकि उनके प्रति भी माता का व्यवहार सहज स्नेहपूर्ण था। अब यदि दूर के नाते का कोई अन्य व्यक्ति राजगद्दी पर बैठता है तो आज तक हस्तिनापुर की कुलदेवी की तरह पूजे जाने के कारण राजमाता का जो गौरव था वह लुप्त हो जाएगा और वे तथा दोनों विधवा पुत्रवधुएँ अनाथों की-सी स्थिति में आ जाएँगी। इस दुरवस्था का विचार आते ही गांगेय काँप उठते।

मन्त्री कौंडिन्य के आगमन से गांगेय के विचारप्रवाह में बाधा पड़ी, "राजमाता भरतश्रेष्ठ से मिलने को तैयार हो गई हैं।" मन्त्री ने कहा।

'लेकिन पता नहीं, उनसे मिलने को मैं तैयार हूँ या नहीं।' गांगेय ने मन-ही-मन कहा। माता से मिलना उनके लिए सदैव प्रेरणाप्रद रहता था लेकिन इस प्रसंग में ऐसा लगा जैसे उन्हें फाँसी के तख्ते पर ले जाया जा रहा हो।

राजमाता सदैव की तरह देवमन्दिर के पास बैठी थीं। उनके चेहरे पर गहरी वेदना छाई हुई थी। उनकी आँखें उन आँसुओं के भार से बोझिल थीं जो अभी बाहर नहीं आ पाए थे।

राजमाता के पीछे वाटिका बैठी थी। दावी बन्द द्वार के पास खड़ी थी, ताकि कोई अचानक भीतर न आ सके।

माता की एक ओर मुनि द्वैपायन बैठे थे। अब सभी लोग आदर से उन्हें मुनि पाराशर्य नाम से पुकारने लगे थे। उनके पास उनका शिष्य पैल बैठा था। दूसरी ओर दो प्रमुख कुरु सरदार महाबाहु और सुकेतु तथा मन्त्री कुंणिक बैठे थे। उनके बिलकुल सामने कुरुओं के राजपुरोहित आचार्य विभूति रेशमी उपवस्त्र तथा स्वर्णमाला पहने हुए बैठे थे। उनके पास ही एक ओर उनके वृद्ध पिता ब्रह्मिष्ठ तथा दूसरी ओर उनके शिष्य आचार्य देवयान बैठे थे।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

गांगेय ने माता को प्रणाम किया। माता ने बाएँ हाथ से आँखों के आँसू पोंछे और दाहिने हाथ से गांगेय को आशीर्वाद दिया। गांगेय ने आचार्यों तथा कुरु सरदारों को प्रणाम किया। उन्होंने मुनि द्वैपायन की भी चरणवन्दना की और फिर एक ओर बैठ गए। सभी के चेहरों पर गम्भीरता व्याप्त थी। मौन को भंग करते हुए जब आचार्य विभूति बोले, तब उनका स्वर भी भारी था।

वे बोले, "भरतश्रेष्ठ, हमने पूरे दिन और आधी रात तक सभी प्रश्नों पर सभी दृष्टिकोणों से विचार करके देखा है। हम सभी को यही लगता है कि आपको विवाह कर लेना चाहिए। पुत्र के बिना आपके पिता को, पितरों को और जब आप स्वयं पितृलोक में जाएँगे तब आपको भी तर्पण बिना रहना होगा। यह स्थिति असह्य है। कुरुओं की सत्ता छिन्न-भिन्न हो जाएगी। आपके पिता तथा आपके द्वारा स्थापित धर्म के साम्राज्य का पतन हो जाएगा। पूज्य राजमाता का भी यही मत है।"

माता ने सिर हिलाकर इस बात का अनुमोदन किया।

"बालमुनि, आपकी क्या राय है?" गांगेय ने द्वैपायन से पूछा।

"मेरी राय यह है कि सबकुछ पूज्य माता पर छोड़ देना चाहिए।" द्वैपायन ने तटस्थ भाव से कहा।

कुरुओं में सबसे वरिष्ठ महाबाहु ने कहा, "गांगेय, यदि तूने विवाह नहीं किया और यदि तूने राजगद्दी स्वीकार नहीं की तो कुरुओं के समक्ष एक गम्भीर स्थिति उत्पन्न हो जाएगी। यह स्थिति कितनी भयानक होगी यह तुझे समझाने की आवश्यकता नहीं है। यदि राजगद्दी पर तू नहीं बैठता है तो रिश्ते में सबसे निकट होने के कारण इस पर मेरा अधिकार बनता है। मुझे राजगद्दी नहीं चाहिए लेकिन मेरा ज्येष्ठ पुत्र इसको ग्रहण करेगा और उस पर उसका उचित अधिकार है। लेकिन मैं जानता हूँ कि वह कुरुओं को संगठित नहीं रख सकेगा। राजगद्दी को त्यागना मेरे लिए अस्वाभाविक हो सकता है किन्तु मैं अपने परिवार की अपेक्षा हस्तिनापुर से ज्यादा प्रेम करता हूँ।"

आचार्य विभूति ने कहा, "गांगेय, तो उस स्थिति में आपका अपना जीवन दूभर हो जाएगा। हो सकता है आपके चाचा महाबाहु का परिवार आपका नेतृत्व स्वीकार न भी करे।"

सुकेतु ने कहा, "मेरे भाई महाबाहु ने तथा मैंने इस स्थिति के सभी पहलुओं पर विचार किया है। हम सभी इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि गांगेय अपनी प्रतिज्ञा तोड़ दे और हस्तिनापुर को आपत्ति से उबारे। मात्र यही एक उपाय बचा है अब। गांगेय, तुम्हें हमारी सलाह मान लेनी चाहिए।"

"चाचाजी," गांगेय अत्यन्त उदास और धीमे स्वर में बोले, "मुझे पता चला

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

है कि मेरा व्यवहार शायद कुरुओं को अपराध और देवताओं की दृष्टि में पाप प्रतीत होगा और इससे मेरे पिता का, पितरों का या स्वयं मेरा तर्पण कर सके ऐसे पुत्र का जन्म नहीं होगा।" एक क्षण गांगेय रुके फिर बोले, "सम्भव है मेरे जीवन-काल में ही भाई-भाई के बीच युद्ध छिड़ जाए।"

"आप राजगद्दी स्वीकार नहीं करेंगे, इस धारणा के आधार पर तो षड्यन्त्र शुरू भी हो गए हैं!" आचार्य विभूति ने कहा।

"सही बात है।" ब्रह्मिष्ठ ने भारी स्वर में आँखों पर हथेली का छज्जा बनाते हुए कहा।

गांगेय ने धीमे स्वर में कहा, "शायद इस सारे दुर्भाग्य का मूल मैं ही हूँ।"

"तो फिर आप हमारी सलाह किस कारण स्वीकार नहीं करते हैं, गांगेय?" आचार्य विभूति ने पूछा।

"आचार्य श्रेष्ठ!" गांगेय ने उत्तर दिया, "पूज्य राजमाता ने मेरे साथ इस विषय पर विस्तार से चर्चा की है। मैंने स्वयं भी इस विषय पर विस्तृत विचार किया है।"

माता के चेहरे पर घायल प्राणी के-से जो भाव थे, उन्हें उन्होंने छिपाने का प्रयत्न किया और कहा, "तो क्या तू मेरी प्रार्थना अस्वीकार करता है?"

"माता, बुरा मत मानना, लेकिन मेरी संकटमय स्थिति पर भी कुछ विचार करो।" गांगेय ने गिड़गिड़ाकर प्रार्थना की, "मैं अपनी प्रतिज्ञा को कैसे तोड़ूँ? जब से मैंने प्रतिज्ञा ली है तब से इसका पालन करने के लिए अपनी वृत्तियों से दिन-रात संघर्ष किया और अन्ततः विजयी हुआ। मेरे जीवन में स्त्री की छाया तक का प्रवेश नहीं हो सका। अब मैं उस जीवनधारा को कैसे बदलूँ?"

महाबाहु कुछ कहने को हुए किन्तु गांगेय ने उन्हें रोककर कहा, "चाचाजी, तनिक मेरी बात को समझिए। प्रभु ने कुछ ऐसी लीला की है कि आजीवन ब्रह्मचर्य का अपना व्रत भंग करने के सिवा मेरे लिए कोई मार्ग नहीं बचा है। यदि मैं ऐसा नहीं करता हूँ तो कुरुसमाज मुझे जिद्दी, मूर्ख, द्रोही और पापी कहेगा।"

"आपकी बात सही है, राजकुमार!" आचार्य विभूति ने कहा, "लेकिन तब आप हमारी सलाह क्यों नहीं स्वीकार कर लेते हैं?"

गांगेय ने हाथ जोड़े और विनम्रतापूर्वक कहा, "मैं आप सभी का सदैव आदर करता रहा हूँ। आप सभी मेरे पूजनीय हैं। मेरी आपसे इतनी-सी प्रार्थना है कि मुझे जो निर्णय करना है उसकी गम्भीरता आप समझें। अभी तक सभी मेरा आदर इसलिए करते हैं कि मैं सत्यप्रतिज्ञ हूँ। वे मुझे धर्म का मूर्तिमन्त रूप मानते हैं। वे जानते हैं कि मैं अपनी प्रतिज्ञा तोड़ने की अपेक्षा मृत्यु का वरण करना अधिक

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पसन्द करूँगा। पिछले दो दिनों से मैं आपके आदेश पर विचार कर रहा हूँ। आपके आदेश को स्वीकार कर लेने के उद्‌देश्य से मैंने अपने अन्तःकरण का लगातार मंथन किया है। कुछ क्षण ऐसे भी बीते हैं जब मैंने अपने आपको नर्क के द्वार पर खड़ा हुआ अनुभव किया है।'' क्षण-भर गांगेय रुक गए। उन्होंने अपने कन्धे पर रखे उपवस्त्र से ललाट का पसीना पोंछा और कहा, ''कृपा करके मुझे प्रतिज्ञा तोड़ने के लिए न कहें। मेरे लिए वह मृत्यु से भी अधिक कष्टप्रद घटना होगी। वह मुझमें निवास करनेवाले धर्म की मृत्यु होगी। एक प्रकार की आध्यात्मिक आत्महत्या ही वह मानी जाएगी।''

गांगेय के सुहावने चेहरे पर वेदना स्पष्ट झलक रही थी। सभी लोग, और सबसे अधिक राजमाता, गांगेय के मन की अवस्था को जान रहे थे। ब्रह्मिष्ठ ने काँपता हुआ हाथ ऊँचा किया और घरघराती आवाज में कहा, ''कुलश्रेष्ठ, प्रतिज्ञा-भंग के बारे में सोचते हुए आपने जिस संघर्ष को झेला है, वह हमें ज्ञात है। एक अन्य उपाय भी है और राजमाता की उसमें सहमति है। आप प्रतिज्ञा-भंग किए बिना सम्राट शान्तनु के वंश को विलीन होने से बचा सकते हैं।''

''ऐसा कौन-सा मार्ग है?'' गांगेय ने पूछा, ''मुझे तो कोई सूझता नहीं!''

ब्रह्मिष्ठ ने काँपती वाणी में कहा, ''नियोग का। आजकल नियोग की प्रथा प्रचलित नहीं है, लेकिन पूज्य ऋषियों की इसे स्वीकृति प्राप्त है।''

गांगेय को यह सुनकर धक्का लगा। उन्होंने कहा, ''आपका आशय है कि मैं अपने छोटे भाइयों की पत्नियों से अपने लिए सन्तान प्राप्त करूँ?''

''यह प्राचीन प्रथा है, जो ऋषियों द्वारा अनुमोदित है।'' ब्रह्मिष्ठ ने कहा।

गांगेय का चेहरा तमतमा उठा। बड़ी कठिनाई से उन्होंने अपने क्रोध को नियन्त्रित किया और बोले, ''मैं काशी की राजकुमारियों से पुत्र उत्पन्न करूँ जिन्हें मैं अपनी पुत्रियों के समान समझता हूँ? नहीं, नहीं, ऐसा तो मैं सोच भी नहीं सकता!''

''कभी-कभी जीवित बचे भाई का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह वंशबेल बनाए रखे। वेदों का कहना है कि वंशवृक्ष को उखड़ने मत दो।'' ब्रह्मिष्ठ ने कहा।

महाबाहु के हृदय में आशा जाग उठी। उन्होंने तुरन्त ही कहा, ''मेरे परिवार में एक बार नियोग का प्रयोग हो चुका है, मेरे दादा का जन्म इसी पद्धति से हुआ था।''

गांगेय ने आघात से सँभलते हुए दृढ़ता से कहा, ''नहीं, मैं यह नहीं करूँगा। नियोग विवाह ही है।''

आचार्य विभूति ने शान्ति से समझाने का प्रयत्न किया, ''नहीं राजकुमार, नियोग विवाह नहीं है। आप यह अपनी वासना-पूर्ति के लिए नहीं करते हैं बल्कि

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पितरों का ऋण चुकाने के लिए करते हैं। विवाह और नियोग में यों बड़ा अन्तर है। जिस कुल में पितरों को तर्पण देनेवाला उत्तराधिकारी नहीं होता है वह कुल नरक में जाता है।"

गांगेय ने सिर हिला दिया।

आचार्य विभूति ने आगे कहा, "राजकुमारियाँ मात्र कुल की रक्षा के लिए आवश्यक विधि पूरी करने हेतु ही अपनी देहों का अर्पण करेंगी।"

गांगेय ने अपने रोष को नियन्त्रित करने के लिए होंठ भींचे, "आप जैसा कर रहे हैं, वैसा करने के लिए भी मैं राजकुमारियों का स्पर्श नहीं करूँगा। अपनी प्रतिज्ञा के साथ मैं छल नहीं कर सकता।"

ब्रह्मिष्ठ ने कहा, "आपकी प्रतिज्ञा विवाह न करने की है, लेकिन नियोग तो विवाह है ही नहीं।"

गांगेय ने सिर हिलाया और कहा, "नियोग विवाह का ही एक रूप है।"

आचार्य विभूति ने कहा, "गांगेय, आपके दुख और आत्मसंघर्ष को देख-देखकर हम कम दुखी नहीं हैं, लेकिन यदि आप हमारे सुझाव पर गहराई से विचार करेंगे तो पाएँगे कि इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय है ही नहीं।"

गांगेय ने निर्णयात्मक रूप में कहा, "विचार करने की मुझे तनिक भी आवश्यकता नहीं है। मैं जानता हूँ कि यदि मैं अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहा तो इससे अनेक संकट पैदा हो जाएँगे। इसका एकमात्र उपाय यही है कि मेरा जीवन अब ऐसा हो कि आनेवाले वर्षों में राजसिंहासन पर जो बैठे उसकी शक्ति कम न हो और धर्म की स्थापना हो, प्रसार हो।"

माता सत्यवती ने पल्लू से चेहरा ढँक लिया ताकि कोई उनके चेहरे पर व्यक्त हुई वेदना का भाव देख न सके।

"मैं आप सभी को वचन देता हूँ कि धर्म की रक्षा के लिए मैं और भी अधिक प्राणपण से प्रयत्नशील रहूँगा।" गांगेय ने कहा।

"पर यदि कोई सम्बन्धी राजगद्दी पर बैठ गया तो आपकी माता की क्या दशा होगी, इसका तो विचार करो।" ब्रह्मिष्ठ ने कहा।

"माँ के बारे में भी मैंने बहुत सोचा है।" गांगेय ने कहा। फिर थोड़ा रुककर वे पुनः बोले, "जब तक मैं जीवित रहूँगा, तब तक माँ का गौरव और अधिकार बनाए रखूँगा। सत्ता में न रहते हुए भी जीते-जी मैं यही ध्यान रखूँगा कि माता को पूर्ववत् आदर और निष्ठा प्राप्त होते रहें। माता कुरुओं की कुलदेवी हैं और जब तक जीवित रहेंगी, कुरुओं की कुलदेवी बनी रहेंगी।"

माता अभी चुप बैठी थीं। उन्होंने चेहरे से पल्लू हटाया और काँपती हुई आवाज में कहा, "गांगेय, तूने मुझे प्रेम और आदर दिया है, लेकिन मेरे या

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

काशीराज की कन्याओं के लिए तुझे किसी प्रकार की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है।'' इसके बाद उन्होंने आगे कहा, ''प्रभु ने मुझे उचित दंड दिया है। पत्नी के रूप में आर्यपुत्र को मैं कोई ऐसी सन्तान देने में सफल नहीं हो सकी जो उनका तर्पण कर सके।'' माता सत्यवती ने सिर उठाया। उनका चेहरा लाल हो रहा था, आँखों के अश्रु सूख चुके थे। दीनता या असहायता का भाव नाम को भी नहीं था। उन्होंने गर्वपूर्वक कहा, ''मुनि पराशर का अग्नि-संस्कार जहाँ हुआ था, मैं वहाँ गोधूलि आश्रम में जाकर बस जाऊँगी, और काशीराज की कन्याओं को भी अपने साथ ले जाऊँगी।''

यह सुनकर सभी लोग स्तब्ध रह गए! किसी को भी नहीं सूझा कि क्या कहे।

माता सत्यवती अपने आसन से उठ खड़ी हुईं और प्रासाद के उस भाग से बाहर निकलने से पहले वे बालमुनि के पास जाकर रुक गईं। क्षण-भर खड़े रहकर उन्होंने उनसे कहा, ''कृष्ण, मुझे गोधूलि ले चलना।''

'माँ चली जाए तो!'...

माता सत्यवती कक्ष से बाहर चली गईं। दावी और वाटिका भी उनके पीछे-पीछे चली गईं। सभी को ऐसा लग रहा था मानो उनके पाँवों-तले की धरती खिसक रही हो।

राजकुमार गांगेय, विद्वान श्रोत्रियगण और कुरु-सरदार एक-दूसरे की ओर देख रहे थे। सभी किंकर्तव्यविमूढ़-से हो गए थे।

इस पूरे घटनाक्रम में किसी ने कल्पना तक नहीं की थी कि माता ऐसा रुख अपनाएँगी। सम्राट शान्तनु का जो वंशज न हो, उस पर आश्रित होकर जीना उन्हें पसन्द न था, यह माता ने स्पष्ट कर दिया। उनकी यह अभिव्यक्ति वज्रपात के समान थी जिसे देखकर सभी स्तब्ध रह गए थे।

गांगेय के सामान्यतया कठोर दिखनेवाले चेहरे पर चिन्ता की रेखाएँ उभर आई थीं। सभी जानते थे कि यदि माता ने हस्तिनापुर छोड़ दिया तो नगर पर कैसा संकट छा जाएगा।

कुरुओं की यह कुलदेवी यदि चली गई तो नगर के प्रजाजन दुर्भाग्य में फँसकर गांगेय को गालियाँ देंगे। यदि माता गोधूलि आश्रम में जाकर रहने लगीं तो लोग उनकी प्रतिज्ञापालन की दृढ़ता कभी क्षमा नहीं करेंगे।

कुरु-सरदार और उनके परिवारवाले परम्पर अविश्वास और ईर्ष्या में डूबे होने

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पर भी इससे सहमत थे कि माता सत्यवती सभी की भाग्यदेवी हैं। कई बार उन्होंने कठिनाइयों में फँसे लोगों की सहायता की थी। आपस के झगड़ों को उन्होंने अपने स्नेह और सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार से शान्त किया था।

द्वैपायन के अतिरिक्त सभी के चेहरों से गांगेय के बर्ताव के प्रति असन्तोष व्यक्त हो रहा था। सभी अनुभव कर रहे थे कि हस्तिनापुर पर आए इस संकट का मूल गांगेय ही हैं।

गांगेय अपनी माता को भलीभाँति जानते थे। माता न्यायप्रिय और समझदार थीं। विवेक और गर्व के साथ झुकने की कला में वह पारंगत थीं। लेकिन कभी-कभार जब वह कोई निर्णय कर लेती थीं तो फिर उस फैसले को बदल पाना सम्भव नहीं था।

इस विकट चुप्पी को सबसे पहले आचार्य विभूति ने भंग किया। खाँसकर धीरे-धीरे वे बोले, "समस्या इस सीमा तक गम्भीर बन जाएगी ऐसी तो हममें से किसी को आशा नहीं थी।"

आचार्य विभूति के 93 वर्षीय पिता और तीन पीढ़ियों तक कुरुओं के पुरोहित रह चुके ब्रह्मिष्ठ ने गांगेय की ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखा। ब्रह्मिष्ठ इस आयु में भी अद्भुत रूप से सजग थे और श्रुति का एक शब्द भी भूले नहीं थे।

जब उनकी बात नहीं मानी जाती थी, तब वे बहुत रुष्ट होते थे। विजय और तिरस्कार-भरे मिश्रित भाव को व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा, "गांगेय, मेरी राय न मानने का परिणाम देखा तुमने?"

"पूज्य आचार्य, मैं आपसे पूर्णतया सहमत हूँ।" अतिरथी सुकेतु ने कहा, "माता सत्यवती हस्तिनापुर छोड़कर जा रही हैं, यदि यह बात फैल गई तो कुरुगण क्रोध से आगबबूला हो जाएँगे। पिछले पन्द्रह वर्षों से सभी उन्हें माता मानते आए हैं। यह खेल औपचारिकता नहीं है। वह कुरुओं की माता ही नहीं अन्नपूर्णा हैं।"

"तुम सही कहते हो, सुकेतु!" महाबाहु ने कहा, "यदि ऐसा हो गया तो हस्तिनापुर का प्रत्येक कुटुम्ब यही समझेगा कि कुरुओं को कोई शाप मिला है।"

गांगेय ने मुनि द्वैपायन की तरफ देखा और पूछा, "मुनि द्वैपायन, अब मेरे लिए क्या आज्ञा है?"

द्वैपायन बराबर शान्त बैठे थे। बोले, "कुरुओं के राज-काज में हस्तक्षेप करना मेरे लिए उचित नहीं है। मैं तो यहाँ केवल माता के आज्ञापालन के लिए आया हूँ।"

दावी कमरे में आई और जल्दी-जल्दी सभी को प्रणाम करने लगी। सभी का वन्दन करने की उसकी यह मुद्रा बताती थी कि जिन लोगों ने माता को हस्तिनापुर छोड़ने की विवशता पैदा की है, वे लोग प्रणाम या वन्दना के पात्र नहीं हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

द्वैपायन के पास आकर उसने कहा, "पूज्य मुनि, मेरी माता आपसे और मन्त्री कौंडिल्य से मिलना चाहती हैं।"

द्वैपायन और कौंडिल्य खड़े हो गए और दावी के साथ कक्ष से बाहर चले गए।

आचार्य विभूति के विषाद का पार न था। समस्या धर्म की थी और राजपुरोहित के नाते मार्गदर्शन करने का दायित्व उनका था। उन्होंने राजकुमार गांगेय की ओर मुड़कर पूछा, "गांगेय, आपका अब क्या विचार है? अब इस सारी समस्या का हल आपके हाथों में है; या तो आप अपनी प्रतिज्ञा भंग करो या माता को गोधूलि जाने दो।"

गांगेय ने सिर उठाकर ऊपर देखा। उनके होंठ भिंचे हुए थे। बोले, "पूज्य आचार्य, देवताओं ने मेरे साथ अत्यधिक क्रूर परिहास किया है, वे मेरी एक के बाद एक अग्नि-परीक्षा ले रहे हैं।"

"इस संकट से उबरना आपके लिए तो एकदम आसान है।" आचार्य ने कहा।

उदास मन से धीमे स्वर में गांगेय ने कहा, "आप सच कहते हैं। माता यदि हस्तिनापुर छोड़कर चली गईं तो लोग तो मुझे ही उत्तरदायी ठहराएँगे। बड़ी उलझन है, गुरुदेव!"

"इस विपदा के सृजन में तुम्हीं सब लोगों का योगदान रहा है। अब तो जैसे-तैसे हमें इसका सामना करना ही होगा।" ब्रह्मिष्ठ ने रुष्ट स्वर में कहा।

"पिताजी, आप माता को समझाइए तो सही! सम्भव है वे आपकी बात मान लें और गोधूलि जाने का विचार त्याग दें।" आचार्य विभूति ने पिता ब्रह्मिष्ठ से निवेदन किया।

"आप सब लोग जब थक जाएँ, तब मेरे पास आना, मैं आपको रास्ता बताऊँगा।" ब्रह्मिष्ठ ने कहा।

"कौन-सा रास्ता, पूज्य आचार्य?"

"अभी मैं क्यों अपना समय नष्ट करूँ? मैं जानता हूँ कि तुम या अन्य कुरुगण उसे मानेंगे नहीं। तो फिर जाओ, तुम्हारे लिए सर्वनाश का रास्ता खुला है।" ब्रह्मिष्ठ ने कहा।

"पूज्यवर, माता को स्वीकार हो, आपका ऐसा कोई भी सुझाव मानने को मैं तैयार हूँ। बात यही है कि मुझे अपनी प्रतिज्ञा भंग न करनी पड़े।" गांगेय ने कहा।

"लेकिन ऐसा कोई रास्ता है क्या?" विभूति ने पिता से पूछा।

"रास्ता तो मैं बताऊँ लेकिन आपमें से कोई भी उसे स्वीकार करेगा नहीं।" ब्रह्मिष्ठ ने कहा।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"मैं कोई भी रास्ता स्वीकार करने को तैयार हूँ..." सुकेतु ने कहा, "मुझे स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि यदि माता हस्तिनापुर छोड़ दें और यदि गांगेय अपनी प्रतिज्ञा पर अड़ा रहे तो महाबाहु, आपको या आपके पुत्र को राजगद्दी पर बिठाना ही पड़ेगा, लेकिन तब कुरुओं में गृहयुद्ध भी छिड़े बगैर रहेगा नहीं।"

"ऐसा न हो सके, ऐसा भी कोई उपाय है क्या? गांगेय ने पूछा और फिर वे कोई हल ढूँढ़ने की चिन्ता में डूब गए।

"एकमात्र नियोग ही है।" आचार्य विभूति ने कहा, "लेकिन राजकुमार तो इस पर विचार करने को तैयार ही नहीं हैं।"

"लेकिन इस पद्धति की आलोचना भी तो कई ग्रन्थों में हुई है?" गांगेय ने कहा।

"मैं जानता हूँ," विभूति ने कहा, "लेकिन कितने ही ऋषियों ने कुटुम्ब की वंश-रक्षा तथा पितरों के तर्पण हेतु इसका समर्थन भी किया है।"

'आपकी आज्ञा शिरोधार्य है'

ब्रह्मिष्ठ की काँपती हुई आवाज में एक अनोखी शक्ति आ गई। उनका दुर्बल शरीर उत्तेजना से हिल उठा। उन्होंने कहा, "आप तर्क के जाल में डूबो मत। मुझे सीधा उत्तर दो। काशीराज की कन्याओं को नियोग द्वारा पुत्र प्राप्त हो, यह आपको पसन्द है कि नहीं?"

राजकुमार गांगेय तथा अन्य सभी ने सहमति में सिर हिलाया।

"हम तो इससे सहमत ही हैं, केवल राजकुमार गांगेय ही इसके लिए तैयार नहीं हैं।" आचार्य विभूति ने कहा।

"आप सभी भावी संकट को जानते हैं, लेकिन आप कायर हो और इसका सामना करने के लिए तैयार नहीं हो।" ब्रह्मिष्ठ ने कहा, "कुरु-सरदारो, आपकी क्या राय है, क्या कुरुगण नियोग को स्वीकार कर लेंगे?"

वे लोग धीरे-से हँस पड़े।

"कुरुगण शायद शुरू में नियोग का विरोध करें, लेकिन अन्त में सहमत हो जाएँगे।" महाबाहु ने कहा।

वृद्ध ब्रह्मिष्ठ हँस पड़े, "वे सौतेले भाई का नियोग स्वीकार करने को तो तैयार हैं, लेकिन क्या वे अपने मामा से—या मातृ-पक्ष के भाई या किसी अन्य सम्बन्धी से नियोग स्वीकार कर लेंगे?"

ब्रह्मिष्ठ का संकेत किसकी ओर था, यह सभी समझ गए और हरेक ने

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अपना सिर हिलाया। केवल गांगेय ही ब्रह्मिष्ठ द्वारा बताए गए इस नए उपाय के बारे में चर्चा करने को उत्सुक दिखे।

"मुझे स्पष्ट उत्तर दीजिए, मातृ-बन्धु और कुरुरानियों से होनेवाली सन्तानों को क्या सभी कुरुगण सम्राट शान्तनु के उत्तराधिकारियों के रूप में स्वीकार कर लेंगे?" ब्रह्मिष्ठ ने पूछा।

आचार्य विभूति ने कुरु-सरदारों की ओर मुड़कर कहा, "आप इस बात का आशय समझे कि नहीं? वे हस्तिनापुर के शासक सम्राट शान्तनु के रक्त से उत्पन्न हुए उत्तराधिकारी नहीं होंगे, वे उस माता के वंशज होंगे जो विवाह के नाते कुरु हैं। कुरुगण इसको क्या स्वीकार करेंगे?"

"यह कहना मुश्किल है।" महाबाहु ने कहा।

"हठी और मूर्ख की मैं कैसे सहायता कर सकता हूँ—गांगेय भले ही अपनी प्रतिज्ञा रखें, राजमाता भले ही हस्तिनापुर छोड़कर चली जाएँ और कुरुगण चाहे आपस में ही लड़ मरें!" ब्रह्मिष्ठ ने अब तेवर बदल लिए थे, "विभूति, मुझे सहारा दे। जिन्हें मेरी राय की आवश्यकता नहीं, मैं भी उन्हें उसका सुपात्र नहीं मानता।" ऐसा कहकर ब्रह्मिष्ठ जाने को तैयार हुए।

"यों रुष्ट होकर न जाइए आचार्य!" गांगेय ने कहा, "मैं कुरुओं को समझाऊँगा। यह समय बड़े संकट का समय है।"

"देखो," ब्रह्मिष्ठ ने कहा, "एक बात याद रखना। यदि तुम हस्तिनापुर की सत्ता को सुरक्षित रखना चाहते हो और चाहते हो कि हस्तिनापुर धर्म की रक्षा करे तो तुम्हें मेरा सुझाव स्वीकार कर लेना चाहिए, नहीं तो नर्क के द्वार हमारे सबके लिए खुले पड़े हैं।"

"हम आपका सुझाव स्वीकार कर लेंगे।" गांगेय ने कहा।

"राजमाता क्या इस बात को स्वीकार करेंगी? राजमाता के रिश्ते से जो भाई है क्या वह स्वयं इसे स्वीकार करेगा?" ब्रह्मिष्ठ ने पूछा और कहा, "इसकी चिन्ता अब तुम्हें करनी है।"

द्वैपायन कक्ष में वापस आए। उन्होंने कहा, "पूज्य माता ने मन्त्री कौंडिन्य को यात्रा की तैयारी करने का आदेश दे दिया है। गोधूलि आश्रम जाने के लिए कल प्रातः हम प्रस्थान करेंगे।"

"उनके मन में परिवर्तन की क्या कोई आशा नहीं है?" महाबाहु ने पूछा।

"नहीं, कोई आशा नहीं है।" द्वैपायन ने कहा।

"द्वैपायन, आपको उनके मन में परिवर्तन के लिए कोई प्रयत्न करना होगा।" गांगेय ने कहा।

"आप जानते ही हैं राजकुमार कि माता एक बार जो संकल्प कर लेती हैं,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उसके बाद निर्णय बदलती नहीं। उन्होंने कहलाया है कि मुझे कोई समझाने या मनाने के लिए न आए। वे यहाँ आर्यपुत्रों तथा कुरुओं को सुखी करने आई थीं, यहाँ रहकर अब उनको दुखी नहीं देख सकतीं।'' द्वैपायन ने उत्तर दिया।

''हमें एक ही उपाय ढूँढ़ना है।'' आचार्य विभूति ने कहा, ''इसके अनुसार न तो गांगेय को अपनी प्रतिज्ञा तोड़नी पड़ेगी और न माता को हस्तिनापुर छोड़ना पड़ेगा।''

''बहुत खूब।'' द्वैपायन ने व्यंग्य में कहा।

''बिलकुल सही बात है, हम ऐसा उपाय ढूँढ़ने में सफल हो गए। अब माता को यहाँ ले आइए। हम उनके समक्ष इन सभी प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत कर देंगे।'' आचार्य विभूति ने कहा।

द्वैपायन गए और थोड़ी देर बाद माता सत्यवती को साथ लेकर वापस लौट आए। उनके साथ वाटिका और दावी भी थीं।

''हमें रास्ता मिल गया है।'' गांगेय ने कहा।

''मैंने तो अपना रास्ता बना ही लिया है।'' माता ने उत्तर दिया।

''माता, कृपा करके मेरी बात सुनिए।'' गांगेय ने कहा, ''यदि आपको हमारा ढूँढ़ा हुआ हल स्वीकार हो तो मुझे अपनी प्रतिज्ञा नहीं तोड़नी पड़ेगी और आप भी हमारे साथ यहीं रह सकेंगी।''

''यह चमत्कार किस प्रकार हो गया?'' माता ने पूछा। गांगेय ने जिस आश्वस्त भाव से यह कहा उस पर उन्हें आश्चर्य हो रहा था।

''सम्राट शान्तनु का वंश नियोग के द्वारा चलता रहे, ऐसा हमने निर्णय किया है।'' गांगेय ने कहा।

''लेकिन तुम तो इस सुझाव को स्वीकार करने को मना करते हो?'' माता ने पूछा।

आचार्य विभूति समझाते हुए बोले, ''कुरु रानियों के सन्तान होगी, गांगेय से नहीं, मुनि द्वैपायन से।''

वे क्षण-भर रुके और फिर आगे बोले, ''ये विचित्रवीर्य के माता के रिश्ते से भाई हैं। आप कुरुओं की कुलदेवी बनी रहो, यही हमारी आपसे प्रार्थना है।''

द्वैपायन इस अनपेक्षित सुझाव को सुनकर स्तब्ध रह गए।

आचार्य विभूति ने जो कहा था, उसे पूरी तरह से समझने के लिए राजमाता ने क्षण-भर अपने ललाट पर हाथ रखा और बोलीं, ''आपकी बात मुझे अभी पूरी तरह से समझ में नहीं आई। आप क्या यह कहना चाहते हैं कि द्वैपायन काशीराज की कन्याओं के साथ नियोग करके पुत्र उत्पन्न करें? पर इसका क्या भरोसा कि कुरुगण उन सन्तानों को आर्यपुत्र के उत्तराधिकारी के रूप में स्वीकार कर ही लेंगे?

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कैसे विश्वास कर लें कि गद्दी पर वे सन्तान बैठ भी सकेंगी?"

"मैं आपको यह वचन देता हूँ माता!" गांगेय ने कहा, "द्वैपायन और काशीराज की कन्याओं से जो सन्तान होगी वही हस्तिनापुर की गद्दी पर बैठे, इसका ध्यान मैं रखूँगा।"

"द्वैपायन को क्या यह स्वीकार है?" माता ने पूछा।

"नहीं, मुझे यह स्वीकार नहीं है।" द्वैपायन ने उत्तर दिया।

"और जाबालेया का इस विषय में क्या विचार है? क्या तू इससे सहमत है?" माता ने वाटिका की ओर देखकर पूछा। वाटिका ने दृष्टि नीची रखते हुए कहा, "इस विषय में मुझे विचार करना पड़ेगा।"

"द्वैपायन के पुत्र आर्यपुत्र के सिंहासन पर जब बैठेंगे, तो कुरुगण क्या कहेंगे?" माता ने पूछा।

"मैं और मेरा भाई सुकेतु एक बात में सहमत हैं कि हमारे पुत्रों में से यदि कोई राजगद्दी पर बैठ गया तो गृहयुद्ध जरूर होगा।" महाबाहु ने कहा, "कुरुओं को हमारा निर्णय स्वाभाविक नहीं लगेगा, लेकिन हमने बचपन से ही सारा जीवन सम्राट शान्तनु के साथ बिताया है और सम्राट शान्तनु के समक्ष हम शपथ ले चुके हैं कि हस्तिनापुर को संसार की एक अजेय शक्ति बनाने में हम उनकी सहायता करेंगे और जब भी कोई संघर्ष होगा, उसमें हम उनका साथ देंगे। इसलिए आज जब वे पितृलोक में चले गए हैं, तब हम सहायता से हाथ खींच लें, यह कैसे हो सकता है?"

"आपकी राय में क्या कुरुगण इस सुझाव को स्वीकार कर लेंगे?" आचार्य विभूति ने पूछा।

"हाँ," महाबाहु ने कहा, "यदि हम दोनों परस्पर सहमत रहेंगे तो हमारे पुत्रों में भी विरोध नहीं होगा।"

"यदि वे हमारी आज्ञा की अवहेलना करेंगे तो हम उनसे सम्बन्ध विच्छेद कर लेंगे और वे हमारी किसी भी सम्पत्ति के अधिकारी नहीं हो सकेंगे।" सुकेतु ने कहा।

गांगेय ने चिन्तित दृष्टि से द्वैपायन की ओर देखा और कहा, "अब सारा दारोमदार आपके फैसले पर निर्भर है।"

द्वैपायन ने कहा, "मैं कल सवेरे अपना निर्णय निवेदन करूँगा।"

ब्रह्मिष्ठ ने आँखों पर हाथ का छज्जा बनाकर द्वैपायन की ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखा और काँपते हाथों को ऊँचा करके संकेत किया कि वे भी कुछ कहना चाहते हैं। चारों ओर शान्ति छा गई। यह वृद्ध कोई नया धमाका करेगा, ऐसा सबको प्रतीत हुआ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"द्वैपायन, सुन!" उन्होंने कहा, "इसमें किसी कल का सवेरा आनेवाला नहीं है। जो निर्णय लेना है अभी, इसी घड़ी और यहीं पर लेना होगा।"

वृद्ध महाशय थोड़े रुके और फिर बोले, "ईश्वर चमत्कार पर चमत्कार करता चला जा रहा है—उसी ने मुनि पराशर को भी देवता-जैसा पुत्र दिया; इस पुत्र को आर्यावर्त का प्रसिद्ध श्रोत्रिय बनाया; धर्मक्षेत्र की पुनर्स्थापना का काम उसे सौंपा; इस श्रोत्रिय की माता को एक मछुआरे की कन्या से उठा महारानी बना डाला, मिलने की जहाँ आशा नहीं थी, वहीं वर्षों बाद माता और पुत्र का मिलन आयोजित किया और सम्राट शान्तनु-जैसा इसको रक्षक दिया—मात्र रक्षक ही क्यों, पति भी।"

ब्रह्मिष्ठ ने गला साफ करते हुए आगे कहा, "हमारे श्रोत्रिय, कुरु, आर्यावर्त और स्वयं धर्म एक गम्भीर संकट के कगार पर पहुँच गए हैं। कुरुओं में फूट पड़ेगी और उनका विनाश होगा। खाली बातों से उसे आप बचा नहीं सकेंगे। इसको बचाना केवल तुम्हारे ही हाथ में है द्वैपायन!"

ब्रह्मिष्ठ फिर थोड़ा रुके और बोले, "अब हमें सदा के लिए आज ही यह निर्णय कर लेना है कि तू नियोग के लिए सहमत है कि नहीं? इसके लिए सहमत होकर ही तू कुरुओं का उद्धार कर सकेगा और तभी धर्म की स्थापना भी हो सकेगी, नहीं तो अपने अहंकार और हक से तू कुरुओं के विनाश को न्योता देगा और धर्म के विनाश का रास्ता भी खोलेगा; इसके बाद इस दुनिया में न ब्रह्मतेज रहेगा और न क्षात्रतेज!" वृद्ध श्रोत्रिय ब्रह्मिष्ठ सीधे तनकर बैठ गए और निर्णयात्मक स्वर में आगे बोले, "इसमें राजमाता को, गांगेय को, वाटिका को या तुझको कुछ जानना नहीं है। जो जानना था वह ईश्वर ने जान लिया है। उन्होंने ही नियोग का मार्ग बताया है। तुम्हें पसन्द हो चाहे न हो, देवताओं ने पसन्द कर लिया है।"

ब्रह्मिष्ठ रुके और गहरी साँस लेकर बोले, "मुझे सीधा उत्तर दो, नियोग का काम तुम करोगे कि नहीं?" उनकी आवाज ऊँची हो गई और उसमें आदेश की ध्वनि झंकृत हो रही थी। युवा वय का तेज उनके वृद्ध चेहरे पर आने लगा था।

द्वैपायन ने मस्तक झुकाया और झिझकते हुए स्वर में कहा, "पूज्य आचार्य, आपकी आज्ञा को शिरोधार्य करता हूँ।"

शुक जहाँ समस्या खड़ी करता है

समय तीव्र गति के पंखों पर उड़ता चला गया।

द्वैपायन का अधिकांश समय श्रौतसत्र में बीतता था और वाटिका को घर की

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

व्यवस्था में लगभग सारा समय देना पड़ता था। बीच-बीच में माता सत्यवती के साथ रहने के लिए भी उसको हस्तिनापुर जाना पड़ता था। वाटिका स्वभाव से सुशील और साहसी स्त्री थी। जब भी कोई कठिनाई आती, तो राजमाता को वाटिका की सलाह विश्वसनीय लगती।

कुरुगण राजमाता से प्रेम करते थे। जब उन्होंने सुना कि माता हस्तिनापुर छोड़कर जा रही हैं तो वे स्तब्ध रह गए। अग्रणी कुरुओं की पत्नियाँ राजमहल में राजमाता को समझाने के लिए गईं। तभी उन्हें यह खुशी का समाचार मिला कि राजमाता अब हस्तिनापुर छोड़कर नहीं जाएँगी। इतने-इतने लोग उनको चाहते हैं, यह जानकर राजमाता को भी आनन्द हुआ। उन्हें सन्तोष हुआ कि कुरुओं के उत्थान के लिए उन्होंने जो कुछ किया था, वह व्यर्थ नहीं गया है। गांगेय ने जो प्रतिज्ञा की थी और उसे जिस दृढ़ निश्चय के साथ उन्होंने निभाया था, उससे लोग उन्हें 'भीष्म' कहने लगे थे। भीष्म, अर्थात् भयंकर प्रतिज्ञा का पालन करनेवाला। और वे इस नाम के वास्तव में पूर्णतया उचित पात्र थे। उन्होंने उपद्रवी कुरु-सरदारों का दमन करके उन्हें शान्त कर दिया था, आश्रम की रक्षा की थी और धर्ममय जीवन की प्रतिष्ठा की थी। उन्होंने अपने दृढ़ शासन के द्वारा कुरुओं में एकता की स्थापना की थी। उन्होंने क्षात्रतेज और ब्रह्मतेज दोनों का समन्वय किया, युद्धकाल में जो कुरु-सरदार धर्ममय जीवन को भूल बैठे थे, अब वे पुनः धर्म की ओर लौटने लगे थे।

श्रुति-मन्त्रों का संकलन और वर्गीकरण एक विकट काम था, लेकिन द्वैपायन के निर्देशन में प्रत्येक मन्त्र का रूप निश्चित हो गया था और उसका क्रम निश्चित करके स्वर के बलाघात को भी स्पष्ट रूप प्रदान कर दिया गया था।

द्वैपायन ने पैल को ऋग्वेद का संग्रह और लेखन करने का काम सौंपा, जैमिनी को सामवेद और वैशम्पायन को यजुर्वेद के संकलन को कहा। सुमन्तु को अथर्वण-मन्त्रों को श्रुति के साँचे में प्रतिष्ठित करने का कार्यभार मिला। प्रत्येक के साथ काम करने के लिए कई श्रोत्रिय नियुक्त किए गए थे।

श्रौतसत्र चलता रहा। 12 वर्ष तक के इस समय में धर्मक्षेत्र में सम्पूर्ण आर्यावर्त के कोने-कोने से श्रोत्रिय आते रहे। कई आश्रमों के आचार्य यहाँ श्रुति के प्रामाणिक रूप को समझने और जानने के लिए आया करते थे, द्वैपायन से वेदमन्त्रों के क्रम और स्वर का बलाघात सीखते और उसे अपने विद्यार्थियों को सिखाया करते थे।

वेदमन्त्रों को कंठस्थ करना, उनका शुद्ध उच्चारण करना और समझना, बलाघात के साथ उनका सस्वर गान करना, यह सरल काम नहीं था। उदासीनता या असावधानीवश कोई भूल हो जाए तो श्रुति की दिव्यता समाप्त हो जाएगी और

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ऐसी भूल करनेवाला अपने श्रोत्रिय-पद के स्तर से वंचित माना जाएगा, ऐसा भाव लेकर वे लोग इस श्रौतसत्र में सम्मिलित होते थे।

श्रौतसत्र में शिक्षा प्राप्त करके श्रोत्रियगण अपने-अपने आश्रमों में जाकर वेदों के विविध रूपों का प्रचार करते या अपना कोई नया आश्रम शुरू करते। इस प्रकार द्वैपायन की वेद-व्यवस्था चारों ओर फैलती जा रही थी।

द्वैपायन के अगाध प्रयत्नों से कई आश्रम अब विद्या के केन्द्र बन गए थे। वेदों की प्रतिष्ठा पुनर्स्थापित हुई थी। श्रौतसत्र के अन्तिम दिन सभी श्रोत्रियों ने द्वैपायन का स्वागत किया और उन्हें 'वेद-व्यास' की पदवी प्रदान की।

इतना सब होने के बाद भी कुरुओं के अनिष्टकारी ग्रह अभी शान्त नहीं हुए थे। माता सत्यवती और गांगेय दोनों को एक के बाद एक नई विपत्तियों का सामना करना पड़ रहा था। राजमाता की ऐसी मानसिक स्थिति में सहारा देने और उनका ध्यान रखने का कठिन काम वाटिका के जिम्मे आ जाया करता था।

अम्बा का प्रकरण समाप्त हुआ नहीं कि नियोग की समस्या ने उन्हें आ घेरा। यह समस्या सुलझी तो इसने कई और उलझनें पैदा कर दीं। अम्बिका के एक स्वस्थ और हृष्टपुष्ट पुत्र उत्पन्न हुआ। पर माता ने जब उसको पहले-पहल उठाकर अपने हाथों में लिया तो उनकी आँखों से आँसू बह निकले क्योंकि वह अन्धा था। प्राचीन कुल-परम्परा के अनुसार अन्धा बालक राजगद्दी पर नहीं बैठ सकता था। किन्तु अम्बिका उनके आँसू देखकर दुखी न हो जाए, इसलिए उन्होंने साड़ी के पल्लू से आँसुओं को छुपा लिया और बच्चे को छाती से लगा लिया।

"इस बालक का नाम क्या रखेंगे अम्बिका?" माता ने पूछा।

"जो आप पसन्द करें।" अम्बिका ने कहा।

"मैं तो इसे धृतराष्ट्र कहूँगी। राष्ट्र को धारण करनेवाला!" माता ने कहा।

अम्बिका के आनन्द का पार नहीं था। उसने कहा, "हाँ, मुझे विश्वास है कि यह जरूर राष्ट्र को धारण करेगा।"

अम्बालिका के भी पुत्र हुआ। लेकिन वह दुबला-पतला और पीतवर्णी था। इसलिए उसका नाम पांडु रखा गया। पांडु अर्थात् पीला। वह अधिक दिनों तक जी सके, ऐसा लगता नहीं था।

राजमाता ने अम्बिका को फिर एक बार द्वैपायन से नियोग का सुझाव दिया। लेकिन पता नहीं क्यों, अम्बिका ने यह सुझाव पसन्द नहीं किया लेकिन आज्ञा थी, इसलिए उसकी खानापूरी करने के लिए अपनी दासी को द्वैपायन के पास भेज दिया। दासी आनन्द-मग्न हो गई। मुनि के साथ रात बिताना अपने आपमें गौरव की बात थी। उसे भी मुनि से पुत्र प्राप्त हुआ, जिसकी आँखों में चमक थी, स्वस्थ और निरोग था। उसका नाम विदुर रखा गया।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

श्रौतसत्र पूरा होने पर द्वैपायन ने अगले 12 वर्ष तक आर्यावर्त के परिभ्रमण की योजना बनाई। उन्होंने निर्णय किया कि वे सभी आश्रमों में घूम-घूमकर वेदों का प्रचार करेंगे। हरेक को श्रुति का स्वरों के सही बलाघात सहित ज्ञान देना और धर्ममय जीवन का प्रचार करना ही उनका उद्देश्य था।

चातुर्मास धर्मक्षेत्र में करना और शेष समय 12 वर्ष तक लगातार फिरते रहना, ऐसा द्वैपायन ने फैसला किया। उनके साथ 10 शिष्य भी चले। मार्ग में उनके साथ और भी शिष्य जुड़ गए।

गंगा, सरस्वती और यमुना के तटों पर बसनेवाले आश्रमों की उन्होंने यात्रा की। हरिद्वार और काशी के बीच बसे अनेक गाँवों के लोगों तथा वहाँ के मुखियाओं ने उनको निमन्त्रित किया। द्वैपायन जहाँ भी जाते वहाँ श्रोत्रियगण उनका गुरु के समान आदर करते। सामान्यजन उनको दैवी विभूति के रूप में पूजते थे और उनका आशीर्वाद पाने को उत्सुक रहते थे।

द्वैपायन आश्रमवासियों को वेदों का शुद्ध आचरण करना सिखाते। श्रोत्रिय और आश्रमवासियों के समक्ष वे अपने शिष्यों के तपस्वी जीवन का आदर्श प्रस्तुत किया करते थे। इसके साथ ही वे लोगों को यज्ञोपवीत धारण करते समय ली गई प्रतिज्ञा का स्मरण कराते, गायत्री मन्त्र में निहित गम्भीर भाव का महत्त्व समझाते।

ग्रामवासियों को वे अग्नि-पूजन सिखाते, मन्त्र-विद्या और चमत्कारी वनस्पति के उपयोग से उनके रोग दूर करते। पारिवारिक झगड़ों का समाधान कराते और महिलाओं को पति एवं परिवार के प्रति निष्ठा की प्रेरणा दिया करते। द्वैपायन का किसी आश्रम में आ जाना मात्र आश्रमवासियों के लिए दिव्य अनुभव देनेवाली घटना होती। श्रोत्रियों को संयम की शिक्षा मिलती और सामान्य जनों को इनसे धर्मपरायणता की दीक्षा प्राप्त होती।

द्वैपायन से वाटिका द्वारा प्राप्त पुत्र शुक जब 8 वर्ष का हुआ, तब उसका यज्ञोपवीत संस्कार किया गया। वह जब 12 वर्ष का हुआ तो द्वैपायन ने उसे गोधूलि आश्रम में अपने गुरु-समान आचार्य गौतम के पास भेजा।

वाटिका को पुत्र से बिछुड़ते हुए बड़ा दुख हुआ, लेकिन द्वैपायन का आग्रह था कि शुक को पिता के आश्रम में नहीं बल्कि गुरु के आश्रम में रहकर ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

वाटिका को शुक पर गौरव था। शुक उसके समान ही गौरवर्ण था। वह अद्‌भुत सहजता के साथ वेद-पाठ किया करता था।

वाटिका उस समय की प्रतीक्षा करती थी जब शुक ब्रह्मचर्य जीवन के 12 वर्ष पूरे कर गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करेगा। वह अपनी पसन्द की लड़की के साथ विवाह करेगा, ऐसा वह सोचती थी। लेकिन 12 वर्ष पूरे हो गए फिर भी शुक

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वापस नहीं आया।

एक वर्ष और बीत गया। वाटिका को कुछ समझ नहीं आ रहा था कि वह क्या करे। इस बीच किसी ने कहा कि शुक तो गृहस्थ आश्रम में आने के बजाय सीधे संन्यासी बनने का विचार कर रहा है। सुनते ही वाटिका बहुत व्यथित हुई। उसने तुरन्त ही राजमाता से इस विषय में बात करने का निर्णय किया। राजमाता ने वाटिका को हस्तिनापुर बुलाने के लिए पालकी भेज दी। पूरे रास्ते वाटिका अत्यन्त दुख में डूबी रही। राजमाता के पास पहुँचकर वाटिका उनके चरणों में गिर पड़ी। माता ने उसे उठाकर छाती से लगाया और उसके मस्तक पर हाथ फेरा। माता के हाथ का स्पर्श पाकर उसे कुछ सान्त्वना मिली। घटनाएँ कई घटी थीं और एक-पर-एक विपत्ति आती रही थी, इसके बावजूद राजमाता का लावण्य वैसा-का-वैसा था। उनका स्नेहशील हृदय ऐसा था कि हर किसी को यह विश्वास होता था कि उसे उसमें स्थान प्राप्त हो।

माता ने वाटिका की पीठ पर हाथ रखा फिर उसे अपने पूजा-घर में ले जाकर पूछा, "क्या बात है?"

"शुक वापस नहीं आया," वाटिका ने कहा, "पिछले साल से मैं उसकी प्रतीक्षा कर रही हूँ। वह आए और गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करे, यही कामना है। लेकिन सुनने में आया है कि वह तो अब शादी करेगा ही नहीं।"

"तुमसे यह किसने कहा?"

"कोई श्रोत्रिय गोधूलि आश्रम से धर्मक्षेत्र आया था, उन्होंने ऐसा बताया है।" वाटिका ने उत्तर दिया।

"क्या उसने कोई सन्देश तुम्हें भेजा है कि वह धर्मक्षेत्र में किस कारण नहीं आ रहा है?" राजमाता ने पूछा।

"नहीं, मैंने ही कई सन्देश भेजे पर वह आता ही नहीं। उसने मात्र इतना ही कहलवाया है कि हम चिन्ता न करें, वह यथासमय आ जाएगा। यदि शुक गृहस्थाश्रम त्याग कर देता है तो मेरे सिर पर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ेगा!" वाटिका ने कहा।

"हमारे जीवन में अभी अनिष्ट ग्रहों का प्रभाव बना हुआ है," राजमाता ने कहा, "एक पौत्र अन्धा जन्मा, दूसरा पीला और कमजोर है, अब यह तीसरा संन्यासी बनने की बात कर रहा है!"

"माता, वह घर वापस आए और विवाह करे, कृपया कोई ऐसा उपाय कीजिए," वाटिका ने कहा, "एक अच्छी पत्नी के बिना इसका जीवन कैसे पूर्ण होगा?"

"मैं तुमसे सहमत हूँ। तुम्हें तुरन्त ही द्वैपायन से मिलना चाहिए। वह शुक को हस्तिनापुर आने के लिए समझाएगा। एक बार शुक यहाँ आ जाए फिर तो

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हम भी उसे समझा देंगे। द्वैपायन अभी कहाँ है, इसका तुम्हें कुछ पता है?''

''मुझे कुछ ज्ञात नहीं, लेकिन कुछ दिनों पहले का समाचार है कि मुनि वापस हस्तिनापुर आते हुए गोधूलि जाएँगे और भस्मक्षेत्र की भी यात्रा करेंगे।'' माता ने वाटिका के आँसू पोंछे और कहा, ''रो मत बेटी! हम द्वैपायन को सन्देश भेजेंगे। वह शुक को अवश्य यहाँ ले जाएगा और फिर शुक को समझा भी देगा। दावी जा और कुणिक को बुला ला। कुणिक द्वैपायन को सन्देश भेजने का उपाय कर लेगा।''

वाटिका ने कहा, ''मेरे दुख का पार नहीं है। मुझे श्रेष्ठ पति मिला लेकिन मैं सदैव अकेली रहती हूँ। मुझे श्रेष्ठ पुत्र मिला, लेकिन वह भी संसार छोड़ने की बात करता है।'' वाटिका ने माता की गोद में सिर रख दिया।

''चिन्ता मत कर, हमारी सभी उलझनें समाप्त हो जाएँगी।'' माता ने कहा।

कुणिक अन्दर आया।

''कुणिक, बैठ।'' माता ने कहा और फिर वाटिका से बोलीं, ''कुणिक उपाय ढूँढ़ लेगा। तू अब तनिक भी चिन्ता मत कर।''

माता ने कुणिक को सारी स्थिति बताई और कहा, ''यदि यह लड़का यहाँ आए ही नहीं तो क्या करेंगे?''

''आप चिन्ता मत करो माता।'' कुणिक ने कहा, ''वह युवा है। शायद किसी के बहकावे में आ गया होगा। आपकी अनुमति हो तो मैं गोधूलि जाऊँ और शुक को यहीं ले आऊँ। केवल इतना ही करना होगा कि मुझे गोधूलि जाने के लिए राजकुमार गांगेय की अनुमति लेनी पड़ेगी।''

''ठीक है, गांगेय से कहना कि यह काम अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है!'' माता ने कहा और फिर वाटिका की ओर मुड़कर बोलीं, ''तू चिन्ता बिलकुल मत कर वाटिका, सभी-कुछ ठीक हो जाएगा, यह दायित्व मेरा है! कितनी ही बार, जहाँ भय-जैसा कुछ भी नहीं होता वहाँ हम भीतर भय का अनुभव करते हैं।''

महिषासुर का पुत्र

मुनि द्वैपायन कहाँ होंगे यह ढूँढ़ना कठिन नहीं था। जहाँ-जहाँ होकर मुनि गए थे उन आश्रमों में मन्त्री कुणिक मुनि के प्रभाव की छाप देख सकते थे।

तीव्र गति से चलनेवाली राजकीय नौका ने शीघ्र ही उन्हें जा पकड़ा।

मुनि ने कहा, ''माता सत्यवती ने मुझे सन्देश भेजा है, यह हर्ष की बात है। परसों हम गोधूलि पहुँचेंगे। कुछ महीने पहले जब मैं वहाँ गया था, तो शुक से

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मेरी भेंट हुई थी। आचार्य गौतम शुक की प्रशंसा करते नहीं थकते।''

''पूज्य माता तथा जाबालेया की इच्छा है कि शुक गृहस्थाश्रम स्वीकार करें।'' मन्त्री कुणिक ने कहा।

''मैं भी उनकी इच्छा से सहमत हूँ।'' मुनि ने कहा, ''ब्रह्मचर्य के बारह वर्ष उसने पूरे कर लिए हैं। किसी भी मनुष्य के लिए इतना पर्याप्त है! अब भी यदि शुक माता के प्रस्ताव से सहमत नहीं होता, तो कोई कारण अवश्य होगा।''

द्वैपायन की नौका के साथ राजकीय नौका गोधूलि की ओर चलने लगी। बीच में भस्मक्षेत्र आया तो मल्लाह सामनेवाले तट के सहारे-सहारे चले। भस्मक्षेत्र से वे दूर रहे क्योंकि उसे वे अभी भी एक शापग्रस्त क्षेत्र मानते थे।

गोधूलि पहुँचने पर उन्हें एक भयानक दृश्य दिखाई पड़ा। बहुत से आदिवासी तीर-कमान, भाले और बरछियाँ लिये हुए आश्रम को घेरे खड़े थे। सम्पूर्ण आश्रम भस्म हो गया था। कई जगह लकड़ियों में अभी भी आग धधक रही थी। जहाँ कहीं किसी पशु की अधजली देह को वे देखते तो भालों से कोंचते। कहीं भी कोई मानव-देह नहीं बची थी।

द्वैपायन की नौका का प्रमुख मल्लाह क्रीवी काँप उठा। वह वर्षों से द्वैपायन को नौका में लाता-ले जाता था। द्वैपायन के प्रति उसके मन में अगाध श्रद्धा थी। 'बालमुनि,' उसने फुसफुसाकर कहा, ''यह तो बड़े आश्चर्य की बात है। अभी आठ-नौ दिन पहले ही मैं जब इधर आया था तब तो आश्रम भला-चंगा खड़ा था। आचार्य गौतम ने सदा की तरह हमें भोजन भी कराया था। मेरी राय में तो यह नए सरदार मोस की करतूत है।''

''आदिवासियों का पुराना सरदार मर गया और नया सरदार मोस बना, यह सूचना तुम्हें कब मिली?'' मुनि ने पूछा।

''हम आश्रम से प्रस्थान कर रहे थे, तभी हमें ये समाचार मिले।'' क्रीवी ने कहा ''बाप-बेटे में बनती नहीं थी और मोस को आश्रम से घृणा थी यह तो मुझे पता है, लेकिन आचार्य गौतम का विश्वास था कि कभी जब मोस सरदार बनेगा तो वे उससे तालमेल रखने में सफल हो जाएँगे।''

''आचार्य बहुत भले स्वभाव के हैं। वे मोस जैसे मनुष्य की प्रकृति भला कैसे समझते?'' मुनि ने विचार व्यक्त किया।

''मोस पर वह गुट हावी है जो पिछले सरदार का विरोधी था।'' क्रीवी ने बताया।

''लेकिन आश्रम से लड़ने की उसे क्यों आवश्यकता हुई? आश्रम के कारण तो इनके कबीले को लाभ ही हुआ है। हिंसा कम हुई है। महिलाएँ भी अधिक सुखी हैं।''

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उत्तर में क्रीवी बोला, "अपनी बहन-बेटियों की शादी आश्रमवालों से कोई करे यह इस गुट को पसन्द नहीं था। माता शर्मी की प्रेरणा से कई युवतियाँ आश्रमवासियों के साथ विवाह को तैयार हो गईं और बहुएँ बनकर आश्रम में चली आईं।"

"अब समझा।" मुनि ने कहा।

"उसने पहले तो आश्रम को आग लगाई होगी फिर शायद आचार्य गौतम तथा अन्य आश्रमवासियों की हत्या भी कर दी हो! वह बहुत ही क्रूर और कठोर है। मेरी तो आपको भी सलाह है कि आप वहाँ न जाएँ।" क्रीवी ने कहा।

मन्त्री कुणिक ने भी मुनि को यही परामर्श दिया।

"नहीं कुणिक!" मुनि ने उत्तर दिया, "हमें यह जानना चाहिए कि आश्रमवासियों का क्या हुआ। आप जानते ही हैं कि मैं इस आश्रम में पला हूँ, आचार्य गौतम और माता शर्मी ने मुझे बड़ा किया है। शुक भी यहीं होगा।"

"कौन जाने मोस ने आश्रम को आग लगने से पहले ही आश्रमवासियों का अन्त कर दिया हो!" क्रीवी ने आशंका व्यक्त की।

"माता शर्मी और अन्य स्त्रियों का क्या हुआ होगा?" मुनि ने पूछा।

"या तो स्त्रियों को वे अपने गाँवड़े में ले गए होंगे या फिर हो सकता है वे भागकर भस्मक्षेत्र में जा छिपी हों।" क्रीवी ने कहा।

"कुणिक, मेरी आपसे एक प्रार्थना है। आप मेरे सभी शिष्यों को अपनी नौका में बिठा लें। क्रीवी है तो मोस की जाति का ही, लेकिन यह और इसके पुत्र पूर्णतया हमारे प्रति निष्ठावान हैं। ये लोग मुझे किनारे पर पहुँचा देंगे।" मुनि ने कहा।

"आप क्या अकेले ही जाएँगे?" मन्त्री कुणिक ने पूछा, "अपने साथ आप दो-एक धनुर्धारियों को रख लें तो अच्छा रहेगा।"

"नहीं, कुणिक।" मुनि ने उत्तर दिया, "यदि मैं धनुर्धारियों को साथ ले गया तो सम्भव है कि उन्होंने जिन्हें बन्दी बना रखा है, उनमें से किसी को भी जीवित न छोड़ें।"

"लेकिन आपके प्राण मूल्यवान हैं। आप तो नए धर्म के प्रणेता हैं।" कुणिक ने कहा।

"यदि भगवान यह समझेंगे कि मैं उनके लिए अब काम का नहीं रहा तो मोस मेरा वध करने से चूकेगा नहीं।" मुनि ने कहा और फिर हँस पड़े, "यदि मोस और उसके सहयोगी मुझ मारने का प्रयत्न करेंगे तो आपको प्रत्यक्ष यह देखने का अवसर मिलेगा कि क्षात्रतेज के बिना ब्रह्मतेज टिक सकता है या नहीं।"

"कबीलेवालों पर हम बहुत सरलता से विजय प्राप्त कर सकते हैं।" मन्त्री कुणिक ने कहा।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"निश्चित ही आपके धनुर्धारी कबीलेवालों पर विजय तो प्राप्त कर सकते हैं, परन्तु यदि लड़ाई हुई तो बचे-खुचे आश्रमवासियों की भी मोस हत्या कर डालेगा।" मुनि ने उत्तर दिया।

हारकर कुणिक ने हथियार डाल दिए और बोले, "जैसी मुनिवर की इच्छा। लेकिन आप पर कोई विपत्ति आती है तो मैं किसी भी मूल्य पर आपकी रक्षा करूँ, ऐसा भरतश्रेष्ठ गांगेय का मुझे आदेश है।"

द्वैपायन के शिष्य राजनौका में बैठ गए और थोड़ी दूर जाकर उसका लंगर डाल दिया गया।

क्रीवी की नौका जब गोधूलि के तट पर पहुँची तो वहाँ खड़े आदिवासियों में भगदड़ मच गई। अँगुलियाँ उठाकर कुछ लोग नौका की ओर संकेत करने लगे। कुछ लोग मोस को बुलाने के लिए दौड़े। थोड़ी ही देर में वह वहाँ आ गया और क्रीवी की नौका तथा मुनि की ओर तीव्र दृष्टि से देखने लगा।

क्रीवी और उसके पुत्रों ने डर के मारे मस्तक नवाकर मोस को प्रणाम किया। मोस ने चिल्लाकर आज्ञा दी, "नाव को किनारे मत लाना।"

मोस का कद छोटा और छाती चौड़ी थी। रंग काला। भौंहों के नीचे पलकों को लाल रंग से रँगा हुआ था, जिससे वह और भी अधिक भयानक लगता था। कानों में पीतल की बालियाँ लटक रही थीं और अपने-आपको महिषासुर का वंशज सिद्ध करने के लिए सिर पर भैंसे के सींगोंवाला मुकुट पहन रखा था।

द्वैपायन घुटने-घुटने पानी में नाव से उतर गए। मोस ने संकेत से उन्हें वहीं रुक जाने का निर्देश दिया और अपने साथियों से कहा कि यदि कोई अजनबी तट की ओर बढ़े तो उस पर तीर चला दें।

"मेरा आशीर्वाद लो, मोस!" द्वैपायन ने दोनों हाथ उठाकर आशीष दी। उनके चेहरे पर सदैव की तरह उल्लसित मुस्कान थी।

पर इस मुस्कान का उस पर और उलटा प्रभाव पड़ा। वह क्रुद्ध हो उठा। चीखकर बोला, "तू कौन है?"

"मैं जब पाँच वर्ष का था, तभी से मेरे पिता मुझ पर स्नेह रखते थे। अभी कुछ माह पहले जब मैं गोधूलि आया था तब भी वे मुझसे मिले थे।" मुनि ने कहा।

"लेकिन तू है कौन?" मोस ने पैर पटककर पूछा।

मुनि मुस्कराए, "तूने पंगु मुनि का नाम सुना है?"

"हाँ, भेड़ियों द्वारा मारे गए लँगड़े मुनि का नाम मैंने सुना है। तुम्हारा उससे क्या सम्बन्ध है?" मोस ने पूछा।

"मैं पंगु मुनि का पुत्र और आचार्य गौतम का शिष्य हूँ। मैं यहाँ कई वर्ष

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

रहा हूँ और प्रायः यहाँ यात्रा पर आता रहता हूँ।''

मोस जोरों से हँस पड़ा, ''लँगड़े मुनि के पुत्र हो चाहे दो टाँगोंवाले मुनि के, इससे कोई अन्तर नहीं आएगा। नदी से निकलकर किनारे पर मत आना। यदि किनारे पर पाँव धर दिया तो यह तीर है और तुम हो।'' कहकर उसने कन्धे पर से धनुष उतारा, तरकश में से तीर खींचा और उसे चढ़ाते हुए बोला, ''तू यहाँ क्यों आया है?'' उसने पूछा।

''मैं यहाँ आया हूँ क्योंकि यह मेरा घर है। आचार्य गौतम मेरे गुरु थे। मैं उनके पुत्र की भाँति रहता था। वे कहाँ हैं? मुझे उनके प्रति श्रद्धापूर्वक सम्मान अर्जित करना है।'' मुनि ने कहा।

मोस ठठाकर हँस पड़ा और जलते हुए आश्रम के धुएँ, राख और अंगारों की ओर संकेत करके उसने कहा, ''वहाँ उस राख में जाकर ढूँढ़ उसे!''

''दूसरे लोग कहाँ हैं?''

''कौन जाने!'' मोस ने उत्तर दिया।

''सरदार, इस आश्रम को आग तुम्हीं ने लगाई है न?''

''हाँ। और अब तू वापस नाव में बैठ जा और फिर कभी मुझे अपना मुँह मत दिखाना।''

''लेकिन सरदार,'' मुनि ने पूछा, ''आप इन आश्रमवासियों से इतने रुष्ट क्यों हैं? पिछले वर्ष मैं यहाँ आया तब आपके पिताजी आचार्य गौतम के साथ अत्यन्त मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रखा करते थे।'' और वे फिर मुस्कराए। मोस का अहंकार जाग उठा। वार्तालाप में वह मुनि से हारना नहीं चाहता था।

''मैं अपना बाप नहीं हूँ,'' मोस ने क्रोध से दाँत किटकिटाते हुए कहा, ''और मैं इस बात की भी परवाह नहीं करता कि मेरा बाप क्या किया करता था। मैं अपने बाप की तरह महिषासुर कुल की स्त्रियों को तुम्हें भगा नहीं ले जाने दूँगा।''

''आचार्य गौतम की पत्नी शर्मी तो मेरी माता के समान थीं। वे आपकी ही जाति की थीं। वे सुखी थीं। वे प्रत्येक के साथ स्नेहपूर्ण व्यवहार करती थीं और आश्रम के सभी लोग उनका सम्मान करते थे। धर्मक्षेत्र में वाजपेय यज्ञ हुआ तब वहाँ श्रोत्रियों, राजाओं और सरदारों के आतिथ्य की व्यवस्था उन्होंने ही सँभाली थी।'' मुनि ने कहा।

मुनि आगे और बोलनेवाले थे किन्तु मोस ने चीखते हुए कहा, ''जहाँ है, वहीं का वहीं खड़ा रह। मेरे पास आने का प्रयास मत करना। तू शर्मी की बात करता है। वह दुष्ट स्त्री है। वह महिषासुर की प्रजा की शत्रु है। वह हमारी कन्याओं को आश्रम में आने और आश्रमवासियों से विवाह कर लेने को प्रोत्साहित करती थी, लालच देती थी।''

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"इसमें बुराई क्या थी? जितनी कन्याओं ने आश्रमवासियों के साथ विवाह किया वे सभी सुखी हुईं।" मुनि ने कहा।

"सुखी? अरे वे तमाम स्त्रियाँ जहर की प्यालियाँ हैं। वे हमारे गाँव में आती हैं और दूसरी स्त्रियों को बहकाती हैं, हमारे रीति-रिवाजों के बारे में उनके मन में घृणा पैदा करती हैं।"

"यदि दूसरों को बहकानेवाला आश्रम की इन स्त्रियों की आपको जरूरत न हो तो उन्हें मुझे सौंप दें।" मुनि ने कहा।

"नहीं, मैं उन्हें ऐसा दंड दूँगा कि दूसरी कोई भी स्त्री अपने कुल की परम्परा को भंग करने का अब कभी साहस ही न कर सकेगी। तू चला जा, नहीं तो," मोस ऊँची आवाज में जोर से चीखा।

महिषासुर जाति के आयुवृद्ध व्यक्ति शर्मी के पिता कृप ने मोस के पास जाकर पहले तो प्रणाम किया, फिर मोस के कान में कुछ कहा।

मोस के कान में कुछ कहकर जब कृप पीछे हटा तो मोस द्वैपायन की ओर मुड़ा, "मेरे बुजुर्ग काका कहते हैं कि तेरी बात सच है। तू हर वर्ष यहाँ आया करता था। पंगु मुनि की मृत देह लेकर भी तू ही यहाँ आया था। तूने ही उनका अग्नि-संस्कार किया था। ये कहते हैं कि मेरे पिताजी तुझे बहुत चाहते थे और कबीले के भोज में भी वे तुझे बुलाया करते थे।"

"हाँ, यह सच है। इसी कारण तो मैं चाहता हूँ कि तू मेरे साथ मैत्री का व्यवहार करे।"

मोस ने फिर एक बार कृप के साथ धीरे-से कोई बात की और तब द्वैपायन की ओर देखकर कहा, "कृप कहते हैं कि आश्रम के लोग तेरी देवता के समान पूजा करते हैं। अब मैं चाहता हूँ कि तू महिषासुर की पूजा कर। ऊपर आ जा।"

फिर मोस ने क्रीवी से कहा, "क्रीवी, जब तक मैं तुझे जाने को न कहूँ, तब तक तू यहीं रहना।" फिर उसने अपने साथियों को क्रीवी तथा उसके पुत्रों के लिए भोजन की व्यवस्था करने को कहा।

क्रीवी ने झुककर प्रणाम किया।

द्वैपायन पास आए। उन्होंने मोस से पूछा, "आप मुझे मेरे गुरु गौतम की देह सौंपेंगे? मुझे उनका यथायोग्य संस्कार करना है।"

"क्या तू यह समझता है कि मैंने उसकी देह को सँभालकर सुरक्षित रखा है?" मोस ने पूछा और कहा, "उसका कुछ भाग तो इधर मेरे पेट में है।" उसने पेट को हथेली से थपथपाया, "और उसकी हड्डियाँ मैंने नदी में फेंक दी हैं।"

"आपके पिता तो नर-मांस खाने का विरोध किया करते थे।" मुनि ने कहा।

मोस ने फिर अट्टहास किया, "मुझे अपने बाप की याद मत दिला। वे

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जातिद्रोही थे। उन्होंने आश्रम के साथ मैत्री की। यह उनका महिषासुर देव के प्रति द्रोह था। तुमको या आचार्य गौतम को जब भोजन के लिए बुलाते थे तो वे नर-मांस नहीं परोसने देते थे। लेकिन मैं सभी को नर-मांस खिला दूँगा। नर-मांस खाने से ही मनुष्य की देह में शक्ति और साहस आते हैं। तू अब मेरा मेहमान है, इसलिए तुझे भी मैं खिलाऊँगा।''

द्वैपायन ने हँसकर कहा, ''प्रयत्न करके देखना। माता शर्मी तथा आश्रम की अन्य औरतें कैसी हैं?''

''शर्मी? वह और अन्य स्त्रियाँ जहाँ भी हैं वहाँ सुरक्षित हैं। अब उनसे मिलने की आशा मत करो। यदि शर्मी मेरे काका की पुत्री न होती तो मैं उसके सौ टुकड़े कर देता। इस सारी पीड़ा की जड़ वही है।'' मोस ने अपने सींग हिलाते हुए कहा।

मोस और उसके कुछ सेवक अपने गाँव की ओर चले और द्वैपायन को पीछे-पीछे चलने का आदेश हुआ। मुनि भी क्या करते और कोई विकल्प था भी नहीं। आठ-नौ आदिवासी उन्हें घेरकर चल रहे थे। प्रत्येक के हाथ में एक-एक बरछी थी। यदि वे वहाँ से निकल भागने का प्रयत्न करते तो वे उन्हें मार डालते।

जंगली मार्ग से वे प्रायः दोपहर को आदिवासियों के मुख्य केन्द्र पर पहुँच गए।

मोस ने रुककर द्वैपायन की ओर देखा, ''मेरे काका कहते हैं कि तू भविष्य बता सकता है और बीमार लोगों को ठीक कर सकता है।''

''हाँ, यदि तुझे श्रुति में विश्वास हो तो।'' मुनि ने कहा।

''यह श्रुति क्या है? कहाँ रहती है?''

''तूने जिनका वध किया ऐसे आचार्य गौतम-जैसे श्रोत्रियों के मुख में वह निवास करती है।''

''वह क्या तुम्हारे मुख में भी निवास करती है?'' मोस ने उपहास के स्वर में कहा।

''हाँ।'' मुनि ने दृढ़ता के साथ कहा।

''मुझे सुनाओ।'' मोस ने कहा।

''तू शुद्ध और निर्मल हो तभी उसे सुन सकता है।''

मोस ने मुनि की ओर घूरकर देखा, ''क्या तू यह कहना चाहता है कि मैं अशुद्ध हूँ? और महिषासुर के वंशज को तू पापी कहता है? अभी मैं तेरा सिर तेरे धड़ से अलग कर दूँगा।''

सुनकर द्वैपायन केवल हँस दिए।

''तू हँसा क्यों?'' मोस ने पूछा।

''मैं तेरे मिथ्या अहंकार पर हँस रहा हूँ। तूने आचार्य को जला दिया जिनके

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मुख में श्रुति बसती थी। अब तुझे वह किस प्रकार सुनाई देगी?"

"तू जीवित है। तू मुझे बता सकता है कि यह श्रुति क्या होती है। काका कहते हैं कि तू चमत्कार पैदा कर सकता है। तेरा आशीर्वाद पाकर कई लोग सुखी हुए हैं। काका ने तुझे रोगियों को चमत्कारी ढंग से ठीक करते देखा है।"

"मैंने तो कुछ भी नहीं किया। यह सारा प्रताप श्रुति का है। जिस पापी पर देवताओं के रोष का आह्वान करना हो उसी के समक्ष श्रुति का पाठ सम्भव है।"

"तू मुझे फिर पापी कहता है?" मोस क्रोधित होकर चिल्लाया।

द्वैपायन ने लेशमात्र भी क्रोध किए बिना उसकी ओर देखा, "तू पापी नहीं तो और क्या है? तूने आश्रम को आग लगाई, ऊँचे-से-ऊँचे श्रोतियों की हत्या की, आश्रम के पशुओं को जलाया और स्त्रियों का अपहरण किया और तू खुद अपने मुख से कहता है कि तूने मेरे गुरु का मांस खाया है।"

मोस एक क्षण द्वैपायन की ओर देखता रहा। किसी ने आज तक इस ढंग से उसके साथ बात नहीं की थी। बोला, "यदि तू मुझे श्रुति नहीं सुनाता है तो मैं तेरी गरदन मरोड़ दूँगा।"

"क्यों ऐसी थोथी धमकियाँ देता है? तेरी धमकियों से डरकर मैं तुझे श्रुति सुनाने नहीं बैठ जाऊँगा।" द्वैपायन ने कहा।

"देखेंगे। तुम्हें जीवित रखना है या मार डालना है, इसका निर्णय कल होगा।" मोस ने कहा।

वे गाँव की सीमा के पास पहुँच चुके थे। वहाँ कटीली झाड़ियों के पास दो आदिवासी बरछियाँ लिये हुए खड़े थे। दोनों झाड़ियों के बीच काँटों का ही द्वार बना हुआ था। उन्हें खिसकाकर उन्होंने उनके लिए मार्ग बनाया। मोस की आज्ञा से उन दोनों ने द्वैपायन को उस द्वार में घुसने को कहा। द्वैपायन जब काँटों के उस द्वार में प्रवेश करने लगे तो मोस बोला, "अब मैं तुझसे कल मिलूँगा और श्रुति सुनूँगा। यदि तूने मना किया तो तेरी जीभ बाहर खींच लूँगा।"

द्वैपायन ने उसकी ओर देखा और हँस दिए। वे बोले, "तू मेरी जीभ खींच चाहे गरदन मरोड़, जब तक तू प्रायश्चित करके निर्मल नहीं बनेगा तब तक मैं तुझे श्रुति नहीं सुनाऊँगा।"

मोस भड़क उठा, "तूने ऐसा मुझे दो बार कहा है। अब तीसरी बार यदि ऐसा कहा तो मैं तेरी अभी की अभी यहीं हत्या कर दूँगा।"

द्वैपायन की आँखें चमक उठीं, "तू मेरी हत्या करने के लिए अपने मन को समझा रहा है। ऐसा करने से तुझे रोकना कौन है? मैं तैयार हूँ। ले, मार डाल!" उन्होंने कहा।

मोस असमंजस में पड़ गया, "मैं अभी ऐसा नहीं करूँगा क्योंकि तू मुझे ऐसा

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

करने को कह रहा है। मैं अपनी मरजी से ही ऐसा करूँगा।''

''जब तेरी मरजी हो तभी तू मुझे मारने आ जाना। एक बात भूलना नहीं। तू मुझे मार सकता है किन्तु श्रोत्रियों को मारने से बड़ा पाप संसार में नहीं है। इसलिए ईश्वर तुझे कभी क्षमा नहीं करेंगे। श्रोत्रिय का शाप तेरा और तेरी प्रजा का नाश कर देगा।''

मोस तड़प उठा, ''मुझे और अधिक क्रोध मत दिला। मैं तुझसे कल मिलूँगा। ...अब अन्दर जा और अपने मित्रों से मिल।''

''ईश्वर तुझे सद्बुद्धि दे।'' मुनि ने कहा और बाड़े के भीतर चले गए।

जाते-जाते मोस ने रक्षकों से कहा, ''यदि यह आदमी भागने का प्रयत्न करे तो इसे वहीं-का-वहीं ढेर कर देना।''

साँझ उतर आई थी। बाड़े में दूसरी ओर पाँच लोग बैठे थे। उन्हें लगा कि मोस का ही कोई व्यक्ति उन्हें मारने आ रहा है। वे खड़े हुए और द्वैपायन की तरफ बढ़े।

अचानक उनमें से एक दौड़ा और द्वैपायन के चरणों में गिरकर बोला, ''पिता!''

''बेटे।'' द्वैपायन के आश्चर्य का पार नहीं था। उठाकर उन्होंने शुक को गले लगा लिया और फिर सूँघकर उसे आशीर्वाद दिया।

ईश्वर का आदेश

मुनि को पहचानते ही दूसरे युवक भी आगे आए और उनका चरण-स्पर्श किया। मुनि ने सभी को प्रगाढ़ स्नेह से गले लगाया।

था तो कुछ अँधेरा किन्तु मुनि ने जब अपने पुत्र शुक को गले लगाया तो उन्हें यह अनुभव करके खुशी हुई कि शुक का कद लम्बा हो गया है और उसका शरीर हृष्ट-पुष्ट है।

''पिताजी, आप यहाँ कैसे?'' शुक ने पूछा।

''तुझे हस्तिनापुर ले जाने के लिए मैं यहाँ आया हूँ।'' मुनि ने उत्तर दिया, ''लेकिन तुम लोग यहाँ कैसे आए? पहले अब यही जानना आवश्यक है। शीघ्र बताओ।''

''आप जानते हैं कि मोस अपने पिता से तीव्र घृणा करता था। मोस के पिता ने उसे जंगल की एक ढाणी में बन्दी बना रखा था। उस ढाणी से बाहर आने की उसे मनाही थी। वह जब इस कबीले का मुखिया बना तो उसने आचार्य से

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

माँग की कि माता शर्मी-सहित हमारी जाति की सभी स्त्रियों को हमें वापस सौंप दो। आचार्य ने यह माँग स्वीकार नहीं की।'' शुक ने कहा।

''ठीक किया।'' मुनि ने कहा, ''मोस को इस विषय में कोई आपत्ति कैसे हो सकती थी? ये सभी स्त्रियाँ अपने-अपने माता-पिताओं से तथा मुखिया पोपा से अनुमति लेकर विधिपूर्वक विवाह करके वहाँ गई थीं। अधिकांश स्त्रियों को तो शादी किए हुए काफी अरसा हो गया था और एक लम्बे समय से आर्य-परम्परा के अनुसार आश्रम में ही उनकी सन्तानें भी पलती आ रही थीं। अच्छा, फिर क्या हुआ?''

शुक बोला, ''दूसरे दिन मोस अपने सौ-एक जातिभाइयों के साथ आश्रम में आ धमका और आश्रम को घेरकर उसमें आग लगा दी, पूज्य आचार्य को तथा नन्हे-नन्हे बच्चों को मार डाला। माता शर्मी तथा उनकी अपनी जाति की सभी स्त्रियों को पशुओं की तरह चाबुक मार-मारकर अपनी बस्ती में ले गए। आश्रम को भस्मीभूत करने के बाद उन्होंने कुछ श्रोतियों को मारकर उनके मांस से भोज किया। हमें अभी तक इसलिए जीवित रखा हुआ है कि हमारे मांस से वे शायद एक और भोज प्राप्त करना चाहते हैं।''

अस्त हुए सूर्य की ओर अंगुलि का संकेत करते हुए मुनि ने कहा, ''सायंकालीन सन्ध्या का समय हो गया है, लेकिन स्नान किए बिना सन्ध्या हो नहीं सकती। फिर भी हमें चाहिए कि हम ईश्वर से प्रार्थना करें कि वे हमें इस परीक्षा का सामना करने की शक्ति प्रदान करें।''

पाँचों ब्रह्मचारियों ने द्वैपायन के 'मूक ध्यान' में योग दिया।

सहसा ढोल-तुरही की ध्वनि से शान्ति भंग हो गई। जय-जयकार का स्वर सुनाई दिया। सभी आदिवासी शायद किसी चौक में इकट्ठे हुए थे। थोड़ी देर बाद लयात्मक ध्वनि सुनाई दी। शायद ढोल-तुरही की लय पर नृत्य प्रारम्भ हो गया था।

चन्द्रमाहीन अँधेरी रात थी। नाचनेवाले पूरे रंग में थे। जब नगाड़ों की ध्वनि और नर्तकों का नाच-गान तेज होने लगा तो अचानक मोर की कूक सुनाई दी।

''पिताजी, यह माता शर्मी का स्वर है।'' शुक बोला।

''माता शर्मी?'' मुनि को आश्चर्य हुआ।

''हमें ये लोग नर-मांस या गो-मांस का ही भोजन देते हैं और हमारे लिए ये दोनों ही वर्जित हैं। इसलिए हमने भूखा रहने का संकल्प किया था। लेकिन कल रात माता शर्मी और कुछ अन्य स्त्रियाँ आकर काँटों की बाड़ के एक छेद में से हमें भोजन दे गई थीं। लगता है आज भी वे भोजन लेकर आई हैं।''

वे बाड़े के पिछले हिस्से की तरफ गए। वहाँ एक छेद था। छोटा-सा छेद।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उसमें से शर्मी ने उन्हें भोजन की सामग्री दे दी।

"माता शर्मी, पिताजी यहीं हैं।" शुक ने शर्मी से कहा।

"मुझे आशीर्वाद दो, माँ!" मुनि ने कहा।

"कृष्ण बेटे, तू यहाँ कैसे?" शर्मी ने पूछा। आह्लाद की उत्तेजना में उन्हें उसका वह रूप याद आ गया जब वह मातृहीन बालक के रूप में उन्हें सौंपा गया था और जिसे उन्होंने पाल-पोसकर बड़ा किया था। मुनि को देखते ही उन्हें अचानक याद आया कि वह क्या-क्या खो बैठी हैं। विह्वल स्वर में कहा, "कृष्ण, मेरे सामने ही तेरे गुरु और मेरे बच्चों का वध कर दिया गया। मेरे भाग्य फूट गए।"

"माँ, जो बीत गया उस पर शोक करने का अभी समय नहीं है। ईश्वर ने तो तुम्हारे कृष्ण को आज तुम्हारे पास भेजा है।" मुनि ने कहा, "सुनो, क्रीवी की नाव गोधूलि के तट पर मेरी प्रतीक्षा कर रही है। और भस्मक्षेत्र के पास राजनौका भी मेरी प्रतीक्षा में खड़ी है। मन्त्री कुणिक उस नाव में हैं। भस्मक्षेत्र से वे दूर नहीं हैं। इस छेद को हम थोड़ा बड़ा कर दें तो लड़के इसमें से निकल सकते हैं। आपमें से कितनी स्त्रियाँ इनके साथ मुक्त होने को तैयार हैं?"

"हम जितनी भी यहाँ हैं वे सब और कुछ और भी।" शर्मी ने उत्तर दिया, "यहाँ तो मोस हम सबके लिए साक्षात नरक खड़ा कर देगा। इन सभी स्त्रियों के स्तन और नाक वह काट डालेगा। जो युवा हैं इन्हें वह किन्हीं पिशाचों के हाथ सौंप देगा, लेकिन जिन्होंने अग्नि के समक्ष अपने पति के साथ रहने का व्रत लिया है वे परपुरुष के साथ कैसे रह सकती हैं? मुझे तो टुकड़ा-टुकड़ा कर डालने का विचार है उसका। आचार्य गए, बच्चे गए और आश्रम खाक में मिल चुका है। फिर अब मुझे ही जीकर क्या करना है?"

"तुम्हें न केवल उन स्त्रियों के लिए जीवित रहना है जिन्होंने तुम्हारी राय से आश्रमवासियों के साथ विवाह किया था, बल्कि हमारे लिए भी तुम्हें जीवित रहना है। जाओ और मुक्ति की इच्छा रखनेवाली ज़ितनी स्त्रियाँ इकट्ठी कर सको, कर लो और इन लड़कों के साथ गोधूलि-तट की ओर भाग जाओ।" मुनि ने कहा।

"कृष्ण, हम अब वही करेंगे जो तू कहेगा, लेकिन मेरी इच्छा तो यही है कि इसी आश्रम में मेरी मृत्यु हो।" शर्मी ने कहा, "बच्चो, तुम भोजन कर लो। मैं दूसरी स्त्रियों को तैयार करती हूँ।" यह कहकर माता ने फलों से भरी टोकरी शुक को सौंप दी।

"आप सभी को इकट्ठा कर तुरन्त आ जाइए।" मुनि ने कहा।

"मैं अभी आई।" शर्मी ने कहा और अन्धकार में अदृश्य हो गई।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"पिताजी, आप क्या हमारे साथ नहीं चलेंगे?" शुक ने पूछा।

"नहीं बेटे," मुनि ने उत्तर दिया, "भगवान की सम्भवतः कोई और इच्छा है, नहीं तो वे मुझे यहाँ क्यों लाते? तुम्हारा ही जाना ठीक है।" फिर आगे कहा, "शुक, तू गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के लिए हस्तिनापुर नहीं गया, इससे तेरी माँ बहुत दुखी है। उसने शौनक की पुत्री को तेरी दुल्हन के रूप में पसन्द भी कर रखा है।"

"मेरी इच्छा तो आजीवन ब्रह्मचारी रहने की है या संसार त्यागकर संन्यासी बन जाने की है।" शुक ने कहा।

मुनि ने शुक की पीठ पर प्यार से हाथ फेरा और कहा, "इस पर बातचीत का अभी समय नहीं है। अभी तो माता शर्मी जो सामग्री लाई हैं, उसे खा लो। फिर तुम्हें बिना समय गँवाए जहाँ राजनौका खड़ी है, वहाँ पहुँचना है।"

ब्रह्मचारियों ने भोजन किया। मुनि ने भोजन नहीं किया।

वे लोग मोर की तीखी आवाज की प्रतीक्षा करते रहे। लगभग आधी रात होने पर यह आवाज सुनाई दी।

"लो, माता शर्मी आ गई हैं। मैं इस बाँस से बाड़ के काँटों को एक ओर दबाए रखता हूँ। बीच में से तुम लोग झट बाहर निकल जाओ।" मुनि ने कहा, फिर माता शर्मी से पूछा, "सभी ग्यारह स्त्रियाँ तुम्हारे साथ चल रही हैं न?"

"हाँ, दो-तीन और भी हैं।" शर्मी ने कहा, "वे आश्रम के घनिष्ट सम्पर्क में थीं और उन्हें हमारा सुखमय जीवन पसन्द था। लेकिन बालमुनि, आप हमारे साथ नहीं चल रहे हैं?"

"नहीं माँ, मैं नहीं आ सकता।" मुनि ने उत्तर दिया।

"लेकिन मोस तो तुम्हें मार डालेगा।" शर्मी ने कहा।

"यदि ईश्वर की ऐसी ही इच्छा होगी तो मैं उसे कैसे रोक सकूँगा?" मुनि ने हँसकर कहा, "लेकिन आप बातों में समय मत गँवाइए। प्रहरियों को सन्देह हो गया तो अभी आ धमकेंगे।"

शर्मी ने हँसकर कहा, "प्रहरी सो चुके हैं। वे अभी मदिरा के नशे में हैं। उन्होंने दोनों हाथ आँखों पर दे रखे हैं और जब तक हम यहाँ से जाएँगे नहीं, तब तक वे आँखों से हाथ उठाएँगे नहीं।"

"माता शर्मी, आप श्वेतकेशा हुईं तो क्या, आपका अभी भी कोई सानी नहीं। बहुत चतुर हैं आप।" मुनि ने कहा, "लेकिन आप जंगल में रास्ता तो खोज लेंगी न?"

"मेरा एक भाई यहाँ के रास्तों से खूब परिचित है। वह गाँव के बाहर हमारी प्रतीक्षा कर रहा है।" शर्मी ने उत्तर दिया।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"जो भी हो, आपको कल सूर्योदय से पहले-पहले राजनौका तक जा पहुँचना है।" मुनि ने कहा। फिर वे शुक की ओर मुड़कर बोले, "शुक, तेरी माँ हस्तिनापुर में तेरी बाट जोह रही है। उससे मेरी ओर से कहना कि इन सभी स्त्रियों को मैंने पराशर गोत्र में स्वीकार किया। इनमें जो अविवाहित हैं उनके लिए योग्य वर माता शर्मी ढूँढ़ लेंगी।"

शुक तथा अन्य ब्रह्मचारियों ने मुनि को प्रणाम किया।

"आपको अकेला छोड़ जाने को मन नहीं करता।" शुक ने कहा। शुक और अन्य सभी ब्रह्मचारियों ने मुनि के पाँव छुए।

"नहीं, श्रुति को सुरक्षित रखना है, इसकी रक्षा करनी है। तुम युवा हो। मुझसे भी अधिक अच्छी तरह तुम इसे कर सकोगे। केवल मेरी इतनी बात याद रखना : कोई व्यक्ति जब तक अपनी माता को सुखी नहीं रखता तब तक वह स्वयं सुखी नहीं रह सकता।" मुनि ने ऐसा कहकर उसकी पीठ पर हाथ फेरा।

सभी चले गए। मुनि ने भगवान से उन सभी की रक्षा के लिए प्रार्थना की।

मुक्ति पाने के इस प्रयत्न से स्त्रियों में नई उमंग आ गई और उनके पाँवों में पर लग गए। गाँव के बाहर पहुँचे तो वहाँ शर्मी का भाई उपस्थित था। स्त्रियों और ब्रह्मचारियों ने एक-दूसरे का हाथ पकड़कर ऐसी जंजीर बना ली थी कि उस घुप अँधेरे में एक भी प्राणी रास्ते से भटक नहीं सकता था।

सवेरा होते ही उस बस्ती में जैसे कोलाहल का कोई ज्वालामुखी ही फूट पड़ा। दौड़ते हुए लोगों की पदचाप, ऊँचे स्वर में चिल्लाती क्रुद्ध आवाजें और गम्भीर खतरे के सामने के लिए बुलाहट-भरे ढोल तथा सींगड़ी के स्वर। थोड़ी ही देर में काँटों की बाढ़वाले बन्दीघर के पास भारी भीड़ इकट्ठा हो गई।

बाड़ के द्वार से काँटों का ढेर हटाया गया। मोस अन्दर आया तो उसकी आँखें क्रोध से लाल हो उठीं। भैंस की टाँग की हड्डी को उसने गदा की तरह कन्धे पर उठा रखा था। उसके दो सहायकों ने समूचे बाड़े को छान मारा लेकिन ब्रह्मचारी कहीं नजर नहीं आए। मोस तब मुनि द्वैपायन की ओर क्रोध में दौड़ा। मुनि पद्मासन में बैठे थे। उन्होंने मोस की ओर देखा और हाथ के संकेत से उसे रोकते हुए पूछा, "तू इतना अधिक क्रोध क्यों करता है?"

मोस ने क्षण-भर मुनि की ओर देखा और चीखकर बोला, "अन्य सभी कहाँ गए?"

मुनि ने शान्तिपूर्वक दृष्टि उठाई। उनकी आँखों में एक ज्योति चमकी। बोले, "अपने रक्षकों से पूछ।"

मोस रक्षकों की ओर मुड़ा। वे तो घुटनों के बल उसके चरणों में पड़े काँप रहे थे। "दूसरे बन्दी कहाँ गए?" मोस ने उनसे पूछा और एक पर अपनी गदा

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

से प्रहार किया।

"वे यहीं होने चाहिए।" एक रक्षक ने कहा, "हम सारी रात जाग रहे थे। रात जब बाड़े का द्वार बन्द किया तब वे पाँचों यहीं थे।"

मोस ने देखा कि मुनि के लिए भेजा गया रात्रि-भोजन ज्यों-का-त्यों पड़ा है। उसने दहाड़कर पूछा, "तुमने रात को खाया क्यों नहीं?"

"स्नान किए बिना मैं पूजा-अर्चन नहीं कर सकता। और पूजा-अर्चन किए बिना भोजन नहीं कर सकता। फिर, यह तो गोमांस है, इसे तो मैं छू भी नहीं सकता।"

"जो मैं दूँगा उसे तू नहीं खाएगा, क्यों, यही है न?" मोस ने पूछा। उसके क्रोध का पार नहीं था, लेकिन वह उसे किस तरह प्रकट करे यह उसकी समझ में नहीं आ रहा था, "तुझे कोई और भोजन नहीं मिलेगा, भूखा मरना पड़ेगा।"

"तो मैं इतना दुर्बल हो जाऊँगा कि मेरे मांस से तू प्रीतिभोज नहीं कर सकेगा।" मुनि ने हँसकर कहा।

उसकी जाति के दो-तीन बुजुर्ग दौड़कर आए। उनमें शर्मी का पिता कृप भी था। "ईश्वरीय महिष के पुत्र, सरदार, हम पर बहुत बड़ी विपत्ति टूट पड़ी है।" कृप ने कहा।

"क्या हुआ? तुम यों काँप क्यों रहे हो?" मोस ने पूछा।

"मेरी पुत्री शर्मी गायब हो गई है, यह इस व्यक्ति के जादू का परिणाम है।"

"तेरी पुत्री? शर्मी?"

"एक वही नहीं, मेरी भी दो पुत्रियाँ गायब हो गई हैं।" एक दूसरे बुजुर्ग ने कहा।

आश्रम से लाई गई स्त्रियों की रक्षा का भार जिन पर था, उन्होंने मोस से काँपती आवाज में कहा, "हम जितनी भी स्त्रियाँ लाए थे वे सब अपने घरों से गायब हो गई हैं।"

मोस अब फिर मुनि की ओर मुड़ा। वह उस समय बड़ा हिंस्र लग रहा था। दहाड़कर बोला, "मैं जानता हूँ कि यह तेरी करतूत है।" और फिर उसने अपने एक अंगरक्षक से कहा, "तू जाकर जादू विद्या के पंडित को यहीं ले आ। इसकी विद्या के सामने प्रतिविद्या चलानी ही पड़ेगी।" फिर मुनि की ओर देखकर पूछा, "तेरे साथी कहाँ गए?"

"मैंने तुझसे कहा न कि अपने रक्षकों से पूछ।"

मोस कृप की तरफ मुड़ा और पूछा, "काका, शर्मी कहाँ गई होगी?"

"कैसे पता चले कि कहाँ गई? जब मैंने देखा कि वह घर में नहीं है, मैं समझ गया कि कोई गड़बड़ जरूर है, इसलिए मैं तुरन्त आपके पास आ गया।"

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कृप ने कहा, "आश्रम में रहनेवाली स्त्रियाँ हमारी बस्ती के नियमों का पालन तो करती नहीं। इसलिए यह कहना कठिन है कि वे क्या करेंगी। हो सकता है, नदी में कूदकर डूब गई हों।"

मोस का एक मुख्य सरदार दौड़ता-हाँफता आया और बोला, "सरदार! हे महिषासुर के अवतार!" इससे आगे वह बोल नहीं सका। थोड़ी देर बाद जब उसका श्वास कुछ स्थिर हुआ तो उसने पुनः कहा, "आपकी दो बहनें..."

मोस उसकी ओर मुड़ा। उसकी आँखों में क्रोध की चिनगारियाँ उछल रही थीं, "क्या हुआ उन्हें?"

"वे भी गायब हो गई हैं!"

"क्या? गायब हो गईं?"

"हाँ, महिषासुर भगवान की सौगन्ध!"

"लेकिन वे कहाँ गई होंगी?" मोस ने पूछा।

"यह कैसे पता चले?"

मोस क्रोध से काँप रहा था। अब आगे क्या किया जाए इसका उसे कोई भान नहीं था, "तुम सभी जाकर उन तमाम स्त्रियों को ढूँढ़ लाओ। जीवित हों या मृत, सभी को मेरे सामने ला उपस्थित करो।" फिर मुनि की तरफ मुड़कर उसने कहा, "मेरे जादूगर जब तक नहीं आते हैं तब तक तू जितना हँसना चाहे, हँस ले।"

मुनि और भी जोर से हँस पड़े और खड़े हो गए।

मोस ने कुपित स्वर में पूछा, "तू हँसता क्यों है?"

"ईश्वर ने मुझे आदेश दिया है। तुझे श्रुति सुननी है न? तो सुन..." मुनि ने कहा और अपने हाथ आकाश में ऊँचे किए।

मुनि में अचानक आए परिवर्तन को देखकर मोस जहाँ-का-तहाँ स्थिर हो गया। मुनि के चेहरे पर कोई अद्भुत आभा खिल उठी थी। उनकी आँखों में चमक आ गई थी। उनकी देह तन गई थी। गूँजती वाणी में उन्होंने श्रुति का पाठ शुरू कर दिया।

अचानक मोस का छोटा भाई दौड़ता हुआ आया, "भाई-भाई, वे भी गायब हो गईं?"

"कौन?" मोस ने पूछा।

"आपकी पटरानियाँ।"

बस्ती के बड़े-बुजुर्ग यह सुनकर स्तब्ध रह गए। उन्होंने भयाक्रान्त चेहरे से मुनि की ओर देखा।

मोस का सन्तुलन जाता रहा। गदा उठाकर वह मुनि की ओर लपका, लेकिन

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कृप ने उसे पकड़ लिया।

मोस ने कृप की पकड़ से स्वयं को छुड़ाया, अस्थि-गदा को जमीन पर फेंक दिया और जैसे अपने प्राण बचाने के लिए भागा हो, इस तरह वहाँ से भाग छूटा।

चलो, गोधूलि चलें

भोर का तारा जब तक उदय हुआ, तब तक माता शर्मी और उनके साथ की सभी स्त्रियाँ गोधूलि के किनारे नौकाएँ खड़ी करनेवाले स्थान पर पहुँच चुके थे। जंगली झाड़ियों के बीच से दौड़ते-भागते उनके कपड़े फट गए थे और पाँव लहूलुहान हो गए थे। वे चलीं कम, दौड़ी ज्यादा थीं और एक विकट अग्नि-परीक्षा से गुजर आई थीं।

शर्मी ने मार्गदर्शन करनेवाले अपने छोटे भाई की पीठ ठोंकी और उससे शीघ्र बस्ती में लौट जाने को कहा। यदि मोस को पता चल गया कि वह गाँव के बाहर गया है तो वह उसकी बुरी तरह खबर लेगा।

जिस आश्रम में कभी सुखी जीवन बिताया था उसकी दुर्दशा देखकर स्त्रियों ने अपनी आँखों पर हाथ रख लिये। शर्मी ने होंठ भींच लिये। आचार्य, बच्चों तथा गायों की कई पीढ़ियों के साथ उसने यहाँ एक लम्बा सुखमय जीवन बिताया था। अब वह सब बीता हुआ काल था। सबकुछ जा चुका था, छिन चुका था। शर्मी ने अपना रुदन रोका नहीं होता तो शेष सभी स्त्रियाँ भी फूट-फूटकर रो पड़तीं।

एक पेड़ के नीचे दो रक्षक गहरी नींद में सो रहे थे। क्रीवी और उसका पुत्र नदी-किनारे वहाँ सो रहे थे जहाँ उनकी नौका बँधी थी।

माता शर्मी ने क्रीवी को झिंझोड़कर जगाया, "क्रीवी, उठ और नाव तैयार कर। हमें तुम्हारी नाव में ही जाना है।"

"कौन? माता शर्मी?" क्रीवी को लगा मानो वह कोई स्वप्न देख रहा है। माता शर्मी उस समय उसके पास हैं, इसे वह स्वीकार ही नहीं कर पा रहा था।

"हाँ, मैं माता शर्मी ही हूँ।" शर्मी ने उसका कान उमेठते हुए कहा।

"ओ भगवान महिषासुर! इस गरीब क्रीवी पर दया कर। हाँ-हाँ, आप माता शर्मी ही हैं..." क्रीवी ने सहमति प्रकट करते हुए कहा। उसके कान में उमेठने से दर्द होने लगा था।

"जल्दी से अपनी नाव तैयार कर और शीघ्र ही हमें राजनौका तक पहुँचा दे।" शर्मी ने क्रीवी के कान की पकड़ ढीली करते हुए कहा।

"राजनौका! आप सब बस्ती में से भाग छूटी हैं क्या?" क्रीवी ने पूछा।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"बालमुनि की आज्ञा है कि तुम हमें सूरज उगने से पहले राजनौका तक पहुँचा दो।" शर्मी ने कहा।

क्रीवी अब पूरी तरह जाग उठा था। उसने पूछा, "बालमुनि कहाँ हैं?"

"वे बस्ती की कैद में हैं। उन्होंने हमें बस्ती छोड़कर भाग जाने की आज्ञा दी है। तुम समय मत गँवाओ।"

"लेकिन मैं आपको यहाँ से कैसे ले जा सकता हूँ? महिषासुर भगवान के पुत्र ने मुझे यहीं बने रहने की आज्ञा की है।" क्रीवी ने असहाय स्वर में कहा।

"देखो, हम सभी मृत्यु या मृत्यु से भी खराब स्थिति से बचाव के लिए भाग रहे हैं। यदि तू हमें राजनौका तक नहीं ले जाएगा तो हम सभी यमुना में डूब मरेंगे। वापस हम कदापि नहीं लौटेंगे।"

"लेकिन बालमुनि कहाँ हैं?" क्रीवी ने पूछा।

शुक ने कहा, "पूज्य पिताजी ने बस्ती में ही रहना पसन्द किया है, उन्होंने अपने आपको ईश्वर के भरोसे छोड़ दिया है। तुम अब हमें अपनी नाव में शीघ्र ले चलो। पिताजी ने मुझे हस्तिनापुर जाकर सन्देश देने का काम सौंपा है।"

क्रीवी ने दोनों पुत्र भी अब जाग चुके थे। वे क्रीवी के पास आए।

"मेरे भाग ही फूटे हुए हैं!" क्रीवी ने माथा ठोंकते हुए दीन स्वर में कहा, "यदि मैं तुम्हें अपनी नौका में ले जाता हूँ तो मोस मुझे और मेरे पुत्रों को मार डालेगा और नहीं ले जाता हूँ तो तुम सबका और बालमुनि का शाप मुझे लगेगा।"

शुक ने क्रीवी की पीठ थपथपाकर कहा, "तो फिर हमें अब राजनौका तक पहुँचा ही दे।"

पौ फटनेवाली थी। राजनौका के मुख्य नाविक ने कुछ स्त्रियों व ब्रह्मचारियों को लेकर आती हुई क्रीवी की नौका को देखा और नदी के घुटनों-घुटनों पानी में खड़े सन्ध्या कर रहे मन्त्री कुणिक का ध्यान इस ओर खींचा।

कुणिक ने आनेवाली नाव की ओर देखा। उसमें अधिकतर स्त्रियाँ ही थीं। कुछ ब्रह्मचारी भी थे। लेकिन उनमें जब उन्होंने मुनि द्वैपायन को नहीं देखा तो भौंचक्के रह गए।

नाव रोकने योग्य स्थान पर जब नाव खड़ी हुई तो माता शर्मी तथा अन्य स्त्रियाँ उसमें से नीचे उतरीं। कुछ स्त्रियाँ तो इतनी थक गई थीं कि उतरते ही नदी-किनारे लेट गईं।

शर्मी कुणिक के पास गईं। उनका अंचल फट गया था। सचिव ने उनकी यह दशा देखी तो उनका दिल धक्-से रह गया।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

शर्मी ने कहा, "स्वर्ग से उतरी अप्सरा तो मैं हूँ नहीं! तुम मेरी ओर ऐसे क्यों ताक रहे हो? मैं तो तुम्हारी दादी के बराबर हूँ। लगता है तुम माता शर्मी को भूल गए हो। तुम देख नहीं सकते कि हम कैसे आए हैं? जंगलों को चीरकर बीहड़ रास्तों से भागते हुए यहाँ पहुँचे हैं, इसलिए पाँव छिल गए हैं, कपड़े तार-तार हो गए हैं और जगह-जगह काँटों ने हमें बींध डाला है।"

इन शब्दों ने मन्त्री कुणिक पर कोड़ों की-सी मार की। वस्तुस्थिति की प्रतीति होने में उन्हें थोड़ी देर लगी। पर उसका ज्ञान होते ही उन्होंने पूछा, "माता, आप यहाँ कैसे? हम तो यह समझ रहे थे कि मोस ने या तो आप सभी को मार डाला है या कैद कर लिया है!"

माता शर्मी ने कहा, "सबसे सारी बातें कहते-कहते मैं थक जाऊँगी। वहाँ हमारी हत्या होनेवाली थी, लेकिन बालमुनि हमारी रक्षा को पहुँच गए। उन्होंने हमें गोधूलि दौड़ जाने और वहाँ से क्रीवी की नाव द्वारा तेरे पास पहुँचने को कहा। तुझे अब हमें हस्तिनापुर ले जाना है।"

"आप थोड़ी देर तट पर बैठिए।" मन्त्री कुणिक ने कहा, "माता शर्मी, क्या आप स्वयं मुनि से मिली थीं?"

मन्त्री कुणिक के चेहरे पर अविश्वास की झलक देखकर शुक को लगा कि उसे स्थिति स्पष्ट करनी होगी। उसने कहा, "मन्त्री कुणिक, पिताजी मोस के यहाँ बन्दी हैं। उन्होंने हमें भगाकर मुक्त होने और आपके पास पहुँचने की आज्ञा दी थी। उन्होंने स्वयं आना पसन्द नहीं किया। अपना भाग्य उन्होंने ईश्वर के हाथों सौंप दिया है।"

तब तक मुनि के शिष्य भी वहाँ आ पहुँचे।

"लेकिन आप सब लोग मुनि को अपने साथ लेकर क्यों नहीं आए?" कुणिक परिस्थिति को ठीक से समझ नहीं पा रहे थे, इसलिए पूछा।

"कुणिक, तू बालमुनि को पहचानता नहीं है।" शर्मी ने कहा, "हस्तिनापुर के तमाम हाथी मिल जाते तो भी उन्हें डिगा नहीं पाते।"

"अब तक तो उनकी हत्या भी हो गई होगी!" कुणिक ने कहा।

"हाँ, मोस के क्रूर पंजों से बचने की सम्भावना कम ही है।" शर्मी ने कहा। कुणिक के संशय ने उन्हें चोट पहुँचाई थी, इसलिए उन्होंने कहा, "और यदि तूने सही बर्ताव नहीं किया तो माता शर्मी से तू बच नहीं सकेगा।" माता शर्मी के शब्द प्रभावशाली थे। धर्मक्षेत्र में हुए वाजपेय यज्ञ में अतिथियों के आदर-सत्कार में वह अग्रणी रही थीं।

मन्त्री कुणिक ने देखा कि परिस्थिति कठिन है। उन्होंने क्रीवी को और उनके दोनों पुत्रों को किनारे पर आकर सबके साथ नाश्ता करने का निमन्त्रण दिया।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

शुक बोला, "हम ब्रह्मचारी तो स्नान-सन्ध्या करने के बाद ही यह प्रसाद ले सकेंगे।"

नाविकों ने सभी को भोजन कराया। माता शर्मी ने कौर हाथ में लिया लेकिन उन्हें आचार्य का, अपनी सन्तानों का, आश्रम का और शायद मोस का भोग बन गए कृष्ण का स्मरण हो आया और उन्होंने कौर वापस रख दिया।

शुक उनके पास खड़ा था। वह बोला, "माता शर्मी, जो बीत गया उसे बिसार दो। हमें भविष्य का निर्माण करना है।" माता ने शुक को देखा। उनका गला भर आया। बोलीं, "मेरे आचार्य गए, मेरी सन्तानें गईं, कौन जाने कृष्ण पर भी क्या बीती होगी? अब मेरा क्या बचा है?"

शुक ने नीचे झुककर माता शर्मी के सिर पर हाथ रखा। स्त्री को स्पर्श न करने की अपनी शपथ वह भूल ही गया। उसने कहा, "माता, तुम चिन्ता न करो। मैं तो हूँ न! आप यह कैसे भूल जाती हैं?"

"एक तू ही मेरी आशा है।" माता शर्मी ने शुक के पैर पकड़ लिये।

शुक ने स्नेहपूर्वक माता शर्मी के दोनों हाथ अपने हाथों में ले लिये और कहा, "यों निराश न हों, माता! ईश्वर हमारे साथ है। हम गोधूलि आश्रम में फिर यज्ञवेदी स्थापित करेंगे और अग्नि का आह्वान करेंगे। ईश्वर आपको अवश्य सुख प्रदान करेगा। विश्वास मत छोड़ो।"

थोड़ी देर रोने के बाद माता शर्मी का मन कुछ हलका हुआ। उन्होंने आँसू पोंछे और स्वस्थ होकर कुणिक से कहा, "चलो, अब हम हस्तिनापुर चलेंगे।"

मन्त्री कुणिक ने सिर हिलाया, "माता शर्मी, आप जो कहती हैं वह करना मेरे लिए सरल नहीं है। मुझे भरतश्रेष्ठ गांगेय की आज्ञा का भी ध्यान रखना है। उन्होंने मुझसे कहा है कि बालमुनि का बाल भी बाँका नहीं होना चाहिए। मोस ने क्या कहा है, यह मुझे बताइए।"

माता शर्मी के कहने पर शुक ने पूरी घटना कुणिक को सुनाई। आश्रम पर मोस का हमला हुआ उसके बाद क्या-क्या घटित हुआ वह सब बताया। किस प्रकार आचार्य और उनकी सन्तानों का वध हुआ, किस प्रकार आश्रम को जलाया गया, आश्रम की स्त्रियों को किस प्रकार पशुओं की तरह गाँव तक ले जाया गया, यह सब मर्मान्तक कथा शुक ने कही और अन्त में कहा, "अब पिताजी अपना बलिदान देकर जनकल्याण का कोई उपाय करने को कटिबद्ध लगते हैं।"

"इस सबको देखते हुए हस्तिनापुर वापस जाने से पहले मुझे दो बार विचार करना पड़ेगा—या तो मुझे बालमुनि की रक्षा करनी चाहिए या फिर उनकी हत्या करनेवालों को सजा देनी चाहिए।" कुणिक ने कहा।

"लेकिन बालमुनि ने हमें निर्देश दिया है कि तुम्हें हम सबको हस्तिनापुर

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ले जाना चाहिए।" शर्मी ने कहा।

"ठीक है, लेकिन गांगेय की आज्ञा का क्या होगा? मैं हस्तिनापुर का मन्त्री हूँ, मुनि को बचाने का दायित्व मुझे सौंपा गया है।"

"लेकिन यह तू करेगा कैसे? मुनि तो अब तक मोस का ग्रास बन चुके होंगे!" शर्मी ने कहा।

"मैं राजनौका को गोधूलि के किनारे ले जाऊँगा।" कुणिक ने कहा, "आश्रम को जलाना और आचार्य गौतम जैसे श्रोत्रिय का वध करना भरतश्रेष्ठ की सत्ता को चुनौती देने के समान है। भरतश्रेष्ठ ने प्रतिज्ञा की है कि वे धर्म की रक्षा करेंगे और धर्म का नाश करनेवालों को दंड देंगे, मैं इस पक्ष को भुला नहीं सकता।"

"लेकिन हमारे हस्तिनापुर जाने का क्या होगा?" शर्मी ने पूछा।

"इसके लिए थोड़ी प्रतीक्षा करनी होगी।" कुणिक ने कहा, "कल मैंने तीन नाविकों से कहा है कि वे अपनी-अपनी नौकाएँ लेकर मेरे पास आएँ। स्त्रियाँ ब्रह्मचारियों के साथ इन नौकाओं में रहेंगी। क्रीवी हमारे साथ चलेगा।"

"तब तो मोस मुझे मार ही डालेगा न!" क्रीवी ने फिर माथा पीट लिया।

"तू अब अपना जीवन बचाने की बहुत चिन्ता मत कर। तू अब बुड्ढा हो गया है। तुझे मारने की चिन्ता किसे है! लेकिन यदि तू हमें रास्ता नहीं बताएगा तो तेरी मृत्यु तत्काल हो जाएगी।"

"जैसी आज्ञा!" क्रीवी ने सिर नवाकर कहा, "माता शर्मी ने मुझे बालमुनि का जो आदेश दिया था उसका पालन करके मोस को मैं पहले ही रुष्ट कर चुका हूँ। अब मैं उसके पास वापस नहीं जाऊँगा। मैंने उसके आदेश का उल्लंघन किया है। फिर भी तुम्हारा साथ तो देना ही होगा, उसके बिना छुटकारा कहाँ?"

"हाँ, अब कुछ समझ की बात की तुमने।" कुणिक ने कहा। फिर माता शर्मी से उन्होंने कहा, "माता शर्मी, आपके साथ सभी स्त्रियाँ और ब्रह्मचारी छोटी नावों में यही रहेंगे। दो मल्लाह और दो धनुर्धारी छोड़ जाऊँगा। काफी होंगे। शेष सबको अपने साथ ले जाऊँगा।"

"नहीं, इसकी कोई आवश्यकता नहीं।" माता शर्मी ने कहा। अब उनका पूर्व स्वस्थ रूप लौट चुका था। बोलीं, "यदि तुम आश्रम का उद्धार करने या बालमुनि को बचाने आश्रम में जा रहे हो तो मैं भी चलूँगी। मैं बालमुनि की माँ हूँ।" माता शर्मी की आँखों के सामने कृष्ण की बचपन की छवि तैर गई।

कुणिक ने कहा, "यदि लड़ाई हुई तो आप बाधक ही होंगी।"

माता शर्मी ने दोनों हाथ कमर पर रखकर आधिकारिक स्वर में कहा, "मन्त्री कुणिक, अपने पति, अपने आचार्य, अपने बच्चों के प्रति मेरा यह कर्तव्य है। कुछ भी क्यों न हो, मैं तुम्हारे साथ चलूँगी। हमें बालमुनि की रक्षा करनी ही चाहिए,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

नहीं तो उन्हें दंडित करना चाहिए जिन्होंने उनकी हत्या की है। मेरे तो बालमुनि और शुक, ये दो ही बच्चे बचे हैं।'' कहते-कहते उनकी साहसपूर्ण वाणी भारी हो गई, गला भर आया, और आँखों में आँसू छलक उठे। शुक ने शर्मी की पीठ पर हाथ रखा। शुक के कन्धे पर सिर रखकर वे कुछ देर सुबकती रहीं फिर सुबकियाँ दबाकर उन्होंने अपने आपको नियन्त्रित किया।

''माता शर्मी, मेरा मन तो कहता है कि पिताजी का वध प्रभु कदापि नहीं होने देंगे।'' शुक ने कहा, ''पिताजी का पूरा जीवन चमत्कारी रहा है, कई बार वे संकट से बचे हैं। उनके बचने पर ही धर्म का बचना निर्भर है। मन्त्री कुणिक, हम ब्रह्मचारीगण भी आपके साथ चलेंगे।''

मुनि का एक शिष्य आगे आया और बोला, ''मैं भी आपके साथ चलूँगा। मैं अपने गुरु को नहीं छोड़ सकता।''

''ठीक है, आप सभी एक बात अवश्य ध्यान में रखना—जब तक मैं आश्रम से मोस के लोगों को बाहर नहीं निकाल दूँगा तब तक आप सभी लोग राजनौका में ही रहेंगे। केवल सैनिक ही मेरे साथ चलेंगे।'' कुणिक ने कहा।

''लेकिन तुम लोग थोड़े हो और वे लोग संख्या में ज्यादा हैं।'' शर्मी ने कहा।

''आप चिन्ता न करें, माता शर्मी!'' कुणिक ने मुस्कराकर कहा, ''मैं जिन धनुर्धारियों को लाया हूँ, वे कुशल योद्धा हैं। हस्तिनापुर के श्रेष्ठ धनुर्धारियों के समक्ष इन लोगों की क्या बिसात कि टिक जाएँ। सभी नाविक नौका का ध्यान रखेंगे। तो फिर चलो, हम सब गोधूलि चलें।''

और राजनौका धीरे-धीरे गोधूलि की ओर बढ़ने लगी।

मोस महिष की आराधना आरम्भ करता है

राजनौका गोधूलि के किनारे आ पहुँची। तीर-तरकस से लैस धनुर्धर और भाले लिये हुए नाविक किनारे पर कूद पड़े। धनुर्धरों को देखकर आश्रम के मैदान में रखवाली के लिए खड़े दोनों रक्षक भाग खड़े हुए और जंगल में अदृश्य हो गए। कुणिक ने पहले परिस्थितियों का चतुर्दिक् निरीक्षण किया और तब स्त्रियों और ब्रह्मचारियों को तीनों नौकाओं से बाहर आने का निर्देश दिया।

मन्त्री कुणिक ने चार भालाधारी नाविकों को आश्रम में ही रहकर स्त्रियों व ब्रह्मचारियों की रक्षा करने का निर्देश दिया और स्त्रियों व ब्रह्मचारियों को कहा कि वे आश्रम के मैदान में ही रहें।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

“हाँ, हम यहीं रहेंगे,” शर्मी ने कहा, “हम आश्रम का मैदान साफ करेंगे और यज्ञवेदी की स्थापना के लिए उसे तैयार रखेंगे। तुम सब लोग बालमुनि को लेकर जल्दी वापस आना।”

कुणिक क्रीवी की तरफ मुड़े और उससे कहा, “क्रीवी, अब तुम हमें बस्ती का रास्ता बताओ। जो रास्ता छोटा हो, उसी रास्ते हमें ले चलो।”

“मोस मुझे मार डालेगा!” क्रीवी ने बच्चों की भाँति रुदन करते हुए कहा।

कुणिक ने भयावह दृष्टि से उसकी ओर देखा और कहा, “मोस तो तुझे कल मारेगा लेकिन यदि मुझे रास्ता नहीं बताया तो मैं तुझे आज ही मार डालूँगा!”

“अच्छा, अच्छा,” क्रीवी बोला, “यदि मैं आपको वहाँ ले जाता हूँ तो मोस मुझे मार डालेगा और नहीं ले जाता हूँ तो आप मुझे मार डालेंगे। तो फिर मेरे बच्चों का क्या होगा रे...?” यह कहते हुए क्रीवी दहाड़ें मारकर रोने लगा।

“यदि तुम मेरी आज्ञा मानोगे तो उनका या तुम्हारा कुछ भी नहीं बिगड़ेगा।” कुणिक ने कहा, “चल, खड़ा हो जा और हमें रास्ता बता।”

किसी भी क्षण मृत्यु तो अब होगी ही, ऐसा भाव मन में धारण कर क्रीवी आगे आया और जंगल में होकर बस्ती की ओर जानेवाले मार्ग पर कुछ योद्धाओं को रास्ता बताता हुआ चलने लगा।

ज्योंही वे बस्ती के पास पहुँचे त्योंही कुणिक को एक भी शब्द कहे बिना बल्कि उसकी ओर दृष्टि उठाए बिना क्रीवी गोधूलि की दिशा में भाग छूटा। उसे जीवन प्रिय था। वह कुणिक या मोस किसी के भी सामने नहीं पड़ना चाहता था।

कुणिक ने देखा कि मोस की जाति के कुछ व्यक्ति सामना करने के लिए तैयार खड़े हैं। उन्होंने एक धनुर्धर को तीर छोड़ने का निर्देश दिया। धनुर्धर ने धनुष उठाया, तरकस से तीर खींचा और निशाना बाँधक़र छोड़ दिया। तीर ठीक निशाने पर पड़ा और सामने खड़े मोस के रक्षकों में से नायक-से दिखनेवाले आदमी की छाती में धँस गया। वह जमीन पर गिर पड़ा और गिरते ही उसके साथी वहाँ से भाग खड़े हुए।

कुणिक की आज्ञा हुई कि शंख फूँके। धनुर्धारियों ने भयंकर शंख-निनाद किया।

पूरी बस्ती में भगदड़ मच गई। खतरे की सूचना देने के लिए ढोल-तुरही बजने लगे। स्त्रियाँ और बच्चे दौड़कर छिप गए। कबीलेवाले झोंपड़ियों से बाहर निकल आए और चौपाल की ओर दौड़े। लेकिन वे चौपाल तक पहुँचें उससे पहले ही कुणिक का नस पर अधिकार हो चुका था। ऐसे भाले, ऐसे धनुष-वाण और इतने सुसज्जित धनुर्धारी उन्होंने पहले कभी नहीं देखे थे। भयभीत होकर वे इतनी दूरी पर खड़े हो गए कि सुरक्षित रह सकें।

कुणिक तथा अन्य योद्धाओं ने फिर शंखनाद किया। पूरे जंगल में शंखध्वनि

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

गूँज उठी। तब उस बस्ती की बोली समझनेवाला एक सैनिक आगे आया और भरतश्रेष्ठ गांगेय का नाम लेकर बस्तीवालों से कहा कि कुरुओं के शासन के प्रति अपराध करनेवाले मोस को उपस्थित किया जाए और मोस ने जिन्हें बन्दी बना रखा है उन मुनि द्वैपायन को आदरसहित ले आएँ। यदि उन्होंने इस आज्ञा का पालन न किया तो बस्ती जला दी जाएगी और बस्ती के समस्त लोगों का वध कर दिया जाएगा। एक भी आदमी जीवित नहीं छोड़ा जाएगा।

मोस के कई अनुयायी तो यह सुनते ही मारे भय के पीछे हट गए और जंगल में जा छिपे।

बस्ती के लोगों का प्रमुख वयोवृद्ध कृप आगे आया। उसने हाथ जोड़कर कुणिक का अभिवादन किया और आश्रम में सीखी आर्यभाषा में बोला, ''मैं शर्मी का पिता हूँ। आप थोड़ा ठहरिए, मैं मुनि द्वैपायन को यहाँ ले आता हूँ।''

कुणिक ने राहत की साँस ली। बालमुनि ठीक-ठाक थे। कृप से कहा, ''तुमने यदि मेरे साथ द्रोह किया तो मैं एक-एक का प्राण ले लूँगा।''

कुणिक और उनके योद्धा कृप के लौटने की प्रतीक्षा करने लगे। कबीलेवाले भी कृप की प्रतीक्षा में शान्त खड़े रहे।

थोड़ी देर में कृप के साथ हँस-हँसकर बातें करते हुए मुनि द्वैपायन आते दिखाई दिए। मुनि के चेहरे पर बालसुलभ मुस्कान थी। उन्होंने कहा, ''मन्त्री कुणिक, आपने यह सब कष्ट क्यों किया? मुझे तो एकमात्र भगवान का आंश्रय ही प्राप्त था। ब्राह्मतेज अपना काम पूरा कर चुका है। धनुषों से तीर उतार लो, उन्हें तरकश में रखो और भालों को धरती पर रख दो। कृप, तुम भी अपने लोगों से ऐसा ही करने को कहो।''

कुणिक ने मुनि को साष्टांग प्रणाम किया। उनके बाद सैनिकों ने मुनि की चरण-वन्दना की। मुनि ने दाहिना हाथ उठाकर सभी को आशीर्वाद दिया, ''शतायु हो! महिष की सन्तानों को भी सुख-शान्ति मिले। आप अपने धनुष-बाण नीचे रखो। कृप, अपने आदमियों को भी ऐसा ही करने को कहो।''

कुणिक का संकेत मिलते ही कुछ सैनिकों ने अपने शस्त्र भूमि पर रख दिए। कृप ने अपनी भाषा में कुछ कहा और बस्ती के लोगों ने भी अपने-अपने शस्त्र भूमि पर रख दिए।

''कृप,'' मुनि ने कहा, ''हमें अब सारे कबीले को भोजन के लिए बुलाना चाहिए। बच्चे भी भूखे होंगे, उन्हें भी भोजन कराओ।''

''लेकिन मोस कहाँ है?'' कुणिक ने पूछा।

''वह यहाँ के महिष-मन्दिर में छिप गया है। महिष की आराधना कर रहा है।'' मुनि ने हँसकर कहा।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

''वह छिप गया है?'' कुणिक ने आश्चर्य से पूछा, ''उसने गोधूलि आश्रम जलाया, आचार्य गौतम व अन्य अनेक श्रोत्रियों का वध किया और आपको बन्दी बना लिया। ऐसे दुष्कृत्य करनेवालों को कड़ा दंड देने का मुझे आदेश है।''

''मन्त्री कुणिक,'' मुनि ने कहा, ''भगवान और इस कबीले के निवासियों ने उसे पर्याप्त सजा दे दी है। उसके अपने ही आदमी अब उसके वश में नहीं हैं, उसकी आज्ञा का पालन नहीं करते।''

बस्ती के प्रमुख वृद्धजनों ने सिर हिलाकर मुनि के वक्तव्य की पुष्टि की।

''लेकिन उसे कैसा दंड मिला है?'' कुणिक ने पूछा।

''उसकी पत्नी माता शर्मी के साथ भाग चुकी है।'' मुनि ने कहा, ''और, इस कबीले के नियमानुसार, मुखिया की पत्नी मुखिया की सत्ता का प्रतीक हुआ करती है। वह भाग जाए तो इस कलंक के कारण वह किसी को भी मुँह दिखाने योग्य नहीं रहता।''

''क्या इसीलिए वह छिपा है?''

''हाँ,'' मुनि ने कहा, ''इस कलंक के कारण उसका जीना कठिन हो गया है। कबीले का नियम है कि मुखिया कबीले की सभी स्त्रियों का स्वामी होता है। अपनी निजी पत्नियों का तो स्वामी होता ही है। पत्नियों में से जो प्रमुख पत्नी होती है वह उसके अधिकार की, राजसत्ता की, प्रतीक होती है। उसका चला जाना मुखिया का घोर अपमान है। इसीलिए वह महिष के मन्दिर में जा बैठा है।'' फिर मुनि मुस्कराकर बोले, ''प्रार्थना करने से उसे कोई हानि नहीं होगी, उससे उसमें नम्रता ही आएगी।''

''लेकिन मुझे तो उसे वहाँ जाकर पकड़ना ही पड़ेगा।'' कुणिक ने कहा, ''भरतश्रेष्ठ की आज्ञा है कि ऐसे लोगों को तत्काल यमराज को सौंप दिया जाए।''

''कुणिक, मोस की चिन्ता मत करो। कृप अब इस कबीले का मुखिया है, और आपके आने से पहले ही इस बस्ती के निवासियों ने यह निर्णय कर लिया था कि वे गोधूलि आश्रम को फिर से खड़ा करेंगे। क्यों, सही कह रहा हूँ न, कृप'' मुनि द्वैपायन ने पूछा।

''हाँ।'' कृप ने कहा।

''फिर भी मुझे भरतश्रेष्ठ की आज्ञा तो पालनी ही पड़ेगी।'' कुणिक ने कहा।

''क्या करोगे?'' मुनि ने पूछा।

''उसको शिक्षा देनी है। इसलिए मुझे उससे मिलना ही होगा। मेरी उससे भेंट करा दीजिए।'' कुणिक ने कहा।

मुनि ने कृप की ओर देखकर कहा, ''इन्हें महिष-मन्दिर में ले जाओ, कृप।''

''वह आपको नहीं मिलेगा। वह महिष की मूर्तिवाले निज मन्दिर के भीतर

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

बन्द है। उसके साथ इस कबीले का जादू करनेवाला ओझा भी है।'' कृप ने कहा।

''जादूगर ओझा की चिन्ता मत करो, कृप! ऐसे लोगों से निपटना मैं जानता हूँ।'' कुणिक ने कहा।

कृप आगे चला। पीछे मुनि, कुणिक, चार धनुर्धारी तथा बस्ती के कई बुजुर्ग भी चले। मन्दिर एक टेकरी पर था। बाँस की कुटिया-जैसे मन्दिर में भैंसे की मूर्ति थी, जिसे भगवान महिष का अवतार मानकर पूजा जाता था।

उसके आगे जादूगर ओझा ने मन्त्र बोलकर एक घेरा खींच रखा था। कृप ने मुनि की ओर देखकर कहा, ''यह घेरा मन्त्रबद्ध है। मैं इसका उल्लंघन नहीं कर सकता। यदि मैं इसे लाँघ जाऊँ तो महिषासुर रुष्ट हो जाएँगे।''

मुनि हँसे, ''तो तुम यहीं खड़े रहो। मैं जाऊँगा और कुणिक जाएगा। भगवान हमारी रक्षा करता है।''

कुणिक ने कहा, ''आप भी मत आइए। मैं अकेला ही मोस के लिए काफी हूँ। मुझे उसको दंड देना ही है। कृप, वह अन्दर क्या कर रहा होगा?''

''वह महिष की आराधना करता होगा और अपनी पत्नी को लौटाने के लिए भगवान महिष से प्रार्थना करता होगा। वह उसे वापस बलि के रूप में महिष को ही चढ़ा देना चाहता है।'' कृप ने कहा।

''चलो, पहले मोस से मिल तो लें।'' मुनि ने कहा, ''शायद मन्दिर के वातावरण से उसकी मति फिर गई हो और वह धर्म के मार्ग पर आ जाए।''

मोस जब धराशायी होता है

कृप को समझ में नहीं आ रहा था कि वह अब क्या करे। बालमुनि जब बच्चे थे तब से वह उन्हें चाहता था, स्नेह करता था। फिर, जब वे गोधूलि आश्रम में यात्रा पर आते और यमुना के किनारे ठहरते और वहाँ जनसाधारण के भले की बातें करते, काम करते, उनसे भी वह बहुत प्रभावित हुआ करता था, उनके प्रति उसके मन में आदर का भाव और अधिक बढ़ जाता था। मोस उसे पसन्द नहीं था। मोस के आचार-विचार से उसे अत्यन्त घृणा थी। इसलिए जब उसे ज्ञात हुआ कि बालमुनि के कारण मोस ईश्वर का कोपभाजन हुआ है तब वह बहुत प्रफुल्लित हुआ था और बालमुनि के प्रति उसके मन में जो आदर का भाव था वह और अधिक बढ़ गया था।

यही कारण था कि मोस और महिषदेव के क्रोध की चिन्ता न करते हुए उसने बालमुनि को मन्दिर में ले जाने का साहस किया था। दूर खड़े हुए अन्य

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

बुजुर्गों के पास भी वह गया। वे बालमुनि से डरे हुए थे, इसलिए पास आने का साहस नहीं कर पा रहे थे। उन्होंने देखा था कि बालमुनि साक्षात् मृत्यु के समक्ष भी विचलित नहीं हुए थे, जबकि मोस पर ईश्वर ने कृपा नहीं की, कोप किया था। यह देखकर वे दंग रह गए थे। इसलिए जब कृप ने बालमुनि को मन्दिर में ले जाने की राय उनसे माँगी तो उन्होंने सहज सहमति दे दी। कृप ने बालमुनि को यह सूचना दी और कुछ बुजुर्गों तथा धनुर्धारियों की सहायता से काँटोंवाली बाड़ हटाई। मन्दिर की दीवार बाँसों की थी जो रस्सियों से बाँधकर बनाई गई थी।

मुनि द्वैपायन ने मोस को मन्दिर का द्वार खोलने के लिए कहा, लेकिन अन्दर से कोई उत्तर नहीं आया। तब मन्त्री कुणिक के आदेश से धनुर्धारियों ने मन्दिर का द्वार तोड़ डाला।

भीतर उन्होंने एक विचित्र दृश्य देखा। एक स्वस्थ भैंसा खूँटे से बँधा खड़ा था। काली चमकदार त्वचावाले इस भैंसे का मुँह लाल रँगा हुआ था और उसके चारों पैर चार खूँटों से जकड़े हुए थे। उसके सामने घास पड़ी थी। कभी वह घास खाता और कभी बन्धनमुक्त होने को तड़फड़ाता।

कबीले की प्रथा-अनुसार जब मोस सिंहासनारूढ़ हुआ तब वहाँ जो बूढ़ा भैंसा बँधा रहता था उसका बलिदान कर दिया गया और उसकी जगह यह युवा भैंसा दिव्य महिष के रूप में बाँधा गया था।

मोस उस भैंसे के सामने घुटनों के बल बैठा था। उसका मस्तक जमीन पर टिका हुआ था। उसके पास ताँबे की एक छोटी तलवार तथा चमकीली तीखी धारवाले तीन भाले पड़े थे। उसके एक ओर गाँव का ओझा बैठा था। उसका भी मुँह लाल रंग से रँगा हुआ था और वह मन्त्रों का उच्चारण कर रहा था।

मन्त्री कुणिक का हाथ तलवार पर गया। उन्होंने तलवार म्यान से बाहर खींच भी ली किन्तु मुनि ने कहा, "कुणिक, हमें यों इस सरदार की हत्या नहीं करनी है। यह एक मन्दिर है। हम इसे वधशाला नहीं बनाएँगे।"

फिर मोस की ओर देखकर मुनि ने कहा, "बहादुर मोस, आप खड़े हो जाइए। आपको इस विधि से आपकी पत्नी वापस नहीं मिलेगी। वह अभी गोधूलि आश्रम में है और आश्रम को फिर से खड़ा करने में माता शर्मी की सहायता कर रही है।"

मोस ने सिर उठाया। उसकी अंगारे-सी लाल दृष्टि पहले मुनि पर पड़ी। फिर उसने कृप की ओर देखा। कृप को देखते ही वह दहाड़ उठा, "नीच द्रोही, तूने ही शर्मी और अन्य स्त्रियों को भागने में मदद की है। शर्मी ने मेरी पत्नी को भगा ले जाने का महा अपराध किया है और मैंने जिस आश्रम को नष्ट किया वह उसी को वापस खड़ा कर रही है!" मोस एक क्षण रुका, फिर अपने क्रोध पर नियन्त्रण

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

लाते हुए उसने कहा, "कृप, तूने मेरी आज्ञापालन करने की शपथ तोड़ी है! तूने दिव्य महिष के प्रति द्रोह किया है। उसका शाप जीवन-भर तेरे पीछे लगा रहेगा।"

मोस गुस्से से काँप रहा था। दहकती आँखों से कृप की ओर देखते हुए वह आगे बोला, "दिव्य महिष तुझे अभी-का-अभी, जैसे तू खड़ा है उसी दशा में, भस्म कर देगा। यह ओझा यही मन्त्र पढ़ रहा है कि दिव्य महिष का कोप तुझ पर उतरे।" मोस अत्यन्त उत्तेजित था, उसकी आवाज में भरभराहट बढ़ रही थी, स्वर अस्पष्ट होने लगा था और उसकी छाती धौंकनी के समान चलने लगी थी। वह बुरी तरह से हाँफ रहा था। अचानक उसने पास में पड़ी तलवार उठा ली।

दिव्य महिष का शाप उन पर गिरेगा, यह सुनकर कृप तथा अन्य बुजुर्ग काँप उठे।

मोस ने महिष की ओर हाथ जोड़े और कहा, "हे दिव्य महिष, मैं आपका पुत्र हूँ। आपका कोप इन लोगों पर उतरे। इनका नाश करो।" फिर उसने मुनि की ओर देखा और कहा, "यह भी इन लोगों का ही कोई जादूगर है। यह किन्हीं अजाने देवताओं की बातें करता है। इसका भी नाश करो।"

सभी लोग भय से काँपते खड़े रहे। मुनि स्वस्थ मन अविचलित खड़े थे। उनके होंठों पर करुणामिश्रित मुस्कान थी। कोई घटना नहीं घटी। किसी का अनिष्ट नहीं हुआ। भैंसे ने मात्र एक लम्बी सुड़-सुड़ करती साँस ली और फिर मुँह नीचा करके घास चरने लगा।

"मोस, अब तुम मूर्खता नहीं करोगे।" मुनि ने स्नेह-भरे स्वर में कहा, "तूने घातक कृत्य किए हैं। आश्रम को जलाया है। श्रोत्रियों की हत्या की है। यहाँ तक कि निर्दोष नन्हे बालकों को भी मार डाला है। मैं तेरा मित्र हूँ। मैं तेरी सहायता करना चाहता हूँ। तेरा या तेरे सहायक जनों का अनिष्ट नहीं करना चाहता।"

मन्त्री कुणिक अपना कर्तव्य पूरा करने के लिए अधीर हो रहे थे। बोले, "भरतश्रेष्ठ गांगेय की आज्ञा है कि श्रोत्रियों के प्रति अपराध करनेवालों को मैं दंड दूँ। इस पापी को तो इसके अपराध का दंड देना ही होगा।"

अग्नि में घी पड़ते ही जैसे ज्वाला भभक उठती है, वैसे ही कुणिक के शब्द सुनकर मोस की आँखों में क्रोध की ज्वालाएँ भभक उठीं, "मुझे सजा देनी है? दिव्य महिष के पुत्र को?" वह चीखा, "निकल जा यहाँ से!"

मुनि ने संकेत द्वारा कुणिक को शान्त रहने के लिए कहा।

"मोस, क्रोध से किसी का भी कल्याण नहीं हुआ है। तेरा भी नहीं होगा।" यह कहकर उन्होंने नीचे झुककर थोड़ी घास उठाई और भैंसे के मुँह में दी। भैंसे ने मुनि की ओर देखा और लगा जैसे उसके चेहरे पर परिचय की मुस्कान उभर आई हो।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भैंसे के चेहरे पर आया परिवर्तन मोस ने भी देखा। उसने खड़े होकर चीखकर भैंसे से कहा, "दिव्य महिष, इन दुष्ट मनुष्यों का नाश करो। ये लोग विना आपकी अनुमति के मन्दिर में घुसे हैं और आपके पुत्र को धमका रहे हैं। इन्हें मृत्युदंड दो देव, इन्हें मृत्युदंड दो!"

मोस यों बोलता चला गया और मुनि शान्त भाव से निश्चल उसे सुनते रहे, फिर हँसकर बोले, "मोस, प्रभु ने तुम्हें पर्याप्त दंड दे दिया है। तेरी सत्ता के प्रतीक रूप में समादृत तेरी पत्नी तुझे छोड़ चुकी है। तू अब भूतकाल को भूल जा। मैं भी तेरे अपराधों को भूल जाऊँगा, और अग्निदेव से प्रार्थना करूँगा कि वे तुझे क्षमा प्रदान करें।"

मुनि जब बोल रहे थे तब मोस की आँखें अधीरता के साथ तड़फड़ाहट में इधर-उधर घूमती जा रही थीं। उसका चेहरा तमतमाता जा रहा था। किसी पागल आक्रामक की तरह मुनि की ओर देखकर वह चिल्लाया, "दुष्ट जादूगर!" उसकी भुजाएँ थर-थर काँपने लगीं।

मुनि ने उसकी ओर करुणापूर्ण दृष्टि डाली और मन्द स्वर में कहा, "सरदार बहादुर, तू जानता है कि मैं कोई जादूगर नहीं हूँ। मैं द्वैपायन मुनि हूँ। पराशर मुनि यहीं गोधूलि के आश्रम में स्वर्ग सिधारे थे। यह आश्रम अब एक तीर्थ है। मेरे पिता को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए लोग दूर-दूर से यहीं आते हैं।"

मुनि ने झुककर फिर थोड़ी घास उठाई और भैंसे के सामने की। भैंसा बड़े सन्तोष के साथ उसे मुँह में लेकर चबाने लगा। मोस ने जब यह देखा तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ और उसके हृदय पर इस घटना से बड़ा आघात पहुँचा क्योंकि दिव्य महिष को घास अर्पित करने का एकमात्र अधिकार तो सरदार का ही माना जाता रहा था। महिष किसी अन्य के हाथ से तो घास कभी स्वीकार करता ही नहीं था।

मोस के क्रोध का पार नहीं था। उसकी भुजाएँ फिर काँपने लगीं। बोला, "हे दिव्य महिष! आप भी मेरे विरुद्ध हो गए? मेरे शत्रु को आपने अपना मित्र बनाया?"

यह कहकर उसने तलवार उठाई और एक छलाँग में भैंसे के पास पहुँच गया। क्षण-भर उसने तलवार अपने सिर पर घुमाई, फिर आगे बढ़ा और अपने शरीर की समस्त शक्ति लगाकर भैंसे की गरदन पर तलवार का वार कर दिया, और एक से सन्तोष नहीं हुआ तो एक के बाद एक दो वार और किए।

भैंसा पीड़ा से चीखा, तड़फड़ाया। उसके मुँह और घावों से खून झरने लगा। अपने बन्धनों को तोड़कर भाग जाने का उसने अन्तिम प्रयास किया और फिर करुण मुद्रा में चारों पैर पसारकर वहीं ढेर हो गया।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मोस के शरीर पर भी रक्त के छींटे पड़े। उसकी तलवार से भी लहू टपक रहा था। उसी दशा में वह पास बैठे ओझा की तरफ मुड़ा।

''आपने भी मुझे धोखा दिया है! आपने कहा था कि दिव्य महिष इस दुष्ट से मेरी रक्षा करेंगे, लेकिन आप झूठे निकले! तो अब इसका फल भोगिए!'' ऐसा कहकर उसने ओझा के भी सीने में तलवार भोंक दी।

मोस ने अब अट्टहास किया और उस नंगी तलवार के साथ जैसे ही मुनि की ओर बढ़ा कि मन्त्री कुणिक तथा धनुर्धारियों ने उसे पकड़ लिया। मोस ने अपने आपको छुड़ाने का बहुत प्रयास किया किन्तु वह सफल नहीं हुआ। उसका अन्धा क्रोध खून बनकर उसकी आँखों में चढ़ा हुआ था। उसने जमीन पर तड़पते, दम तोड़ते खून में सराबोर ओझा की ओर देखा।

मोस के चेहरे पर अजीब तरह की विकृति आ गई। छूटने के प्रयास में वह दूर घिसटता चला गया, परन्तु धनुर्धारियों के सुदृढ़ हाथों से वह छूट नहीं सका।

'द्रोही, द्रोही, सभी लोग द्रोही हैं!' वह अस्पष्ट-से स्वर में चीखा, ''दिव्य महिष ने मुझसे छल किया, कृप ने भी मुझे ठगा, तुम सब लोगों ने मुझे धोखा दिया...'' क्षण-भर वह रुका, फिर बोला, ''मेरी पत्नी ने भी मुझे धोखा दिया!'' फिर मुनि की तरफ देखकर बोला, ''तुझ पर और इन सब पर दिव्य महिष का शाप गिरेगा।''

पूरी शक्ति लगाकर उसने झटके से एक हाथ छुड़ा लिया और जब तक कोई भी यह सोचता कि वह क्या करेगा, तब तक तो उसने अपने वक्ष में अपनी तलवार भोंक ली।

रक्त का फव्वारा फूट निकला और मोस की निष्प्राण देह धरती पर लुढ़क गई।

जब द्वैपायन भगवान बनते हैं

जिस स्थान पर कभी उनके पति का आश्रम था वहाँ अब भस्म की ढेरियाँ देखकर माता शर्मी के मन में पुरानी यादें उमड़ आईं। आँखों में आँसू और रुँधा हुआ कंठ लिये वे राख की ढेरियाँ साफ कराने के काम में जुट गईं। आचार्य गौतम की और उनके पुत्रों की हत्या जहाँ हुई थी, माता शर्मी जब उस स्थान पर आईं तो उनकी आँखों से आँसुओं की धाराएँ फूट पड़ीं। लेकिन उन्होंने अपने-आपको सँभाला। कभी उनकी आँखों में आँसू छलकते, कभी वे फूट-फूटकर रोतीं लेकिन आश्रम की सफाई में लगे लोगों का काम भी वे घूम-घूमकर देखती रहीं। सुस्ती दिखानेवाले ब्रह्मचारी को कभी सावधान करतीं, कभी हँसकर उत्साह बढ़ातीं, कभी सराहतीं और

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कभी किसी का कान भी स्नेह से उमेठ देतीं। उनके मन में यह लक्ष्य स्पष्ट था कि उस आश्रम की अधिष्ठात्री अब वही हैं और उस आश्रम का पुनर्निर्माण अब उन्हें ही करना है।

आश्रम को जलाए जाते समय कुछ आश्रमवासी भस्मक्षेत्र नामक स्थान पर जाकर छिप गए थे। अब उन्होंने जब यह समाचार सुना कि आश्रम का पुनर्निर्माण हो रहा है तो सच्चाई जानने व इसकी थाह लेने के लिए वे प्रतिदिन दो-दो आदमियों को गोधूलि भेजने लगे। इन्हीं लोगों ने एक दिन जब राजकीय नौका को गोधूलि के तट पर आते और माता शर्मी को एक नाव से उतरते देखा, तो उनके आश्चर्य का पार न रहा। कहीं वे मोस के हाथों न पड़ जाएँ, इस भय से जंगल-जंगल छिपते, जमीन पर हाथों के बल लेटकर रेंगते आश्रम की ओर बढ़े। वहाँ माता शर्मी तथा ब्रह्मचारियों को आश्रम की सफाई करते देखकर उनका साहस बढ़ा। उन्हें विश्वास हो गया कि अब मोस के वहाँ आने की कोई सम्भावना नहीं है।

माता शर्मी की तीव्र दृष्टि से वे छिपे नहीं रह सके। उन्होंने पुकारा, "रोहित, यहाँ आओ। डरपोक कहीं के! तेरे जैसे और कितने लोग उधर भस्मक्षेत्र में अभी जीवित हैं?"

रोहित और उसका साथी दोनों झाड़ी के पीछे से बाहर निकल आए। माता शर्मी के चरण-स्पर्श करके रोहित ने कहा, "माता, हम अठारह लोग वहाँ भस्मक्षेत्र में रहते हैं।"

"स्त्रियाँ कितनी हैं?" शर्मी ने पूछा।

"पाँच।" रोहित ने उत्तर दिया।

"तुम सब डरपोक हो।" शर्मी ने कहा, "तुम लोगों ने आश्रम के साथ प्राण त्याग करने की अपेक्षा जीना पसन्द किया? आचार्यवर की वीरता ने तुम्हें कोई प्रेरणा नहीं दी? आश्रमविहीन जीवन की जगह उन्होंने मरना अधिक अच्छा माना था। पर जो हुआ सो हुआ। मैं तुम्हें क्षमा करती हूँ। तुम अभी बालक हो। जाओ, शेष सभी लोगों को यहाँ ले आओ।"

सूर्यास्त होने से पहले ही आज शिष्यगण समुचित मन्त्रोच्चार के साथ यज्ञवेदी पर अग्निदेवता का आह्वान कर चुके थे और यज्ञ की ज्वालाएँ ऊँची उठने लगी थीं।

अँधेरा होते ही सभी अठारह आश्रमवासी भस्मक्षेत्र से वहाँ आ पहुँचे। कितने ही दिनों से उन्हें भोजन नहीं मिला था। राजनौका का मुख्य नाविक उनके लिए भोजन ले आया। माता शर्मी ने कहा, "तुम सभी डरपोक हो। मरने योग्य हो। लेकिन मैं तुम्हें क्षमा करती हूँ। कई दिन से तुमने कुछ भी नहीं खाया है, इसलिए

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

थोड़ा-थोड़ा खाना, भेड़ियों की तरह खाओगे तो बीमार पड़ जाओगे।"

आश्रम जलते समय दो गायें भी जंगल की ओर भाग गई थीं। उन्हें भी अन्तर्प्रेरणा हुई कि अब आश्रम में भय नहीं रहा। अतः वे भी वापस लौट आईं। पहले तो वे दूर खड़ी-खड़ी यज्ञवेदी की ओर देखती रहीं। उनकी एक आँख यज्ञवेदी पर थी और दूसरी आँख जंगल के रास्ते पर, ताकि कोई डर हो तो भाग छूटें। शर्मी ने खड़े होकर उन्हें पुकारा। पहले तो वे स्थिर खड़ी रहीं, पर जब उन्होंने माता शर्मी का स्वर पहचान लिया तो वे उनके पास दौड़ती हुई आ गईं। शर्मी ने उन पर प्यार से हाथ फेरा।

आश्रम में आ जाने के बाद सबके मन में एक ही चिन्ता थी कि कहीं मोस मुनि द्वैपायन को मार न डाले। मन्त्री कुणिक के पहुँचने से पूर्व ही यदि ऐसा हो गया तो क्या होगा?

मोस की जाति का एक वयोवृद्ध तथा गाँव के दो अन्य व्यक्ति जंगल की ओर से आते दिखाई दिए। धनुर्धारियों ने उन्हें देखते ही प्रत्यंचा चढ़ा ली। पास आते ही तीर छोड़ने की तैयारी कर ली। लड़ाई की आशंका से सभी एक जगह एकत्रित हो गए। माता शर्मी ने धनुर्धारियों से कहा, "उन्हें निकट मत आने देना। यदि वे ऐसी चेष्टा करें तो उन पर तीर चला दो।"

पहले बुजुर्ग ने ये शब्द सुने तो उसने हाथ जोड़कर कहा, "माता शर्मी, हम तो मात्र आपको इतनी ही सूचना देने आए हैं कि भगवान द्वैपायन तथा आपके वीर पिता कृप कल प्रातः ही यहाँ पहुँच जाएँगे।"

यह सुनते ही सभी को आनन्द हुआ। माता शर्मी का हृदय हर्ष से पुलकित हो उठा।

"मोस कहाँ है?" माता शर्मी ने पूछा।

"वह दिव्य महिष के देश में पहुँच गया।" बुजुर्गों ने उत्तर दिया।

कुछ और लोग आए। वे आश्रमवासियों के लिए भोजन लेकर आए थे।

समस्त आश्रमवासी थककर चूर हो गए थे इसलिए वे सो गए किन्तु माता शर्मी की आँखों में नींद नहीं थी। पति और पुत्र बार-बार उनकी आँखों के सामने आ रहे थे। ज्यों ही वे आँखें बन्द करतीं त्यों ही वे सारे भयंकर दृश्य उनके सामने तैरने लगते। पति और पुत्र की स्मृति आते ही उन्हें लगता कि अब सहन नहीं कर सकेंगी, समाप्त हो जाएँगी। किन्तु वे साहसी नारी थीं। पहले उनको मोस द्वारा भगाई गई स्त्रियों की मुक्ति की चिन्ता थी, अब अपने पति की इच्छाओं के अनुकूल आश्रम को फिर से बसाने की चिन्ता है। कर्तव्य पर डटे रहने का उनमें अद्भुत साहस है।

वे सो नहीं सकीं। जब आश्रम के प्रांगण की सभी स्त्रियाँ सो गईं तब वे

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

नदी के तट पर गईं और वहाँ बैठकर खूब रोईं।

आचार्य को याद करके रोते हुए उन्होंने पूछा, "हे आचार्य, आप मुझे छोड़कर क्यों चले गए? मेरी मृत्यु तक रक्षा करने का अपना वचन आप कैसे भूल गए?"

कृष्ण का जीवन बचाने के लिए उन्होंने भगवान के प्रति कृतज्ञता प्रकट की। मन को यह सोचकर सान्त्वना दी कि आश्रम फिर से स्थापित हो रहा है और यह प्रभु की ही कृपा है। उन्होंने दिव्य महिष को भी मन-ही-मन प्रणाम किया, जिनकी पूजा वे आचार्य गौतम से विवाह पूर्व किया करती थीं। वे किसी भी देवी-देवता को रुष्ट नहीं करना चाहती थीं।

शर्मी को यह ध्यान ही नहीं रहा कि वे कितनी देर तक नदी-किनारे बैठी रहीं। जब उनके मन का भार कुछ हलका हुआ तब वे अपने बिछौने की ओर जाने के लिए लौटीं।

अगले दिन प्रातःकालीन आवश्यक कार्यों को पूरा करके श्रोत्रियों ने विधिपूर्वक यज्ञ-होम किया तो उन्हें दूर से तुरुही व अन्य वाद्य-यन्त्रों के स्वर सुनाई पड़ने लगे। अब सभी लोग दौड़कर वहाँ पहुँचे जहाँ जंगल में होकर आनेवाला मार्ग आश्रम की ओर मुड़ता था।

भगवान द्वैपायन और कृप सबसे आगे थे। कृप अब नया सरदार बना था और इस सत्ता को सूचित करने के लिए उसका मुँह लाल रंग से पुता हुआ था। उनके पीछे अन्य पुरुष व स्त्रियाँ आ रहे थे। पुरुषों के हाथ में भोज्य-सामग्री थी और स्त्रियों की गोद में बच्चे और वे गीत गाती आ रही थीं।

माता शर्मी को यह देखकर अपार हर्ष हुआ। भावविभोर होकर वे उनके स्वागत को दौड़ पड़ीं। उनके वस्त्र फट गए किन्तु उन्हें इसका कोई भान नहीं रहा। वे तो 'कृष्ण, कृष्ण, मेरे बेटे कृष्ण!' कहती हुई दौड़ीं और भगवान द्वैपायन के चरणों में जा गिरीं। द्वैपायन ने उन्हें ऊँचा उठाया। माता शर्मी अत्यन्त भावाकुल थीं। सुबकते हुए बोलीं, "मेरे बेटे, आचार्य तो मर गए!"

द्वैपायन ने अपना हाथ माता के श्वेतकेशी मस्तक पर रखा और कहा, "माता, आचार्य कभी मर नहीं सकते। वे आपमें जीवित हैं। वे इन शिष्यों में वर्तमान हैं और महिषासुर की इन समस्त सन्तानों में भी वे निवास करते हैं।"

"मेरे बच्चे..." सुबकियों के बीच माता शर्मी बोलीं।

"नहीं-नहीं, वे भी जीवित हैं। उनकी स्मृति आपको आश्रम में स्थान-स्थान पर मूर्त रूप में दिखाई देगी। उसी स्मृति के सहारे आप इस आश्रम की अधिष्ठात्री बनकर इसका संचालन करेंगी।" द्वैपायन ने कहा।

एक हाथ से माता शर्मी को सहारा देकर भगवान द्वैपायन चल रहे थे और दूसरे हाथ से वहाँ इकट्ठे हो रहे लोगों को आशीर्वाद देते जा रहे थे। सबको सुनाते

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हुए ऊँचे स्वर में उन्होंने कहा, ''माता, जिन गायों और पशुओं का अभी तक मोस के लिए वध नहीं हुआ है उन्हें कृप वापस ले आया है! और माँ, एक और चमत्कार हुआ है, आदिवासियों के इस पूरे कबीले ने प्रायश्चित के रूप में यह प्रण किया है कि वे अब गोमांस या नरमांस कभी नहीं खाएँगे। चलो, अब हम स्नान करके अग्निदेवता को आहुति अर्पित करें।''

फिर द्वैपायन ने माता शर्मी की ओर मुड़कर कहा, ''माता, हम लोग इस स्थान को अब 'माता शर्मी का तीर्थ' कहें तो?''

इस प्रस्ताव को सुनकर माता शर्मी चौंक उठीं। उन्होंने कहा, ''अरे, इसे मेरा तीर्थ कैसे कहोगे? मैं स्त्री हूँ। मैं तो वेदों का उच्चारण भी नहीं कर सकती। इस तीर्थ को तेरा नाम मिलना चाहिए। तुझे भी यहीं रहना चाहिए।''

''मैं यहाँ कुछेक सप्ताह रहूँगा। मैंने मन्त्री कुणिक से कहा है कि वे जाबालेया को हस्तिनापुर से यहीं ले आएँ। अब यहाँ यज्ञवेदी फिर से वैसी ही प्रज्वलित होगी और शुद्ध स्वरों में श्रुति-मन्त्रों का पाठ भी होगा। यही मेरी हार्दिक इच्छा है।'' द्वैपायन ने कहा।

भगवान द्वैपायन तथा अन्य श्रोत्रियों ने सन्ध्या की और तब पावन अग्नि प्रज्वलित की।

आदिवासी आपस में भगवान द्वैपायन द्वारा किए गए चमत्कार की चर्चा कर रहे थे। उन्हें अब इसमें कोई सन्देह नहीं रहा था कि द्वैपायन भगवान ही हैं।

भगवान द्वैपायन ने सभी को भोजन कराने के बाद भोजन किया।

भोजन के बाद आश्रम के अन्तेवासी गौशाला के निर्माण में जुट गए। गायों को नहलाया-धुलाया। उनके लिए घास इकट्ठी की गई।

जंगल में जाकर आदिवासी लोग कुटियाओं के निर्माण के लिए बाँस इकट्ठा कर लाए।

क्रीवी तथा अन्य नाविक पूर्ववत् अपनी यात्राओं पर निकल पड़े और जहाँ-जहाँ रुके, वहाँ-वहाँ द्वैपायन के चमत्कारों की कथा भी कहते गए।

दूसरे दिन मोस के हाथों मारे गए आचार्य गौतम तथा अन्य सभी श्रोत्रियों आदि के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की गई।

समस्या का कारण शुकदेव

गोधूलि आश्रम ने नया रूप ले लिया। आसपास के आश्रमों, बस्तियों व गाँवों के लिए वह आकर्षण का केन्द्र बन गया।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

स्त्री-पुरुष बड़ी संख्या में गोधूलि आते। मुनि पराशर का जहाँ अग्निदाह हुआ था उस पवित्र स्थल पर वे नदी में स्नान करके अपने-आपको धन्य मानते और आश्रम की यज्ञवेदी पर प्रज्वलित पवित्र अग्नि को अंजलि देते। फिर भगवान द्वैपायन के दर्शन कर अपने को कृतकृत्य अनुभव करते।

शिकारी आते और भगवान को श्रोत्रियों के उपयोग के लिए मृगचर्म भेंट कर उनका आशीर्वाद प्राप्त करते।

भगवान द्वैपायन ने आश्रम के वातावरण की शुद्धि के लिए यज्ञ आरम्भ किया था। भारी संख्या में श्रोत्रियगण उस यज्ञ में भाग लेने आए थे।

आर्यगण अपने-अपने परिवारों के साथ भगवान द्वैपायन के लिए उपहार व फल-फूल लेकर आते। द्वैपायन इन सब वस्तुओं को आगन्तुकों व बच्चों में बाँट देते और जो बचतीं उन्हें माता शर्मी को दे देते।

कभी-कभी माता शर्मी रुष्ट भी हो जातीं क्योंकि भगवान द्वैपायन भेंट में आई अधिकांश सामग्री को प्रसाद के रूप में बाँट दिया करते थे, आश्रमवासियों के लिए बहुत कम बचाया करते थे। कभी-कभी वे स्त्रियों पर अधिक खाने के लिए रुष्ट भी होतीं।

भगवान द्वैपायन अपनी प्रतिज्ञा का कड़ाई से पालन करते। किसी भी श्रोत्रिय को तीन दिन से अधिक चलने योग्य अन्न एकत्रित नहीं करने देते। उनके लिए श्रुति के निर्देशानुसार जीवनयापन करना अनिवार्य था।

एक दिन प्रातःकाल जब भगवान द्वैपायन यमुना में घुटनों-घुटनों जल में खड़े सन्ध्या-वन्दन कर रहे थे तब उन्हें याद आया कि मोस के कोप से कितने चमत्कारी ढंग से उनकी रक्षा हुई थी। माता शर्मी और अन्य स्त्रियों के बचने और मोस के मरने की घटना भी उन्हें याद आई।

उन्होंने ऊपर आकाश की ओर निहारा। आकाश में अँधेरा दूर हो रहा था। प्रभात के तारे का भूरा-भूरा प्रकाश अभी लुप्त नहीं हुआ था। क्षितिज के काले बादल धीरे-धीरे छँट रहे थे।

अचानक बादलों के बीच उन्हें प्रकाश की एक किरण दिखाई दी। वे उसका अर्थ समझ गए। यह भगवान सवितानारायण, भगवान सूर्यदेव के आगमन का संकेत था। उन्होंने नम्रतापूर्वक गायत्री मन्त्र का पाठ शुरू कर दिया।

बादलों से सोने के गोले के समान प्रकट होते सूर्य को देखा तो उन्होंने उसमें उस एकत्व भाव का दर्शन किया जो सूर्यदेव की विराट शक्ति के रूप में समस्त सृष्टि के मूल में विद्यमान है। उन्हें लगा कि यह अनुभूति करना तो सरल है किन्तु इस अनुभूति को शब्दों में व्यक्त करना सम्भव नहीं है।

उन्हें लगा कि इस अनुभूति के प्रकाश की वह किरण उनकी धमनियों में

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

संचरण करने लगी थी, रक्त के प्रवाह में मुखरित होने लगी थी। मानो भगवान सवितानारायण उन्हें आदेश दे रहे थे, "तुझे इस सारी सृष्टि को आर्य बनाना है, शुद्ध बनाना है, उच्च आकांक्षाओं की व्रतधारिणी बनाना है।"

उन्हें ऐसा लगा मानो उनकी देह में कोई दैवी तत्त्व व्याप्त हो गया है। जो वरदान विरले ही महर्षियों को प्राप्त हुआ करता है वह उन्हें प्राप्त हो गया था। इस वरदान के साथ एक दिव्य सन्देश भी उन्हें मिला था, "समस्त देवी-देवता, और यह सारी सृष्टि, सभी एकरूप हैं, एकात्म हैं और जहाँ नहीं हैं वहाँ उन्हें एकरूप और एकात्म करना है और यह काम तुम्हें करना है।"

उन्होंने जब सूर्यदेव को अर्घ्य अर्पित किया तो उनका हृदय सूर्य भगवान के प्रति कृतज्ञता से भर गया।

फिर उन्हें गोधूलि का महत्त्व समझ में आया। वह तीर्थ था। वहीं उनके पिता अग्निदेव को अर्पित हुए थे। यहीं धर्म की पुनःप्रतिष्ठा हुई थी। यहीं लोग आ-आकर नदी में स्नान करते और पवित्र हुआ करते थे। प्रभु की पूजा करके लोग इस संसार की एकता की महिमा जाना करते थे।

दिन बीतते गए। भगवान द्वैपायन की पत्नी वाटिका के आगमन की सभी लोग व्यग्रता से प्रतीक्षा कर रहे थे।

तीन सप्ताह बाद क्षितिज पर एक राजनौका आती दिखाई पड़ी। सभी के उत्साह का पार न रहा। एक नहीं, तीन राजनौकाएँ आ रही थीं।

माता शर्मी भी नदी-तट पर खड़ी टकटकी लगाए उधर ही देख रही थीं। एकाएक उन्होंने आगन्तुकों को पहचान लिया और जोर से पुकारकर बोलीं, "चलो, चलो, जल्दी उनके स्वागत की तैयारी करो। वाटिका भी है और वाटिका के साथ माता सत्यवती और काशी की राजकन्या भी हैं।"

सभी आश्रमवासी सम्माननीय अतिथियों के स्वागतार्थ नौका लगने के स्थान पर पहुँच गए। उनके आगे-आगे सिर पर मंगलकलश रखे स्त्रियाँ थीं।

भगवान द्वैपायन का मन अब आगे की यात्रा पर चलने का हो गया। जाने से पहले उन्होंने चाहा कि यहाँ की सभी समस्याएँ दूर हो जाएँ।

पहली समस्या उन आदिवासी स्त्रियों की थी जो माता शर्मी के साथ भागी थीं। दूसरी समस्या यह थी कि इस आश्रम का कोई ऐसा नाम हो जो यात्रियों को आकर्षित कर सके। तीसरी और सबसे कठिन समस्या यह थी कि शुकदेव गृहस्थाश्रम में प्रवेश न करने का भारी हठ किए बैठा हुआ था।

जो आदिवासी स्त्रियाँ आश्रम में आ गई थीं वे अपने आदिवासी जीवन में वापस जाने को तैयार नहीं थीं। अखिल सृष्टि एक है, यही सूर्य भगवान का सन्देश था। इसलिए जो स्त्रियाँ आश्रम में रहना चाहती थीं उन्हें आश्रम में ही

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सम्मिलित कर लेना, आत्मसात् कर लेना उचित रहेगा।

यदि सारे देवी-देवता एक हैं तो सारे स्त्री-पुरुष भी एक हैं। उनकी अपनी माँ—जो कुरुओं की राजमाता थीं—वह भी आर्य नहीं थीं, किन्तु वे उदात्त और धर्मपरायण थीं। माता शर्मी भी आदिवासी परिवार से आई थीं, लेकिन कोई विरला आर्य स्त्री ही उनके बराबर धर्मपरायण और शुद्ध रही होगी।

मोस की दो छोटी बहनों ने भी वापस आदिवासी जीवन में जाने से मना कर दिया। वे भी आश्रम में ही रहना चाहती थीं। माता शर्मी की इच्छा थी कि उनकी शादी शुकदेव के साथ हो जाए, किन्तु शुकदेव और उसके अन्य ब्रह्मचारी साथी गृहस्थाश्रम में प्रवेश किए बिना ही संन्यास ले लेना चाहते थे।

अगली समस्या भी कम कठिन नहीं थी। भगवान सूर्यदेव का आदेश पालन करना है तो समस्त विश्व की एकता के लिए गोधूलि को एक विशाल आदर्श आश्रम, एक अनुपम तीर्थस्थल के रूप में परिवर्तित कर देना होगा।

इन सभी प्रश्नों पर विचार के लिए विशेष गोष्ठी का आयोजन हुआ। पूज्य राजमाता चाँदी से मढ़े एक आसन पर बैठीं। इस आयु में भी उनमें अनोखा तेज था। उनके पीछे दावी बैठी। उनके सामने माता शर्मी बैठीं। माता शर्मी के सिर पर श्वेत केशों का समूह राजमुकुट-सा लग रहा था। उन्होंने नए वस्त्र पहने थे और एक ऊनी शाल ओढ़ रखा था।

राजमाता की बाईं बाजू काशी की राजकन्याएँ बैठीं थीं। उनकी आँखों में असहाय्य और शून्यता का भाव अंकित था। उनके पास भगवान द्वैपायन की पत्नी वाटिका बैठी थीं।

राजमाता की दाईं ओर द्वैपायन बैठे थे। उनके पास आदिवासियों का नया सरदार कृप, महिष के सींगों का मुकुट पहने बैठा था। शुकदेव और उनके चार साथी पीछे बैठे थे।

राजमाता बोलीं, "मैंने द्वैपायन के साथ सारी चर्चा कर ली है। मुनिश्रेष्ठ पराशर का इसी स्थान पर दाह-संस्कार हुआ था।"

गोधूलि के स्मरण से राजमाता का कंठ रुँध गया। उन्हें याद आया कि वे मत्स्य-कन्या के रूप में यहीं घूमा करती थीं और पंगु मुनि से उनकी सर्वप्रथम यहीं भेंट हुई थी। इसी स्थान के पास, कल्पी में ही, उन्होंने पंगु मुनि की सेवा-सुश्रूषा की थी। फिर उन्होंने मुनि को सर्वस्व अर्पित कर दिया था। पुत्र द्वैपायन को मुनि गोधूलि लेकर चले गए थे। आचार्य गौतम ने उसे शिष्य के रूप में स्वीकार किया था और माता शर्मी ने उसका अपने बालक के समान लालन-पालन किया था।

इन सब बातों की याद आते ही उनकी आँखें छलछला आईं।

राजमाता ने गला साफ किया और आगे बोलीं, "मैंने द्वैपायन के साथ इस

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विषय में बात कर ली है। उन्होंने कहा है कि तीर्थ रूप में इस स्थान का कोई नाम तय करना है। जो हम तय करेंगे उसे वे स्वीकार कर लेंगे। प्रभु ने द्वैपायन को आदेश दिया है कि इस स्थान को तीर्थस्थल बनाकर मनुष्यों को एकता का सन्देश दो। इसलिए इसके नाम का विशेष महत्त्व होगा। नाम से प्रेरणा मिले, ऐसा कोई नाम होना चाहिए।''

फिर राजमाता ने द्वैपायन की ओर देखकर कहा, ''अब आप कृपया हमारा मार्गदर्शन कीजिए।''

नेत्रों से मुस्कान का भाव व्यक्त करते हुए वे बोले, ''राजमाता, नामकरण के विषय में मेरे अपने कुछ अलग विचार हैं।''

''क्या सुझाव है आपका?'' राजमाता ने पूछा।

''शायद आपको मेरा सुझाव न जँचे,'' द्वैपायन ने मुस्कराकर कहा, ''लेकिन जिसने इस आश्रम के लिए सबसे अधिक कष्ट सहन किया है उनका नाम मैं इस आश्रम को देना चाहता हूँ।''

''पहेली की भाषा में बात मत करो। मुझे वह नाम बताओ।'' माता ने कहा।

''लेकिन मैं नाम बताऊँगा तो आपको चोट पहुँचेगी। इधर देखो, यह है वह विभूति जिसका नाम मैं आश्रम को देना चाहता हूँ।'' माता शर्मी की ओर अँगुली से निर्देश करते हुए द्वैपायन ने कहा।

''माता शर्मी!'' राजमाता चौंककर बोलीं।

वाटिका ने भी रोषपूर्ण दृष्टि से पति की ओर देखा।

''हाँ, इस आश्रम को इन्होंने ही वापस खड़ा किया है। इन्होंने ही सबसे अधिक पीड़ा सहन की है। इस आश्रम को खड़ा करने में इन्होंने ही रात-दिन एक किया है। वाजपेय यज्ञ में भी साक्षात् अन्नपूर्णा बनकर सबके भोजन का प्रबन्ध-भार इन्होंने ही सँभाला था, यह आप भूली नहीं होंगी।''

थोड़ा रुककर उन्होंने फिर कुछ विनोद का पुट देते हुए हलके भाव से कहा, ''हाँ, लेकिन सारा समय तो मात्र इस शिकायत में ही बीता करता है कि आश्रमवासियों के लिए पूरा अनाज नहीं है। पर इनको देखकर तो ऐसा लगता है कि भोजन का अधिकांश भाग ये ही उदरस्थ कर जाती हैं!'' और ऐसा कहकर उन्होंने जोर का ठहाका लगाया।

माता शर्मी बीच में बोलने ही वाली थीं कि द्वैपायन फिर बोल पड़े, ''इन्होंने ही यहाँ की महिष जाति और हमारे बीच के सम्बन्धों को सुधारा है। आश्रम को लेकर जाने कितने कटु अनुभवों को इन्होंने भोगा है। अपनी आँखों के सामने इन्होंने अपने पति और बच्चों की हत्या होते देखी है। अब ये इसी आश्रम की पुनर्रचना के लिए अपना समूचा जीवन अर्पित कर रही हैं।''

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

माता शर्मी एकदम क्रुद्ध हो गईं और चीखकर बोलीं, ''द्वैपायन, ऐसी फालतू बातें मत करो। ऐसी परिहास की बातें करने का समय यह नहीं है।''

''नहीं, मैं परिहास नहीं कर रहा। सत्य तो यह है कि जीवन में पहली ही बार मैंने कोई समझ-भरी गम्भीर बात आज कही है।'' द्वैपायन ने कहा।

''मैं अपना नाम आश्रम के साथ नहीं जोड़ने दूँगी।'' माता शर्मी ने कहा।

''लेकिन आपने आश्रम के लिए कितना कुछ किया है! यहाँ की महिष जाति और आश्रमवासियों के बीच समन्वय आपने ही बिठाया है, दोनों के बीच सौम्य सम्बन्ध आपने ही स्थापित किए हैं।''

माता शर्मी बोलीं, ''कृष्ण, तू इतना बड़ा विद्वान है फिर भी रहा मूर्ख का मूर्ख ही!'' ये शब्द उन्होंने कह तो दिए, किन्तु कहते ही उन्हें ध्यान आया कि जो आज भगवान द्वैपायन के नाम से विख्यात हैं, उनके लिए उन्होंने ये कैसे शब्द कह दिए! बड़ा पछतावा हुआ उन्हें। बोलीं, ''अरे, मैंने यह क्या कह दिया? बालमुनि के लिए कैसे शब्दों का प्रयोग कर बैठी मैं?''

''नहीं, माता, नहीं!' आपने बालमुनि के लिए कोई अपशब्द नहीं कहा है। हाँ, कृष्ण को आपने अवश्य थोड़ा उपालम्भ दिया है।''

माता शर्मी ने वात्सल्य भाव से द्वैपायन की ओर देखा, ''मुझे क्षमा करना, लेकिन क्या आप नहीं जानते कि मैं कभी ब्रह्मचारिणी नहीं रही, कभी मैंने श्रुति से एक भी मन्त्र-पाठ नहीं किया! यह जानकर मेरे आचार्य को स्वर्ग में कितना दुख होगा कि इस आश्रम को मेरा नाम दिया जा रहा है! मुनि पराशर ने और मेरे आचार्य जैसे महामानवों ने जिसे पवित्रता प्रदान की है उस तीर्थ के साथ मेरा नाम भला कैसे जुड़ सकता है। उनकी स्मृति ही इस तीर्थ को पवित्र बना सकती है।''

''आप जो कह रही हैं वह पूर्णतया सच है, माता शर्मी।'' भगवान द्वैपायन ने कहा, ''मुनि पराशर तथा आचार्य गौतम के नामों से यह आश्रम अवश्य पवित्रता प्राप्त कर सकता है।''

''पर नाम देने मात्र से ही काम नहीं चलेगा,'' माता शर्मी ने कहा, ''आश्रम के अध्यक्ष के रूप में भी कोई विद्वान् आचार्य होना जरूरी है। द्वैपायन, तू मेरे आचार्य का शिष्य है। तुझे ही इस आश्रम का आचार्य होना चाहिए।''

''मैं? लेकिन मैं यहाँ कैसे रह सकता हूँ? मुझे तो धर्मक्षेत्र को प्रेरणातीर्थ बनाना है। जगह-जगह जाकर श्रुति और धर्ममय जीवन का प्रचार करना है!''

''यदि तू आचार्य नहीं बनता है तो मैं शुकदेव को यहाँ से जाने नहीं दूँगी।'' माता शर्मी की आँखों में आँसू छलक आए। वे बोलीं, ''प्रभु ने मेरे पुत्रों को छीन ही लिया है। वे यदि जीवित होते तो अपने पिता के कार्य को सँभाल लेते।'' माता

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

शर्मी ने आँसू पोंछते हुए कहा, "लेकिन द्वैपायन, क्या तुझे गोधूलि आश्रम से तनिक भी स्नेह नहीं है?"

माता शर्मी ने रुँधे गले को खखारकर साफ किया और स्वस्थ चित्त होकर पुनः बोलीं, "फिर कहे देती हूँ कि यदि तू आचार्य नहीं बनता है तो मैं शुकदेव को यहाँ से नहीं जाने दूँगी, यदि यह चला ही गया तो..." माता शर्मी आगे बोल नहीं सकीं, उनका गला फिर रुँध गया।

"इस शुकदेव ने तो बड़ी उलझन पैदा कर दी है।" राजमाता ने कहा।

शुकदेव पिताजी के पीछे बैठा था। उसके चेहरे पर विनय का भाव भी था और भोली मुस्कान भी खेल रही थी।

माता शर्मी का अनादर नहीं हो सकता

"यदि शुकदेव के विषय में हम कोई निर्णय कर लेते हैं तो शेष समस्याएँ आप ही सुलझ जाएँगी।" माता सत्यवती ने कहा।

भगवान द्वैपायन के चेहरे पर मोहक मुस्कान रम रही थी, "यों तो यह बालक बहुत भोला लगता है, लेकिन गजब का गड़बड़ झाला पैदा कर दिया है इसने! माता, अब आप ही इसे समझाइए कि यह गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे।"

"मैं क्या कर सकती हूँ? जाबालेया ने और मैंने तो सभी प्रयत्न करके देख लिये लेकिन इसमें कोई परिवर्तन नहीं आया। मीठा-मीठा यों मुस्कराता रहता है जैसे कोई नन्हा बच्चा हो। संन्यासी बनने की इसने पक्की ठान ली है। गृहस्थ नहीं बनेगा यह।"

राजमाता ने वाटिका की ओर देखा और वाटिका ने बात का सूत्र सँभाल लिया। बोलीं, "शुकदेव मेरा पुत्र है और गृहस्थाश्रम में यह प्रवेश करे यह मैं भी चाहती हूँ। यदि कोई श्रोत्रिय गृहस्थाश्रम में प्रवेश नहीं करता है तो आश्रम-धर्म का सही पालन हुआ नहीं माना जा सकता। यह यदि अपने पूर्वजों को अंजलि देने योग्य पुत्र नहीं बनता है तो इसको मोक्ष कैसे प्राप्त होगा?"

वाटिका आगे कुछ कहती उससे पहले ही माता शर्मी ने हाथ जोड़कर कहा, "इस बहस को अन्ततः आप कहीं समाप्त भी करोगे कि नहीं? द्वैपायन को इस आश्रम का आचार्य बनना ही चाहिए। वे नहीं बनते हैं तो फिर शुकदेव को बनना होगा। मेरा यह निर्णय अन्तिम है और शुकदेव को मोस की बहन पीवरी से शादी करनी पड़ेगी। आप लोग सब स्वार्थी हैं।" शर्मी ने कन्धे से सरकते पल्लू को ठीक किया। जब भी वह आवेश या क्रोध में बोलने लगतीं तो ऐसा हो जाता था। "मैं

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तो वही करूँगी जो 'मेरे आचार्य' मुझसे करने की आशा करते थे।" यह कहकर उन्होंने पहले वाटिका की ओर और फिर राजमाता की ओर देखा और जो हाथ अभी तक प्रार्थना में जुड़े हुए थे उन्हें कटि पर टिका लिया।

वाटिका ने क्रुद्ध दृष्टि से माता शर्मी की ओर देखा। शर्मी उसके पति पर इतना निर्णयात्मक प्रभाव रखती हैं, ऐसा उसने कभी सोचा तक नहीं था।

"द्वैपायन जब बिना माँ का था, मैं ही इसकी माँ बनी थी।" माता शर्मी ने कहा, "यह मेरा पुत्र है और मेरे आचार्य की मानस-सन्तान है।"

उसने सबकी ओर तिरस्कार-भरी दृष्टि से देखा। लेकिन भावावेग पर वे देर तक नियन्त्रण नहीं रख सकीं। आँखों से आँसुओं की धार बह चली। रोती हुई बोलीं, "आप लोगों ने द्वैपायन को भगवान बना दिया है। उसकी माँग यहाँ-वहाँ, सब जगह है। अब वह इतना बड़ा हो गया है कि मेरा आश्रम उसके लिए छोटा पड़ता है, उसमें वह समा नहीं सकता।" भावावेग को नियन्त्रित करने के लिए कुछ रुककर वे फिर बोलीं, "मैं शुकदेव को नहीं छोडूँगी। उसे पीवरी से शादी करके घर बसाना होगा। मैं तो यह तय कर चुकी हूँ।"

वाटिका ने अपने ही पुत्र के विषय में जब माता शर्मी को इतना अधिकारपूर्वक बोलने सुना तो उसे गहरी चोट लगी। उसने क्रुद्ध स्वर में कहा, "माता शर्मी, आप यह कैसे भूल जाती हैं कि इसे नौ महीने तक गर्भ में मैंने धारण किया था, आपने नहीं। इसके योग्य कन्या पसन्द मैं करूँगी, आप नहीं। मैंने आचार्य शौनक की पुत्री के साथ इसका विवाह पक्का कर लिया है।"

माता शर्मी ने अपने बिखरे बालों को ठीक किया और तीखा कटाक्ष करते हुए कहा, "जाबालि की बेटी, तेरे इस बेटे को जब मोस मारनेवाला था, तब तू कहाँ थी? तनिक सोच तो, जब भोजन के बिना यह मर जाने की स्थिति में था तब आधी रात को मैंने अपना जीवन जोखम में डालकर इसे भोजन पहुँचाया, तब तू कहाँ थी? बता, कहाँ थी?" फिर स्वयं ही अपने ही प्रश्नों का उत्तर देती हुई बोलीं, "तब तू हस्तिनापुर में बैठी राजमाता के आतिथ्य का आनन्द-भोग कर रही थी!"

क्रोधित वाटिका कुछ कहने ही वाली थी कि शुकदेव विनम्रता से, बिना आँखें उठाए ठठाकर हँस पड़ा। उसके हँसने से वातावरण हलका हो गया। राजमाता ने पूछा, "पुत्र, तुझे हँसी किस बात पर आई?"

शुकदेव ने दृष्टि तो नहीं उठाई किन्तु हँसना फिर भी जारी रहा।

"तू हँस क्यों रहा है?" माता सत्यवती ने फिर पूछा।

शुकदेव ने माथा झटककर अपने को व्यवस्थित किया और फिर हाथ जोड़कर बोला, "क्षमा करो माता! मुझसे हँसे बिना रहा नहीं गया, इसलिए हँस पड़ा!"

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"लेकिन कारण क्या था?" माता ने कहा, "अकेला-अकेला ही क्यों हँसता है? हमें भी तो कुछ बता, हम भी आनन्द लें, हँसें!"

शुकदेव ने बड़ी कठिनाई से अपनी हँसी को नियन्त्रित किया और बोला, "मुझे यह समझ में नहीं आ रहा कि इन दोनों में से मेरी माँ कौन-सी है?" यह कहते हुए उसने वाटिका तथा माता शर्मी की ओर अँगुली से संकेत किया और फिर जोरों से हँसते हुए बोला, "या फिर कहीं ऐसा तो नहीं कि मैं एक ऐसा विचित्र जीव हूँ जिसका जन्म दो माताओं के पेट से हुआ है!" और फिर एक बार ठठाकर बोला, "या फिर मेरी कोई माँ है ही नहीं। बड़ी विचित्र उलझन में हूँ। हर कोई मुझे अपना पुत्र बताता है!" उसने राजमाता की ओर देखा और फिर हँस पड़ा।

राजमाता ने उससे फिर पूछा, "इतने स्वार्थी मत बनो, हमें भी तो बताओ कि आखिर इतना हँसने का कारण क्या है?"

बड़ी कठिनाई से शुकदेव ने अपनी हँसी पर नियन्त्रण किया और कहा, "पूज्य माता, मैं तो यह प्रतीक्षा कर रहा हूँ कि आप भी मेरी माँ होने का दावा कब करेंगी, और तब दावी भी अपना दावा पेश करेगी कि वह भी..." सुनकर सभी हँस पड़े। पूरी बातचीत के दौरान कृप ही गुमसुम बैठा था। उसके मन में अपने जातिभाइयों की चिन्ता का ही चक्र चल रहा था। लेकिन शुकदेव की यह बात सुनकर वह भी हँसे बिना नहीं रह सका।

हँसी का दौर कुछ थमा, तब राजमाता ने कहा, "चलो, ठीक है, अब थोड़ी गम्भीरता से हम अपनी समस्याओं पर विचार करें।"

थोड़ा ठहरकर राजमाता ने फिर कहा, "हठ मत करो बेटे, तुम्हें ही अपने पिता की परम्परा का निर्वाह करना है। तुमसे अच्छा इस काम को और कौन कर सकता है? आचार्य गौतम और माता शर्मी ने तुम्हें अपने पुत्र समान ही माना है। उनका तुम पर ऋण है। इसलिए तुम्हें इस आश्रम का आचार्य बनना ही चाहिए।"

"मुझे गृहस्थाश्रम में तो जाना नहीं है।" शुकदेव ने पूरे आदर के साथ किन्तु दृढ़ता से कहा।

राजमाता के चेहरे पर स्नेहपूर्ण मुस्कान फैल गई। बोलीं, "बेटा, नवयुवक सदैव वही करते हैं जो उनके मन को स्वीकार होता है, लेकिन तुम्हें अपने पिता के परम्परा-निर्वाह की भी तो चिन्ता करनी चाहिए। वह भी तुम्हारा कर्तव्य है।"

शुकदेव उनका पोता था और मुनि की वंश-परम्परा टूट जाए, यह राजमाता चाहती नहीं थीं।

शुकदेव कोई उत्तर देनेवाला था किन्तु उससे पहले ही राजमाता ने कहा, "मुनि पराशर और आचार्य गौतम की परम्परा एकमात्र तू ही आगे बढ़ा सकता है।"

-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

शुकदेव ने हाथ जोड़कर माता सत्यवती से कुछ कहने की अनुमति माँगी। राजमाता बोलीं, "तुझे जो कहना हो, तू दिल खोलकर भले कह ले, पर हमारे मन में क्या है यह तू जानता है। तब फिर इतना हठ क्यों करता है?"

"हठ नहीं करता हूँ," शुकदेव ने कहा, "मैं तो इतना ही कहता हूँ कि मैं गृहस्थाश्रम में प्रवेश नहीं करना चाहता क्योंकि मुझे अपने पिता की परम्परा को सुदृढ़ स्तम्भों पर खड़ा करना है।"

"यदि तू इसी आयु में संन्यासी हो जाएगा तो फिर अपने पिता की परम्परा को आगे कैसे बढ़ाएगा?" राजमाता ने पूछा।

"माता, हम पाँच मित्रों ने संन्यासी बनने का निश्चय क्यों किया है, यह मैं आपसे निवेदन करूँ तो आप मुझे मेरी धृष्टता के लिए क्षमा करेंगी।" शुकदेव ने हाथ जोड़कर कहा।

"कहो बेटे, कहो।" राजमाता ने अनुमति दी।

शुकदेव ने मन्द स्वर में क्षमा-याचना के-से भाव के साथ कहा, "पिता ने धर्म को अराजकता की स्थिति से बाहर निकाला है। उन्होंने धर्म का उद्धार किया, श्रोत्रियों को नया सन्देश देकर संगठित किया और यों श्रुति के कार्य को व्यवस्थित किया। वे जिसे भी स्पर्श करते हैं वह उदात्त और प्रेरक बन जाता है। भगवान सूर्य की उन पर कृपा है। हर मनुष्य के हृदय को वे छू सकते हैं। प्रत्येक हृदय में दैवी प्रकाश उत्पन्न कर सकते हैं। अपने इसी प्रभाव के कारण उन्होंने कई बार यमराज पर भी विजय प्राप्त की है। हम पाँचों ने इस विषय पर एक बार नहीं, कई बार गहरा विचार किया है।"

"इसीलिए हम कह रहे हैं कि तुम्हें अपने पिता की परम्परा को आगे बढ़ाना चाहिए।" राजमाता बोलीं।

"हम यही तो कर रहे हैं।" शुकदेव ने कहा, "जिस दिन पिताजी पितृलोक को प्रस्थान कर देंगे उसी दिन से श्रोत्रियों को उनकी प्रेरणा मिलनी बन्द हो जाएगी। श्रोत्रियों को वे श्रुति का सन्देश देते हैं। संयम बिना सिद्धि नहीं होती, समर्पण बिना मुक्ति नहीं होती और यज्ञ बिना सृजन नहीं होता, निर्माण नहीं होता।"

शुकदेव के शब्दों में झंकृत होनेवाला सत्य का स्वर सभी को स्पर्श कर गया।

"क्या मैं आगे और कुछ कह सकता हूँ?" उसने राजमाता से पूछा।

"हाँ-हाँ अवश्य।" राजमाता ने कहा।

"गृहस्थ आदमी को पत्नी और पुत्रों की सौ कठिनाइयाँ होती हैं। आश्रम और गायों की रक्षा करनी होती है। इसके लिए श्रीमन्तों और सत्ताधारियों का साथ देना पड़ता है और पक्षपात करना आवश्यक हो जाता है। इस प्रकार

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

धीरे-धीरे एक समय ऐसा आता है जब वह अपने 'तप' को खो बैठता है। केवल वे ही अपने 'तप' की ज्योति को प्रदीप्त रख सकते हैं जो संन्यास धारण कर लेते हैं।"

"ब्रह्मचारियो, तुम्हारी क्या राय है?" महामुनि द्वैपायन ने शुकदेव के चारों साथियों की ओर देखते हुए पूछा।

"शुकदेव जो कुछ करेगा हम उसी का अनुसरण करेंगे।" उनमें से एक ने उत्तर दिया, "हम स्वयं चलते-फिरते आश्रम होंगे और इसी विधि से धर्म को धारण करेंगे।"

"कैसे?" राजमाता ने पूछा।

"संन्यासी का हृदय साक्षात् यज्ञवेदी के समान होता है और उसकी ज्योति पीढ़ियों तक प्रकाश देती रहती है।"

शुकदेव ने बीच में बोलते हुए कहा, "पिताजी, हमारी जो इच्छा है वह हमने आपके सामने रखी है। अब हम आपके चरणों में हैं। आप जो भी निर्णय करेंगे वह हमें शिरोधार्य होगा।"

सभी लोग भगवान द्वैपायन की ओर देखने लगे। सभी यह जानने को उत्सुक थे कि भगवान द्वैपायन क्या निर्णय करते हैं।

"प्रभु की लीला है जो मुझे ऐसा पुत्र मिला है। मैं स्पष्ट देख रहा हूँ कि इसके त्यागी-तपस्वी शिष्य पीढ़ियों तक धर्मज्योति को प्रज्वलित रखेंगे।" भगवान द्वैपायन ने कहना प्रारम्भ किया।

थोड़ा रुके, फिर आगे बोले, "इस तीर्थ स्थल को मुनि पराशर ने पवित्रता प्रदान की थी।" उनके चेहरे पर मुस्कराहट थी। "मैं माता शर्मी को देखता हूँ और मुझे लगता है कि यह तो साक्षात् माता अन्नपूर्णा हैं। इनको आडम्बर शोभा नहीं देता। इनका नाम इस तीर्थ के साथ जोड़ेंगे तो वह भी आडम्बर की तरह शायद इन्हें अटपटा लगेगा।"

कुछ देर रुककर उन्होंने गम्भीरतापूर्वक फिर कहा, "जब दुष्ट राजा सहस्रार्जुन ने पराशर आश्रम को जलाकर खाक कर डाला था तब आचार्य गौतम ने अकेले अपने हाथों इस आश्रम को पुनः खड़ा किया था। पग-पग पर इस आश्रम को भारी जोखिम का सामना करना पड़ा है। इतने पर भी यदि यह आश्रम खड़ा रहा तो इसका कारण आचार्य गौतम का पुरुषार्थ था, आशीर्वाद था। अतएव यदि हम इस आश्रम के साथ आचार्य गौतम का नाम जोड़ देते हैं तो जब तक आकाश में सूर्य और चन्द्र चमकते रहेंगे तब तक उनका नाम भी अमर रहेगा।"

"आखिर अब तुम्हें कुछ अक्ल आई।" माता शर्मी ने कहा। उनका चेहरा मुस्कराहट से प्रफुल्लित हो उठा था। उन्होंने वाटिका की ओर देखकर कहा, "देखा

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

न, क्या बात कही है मेरे पुत्र ने!"

महामुनि ने कहा, "मैं जब बहुत छोटा था तब मेरे मन में विचार उठा करता था कि कभी मैं इस आश्रम का आचार्य बनूँगा। मैंने भस्मक्षेत्र का पुनर्निर्माण करने की भी प्रतिज्ञा की थी।"

माता शर्मी नें कहा, "लेकिन अब तो तू इतना बड़ा हो गया है कि उसकी तुलना में यह प्रतिज्ञा बहुत छोटी लगने लगी है।"

महामुनि बोले, "मुझे अपने मानस-पिता का ऋण चुकाना है। प्रतिवर्ष दो महीने मैं इस आश्रम में आकर रहा करूँगा, लेकिन मैं इसका आचार्य नहीं बनूँगा।"

थोड़ा ठहरकर वे फिर बोले, "शुकदेव को गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना चाहिए, आप सबके इस मत से मैं भी सहमत हूँ। वैसा हो जाने के बाद इसकी आश्रम के आचार्य के रूप में नियुक्ति की जानी चाहिए।"

शुकदेव के चेहरे पर विषाद की रेखाएँ फैल गईं। पिता के इस निर्णय से उसे अत्यन्त आश्चर्य हुआ।

"शुकदेव का कर्तव्य है कि वह इस आश्रम का आचार्य बने। और इस दृष्टि से उसे अपनी सहधर्मिणी पसन्द कर लेना चाहिए। शुकदेव को पता है कि कोई भी श्रोत्रिय गृहस्थाश्रम की उपेक्षा नहीं कर सकता, ऐसा ही है न शुकदेव?" द्वैपायन ने पूछा।

शुकदेव गहरे विचारों में खो गया लगता था। उसने आशा की थी कि उसके पिताजी उसके दृष्टिकोण को अवश्य समझेंगे। फिर भी उसने झुककर विनम्रता के साथ कहा, "पिताजी, मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।" लेकिन ऐसा कहते हुए उसका कंठ भर आया।

"अब तुम्हारे विवाह की बात भी कर लें।" महामुनि ने कहा।

"पिताजी, अभी इस विषय को मत लीजिए। मुझे थोड़ा विचार तो कर लेने दो।" शुकदेव ने करुण स्वर में कहा।

वाटिका ने निराश होकर माथे पर हाथ रखा और कहा, "आर्यपुत्र, कृपा कर इस निर्णय को अभी स्थगित रखें। मेरा इकलौता पुत्र किसी आदिवासी स्त्री से विवाह करे-यह सहन करना मेरे लिए बहुत कठिन है। मेरे पिता महर्षि जाबालि इसे कैसे स्वीकार करेंगे?"

महामुनि द्वैपायन ने कहा, "माता शर्मी भी तो आदिवासी स्त्री ही हैं। लेकिन उन्होंने न केवल आचार्य गौतम के साथ विवाह ही किया बल्कि इस आश्रम के प्रति भी पूर्णतया समर्पित होकर सारा जीवन बिताया। इस विषय को स्थगित रखने में कोई सार नहीं है।"

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"लेकिन उतावली किस बात की है?" वाटिका ने पूछा।

"जाबालेया, कई बातें इससे जुड़ी हुई हैं। हमें इन आदिवासी लोगों को अपने साथ मिलाना है। हमें गौतम आश्रम की फिर से स्थापना करनी है। हमें पराशर तीर्थ की पवित्रता को अक्षुण्ण रखना है।" यह कहकर वे थोड़ा रुके और फिर बोले, "मुझे भगवान सूर्य का आदेश है कि समस्त विश्व को आर्य बनाऊँ, ऊँचा उठाऊँ। आर्यों को, नागाओं को और आदिवासियों को आपस में मिलाऊँ–एक बनाऊँ।"

वाटिका का गला भर आया। वह गद्‌गद हो गई।

महामुनि ने कहा, "जाबालेया, हमें अपना जीवन अपनी इच्छा के अनुसार नहीं, प्रभु के आदेश के अनुसार जीना चाहिए।"

इसके बाद कृप की ओर मुँह करके उन्होंने पूछा, "बहादुर सरदार, शुकदेव के साथ मोस की छोटी कन्या का विवाह करने के लिए क्या आप सहमत हैं? अन्य युवतियाँ भी अन्य ब्रह्मचारियों के साथ विवाह करें, इसमें भी आपको कोई आपत्ति तो नहीं है न?"

"महामुनि, मैंने इस विषय पर गहरा विचार कर लिया है और अपने बुजुर्गों से भी पूछ लिया है। माता शर्मी ने सही कहा है, हम अलग रहकर नहीं जी सकते।"

"तो फिर इस बात से हम सभी सहमत हैं कि पीवरी चन्द्रायण व्रत कर ले और उसके बाद शुकदेव का उससे विवाह हो जाए।"

शुकदेव ने अपने मन की पीड़ा को छिपाने के लिए दोनों हाथों से चेहरा ढाँप लिया। हाथों के पीछे से सुबकियाँ सुनाई पड़ रही थीं। उसके सपनों की सारी दुनिया उजड़ चुकी थी।

"शुकदेव, दुखी होने की आवश्यकता नहीं।" महामुनि ने कहा, "तू क्या करना चाहता है, यह मैं जानता हूँ। तेरे चार पुत्र हों जो चारों वेदों में पारंगत हों, उसके बाद पीवरी सहमत हो तो तू भले ही संन्यासी बनकर श्रुति की परम्परा को आगे बढ़ाने में लग जाना।"

शुकदेव की वेदना का पार नहीं था। उसने चेहरे पर से हाथ नहीं हटाए। तब माता शर्मी ने एक साथ रोते और हँसते हुए उसका कान पकड़कर थोड़ा अपनी ओर खींचा और उसके हाथ चेहरे पर से हटाते हुए कहा, "अब जो पहला पाठ तुझे सीखना है, वह यह है," एक बार और उसका कान उमेठकर वे आगे बोलीं, "कि माता शर्मी की आज्ञा का अनादर नहीं हो सकता, उल्लंघन नहीं हो सकता। यही है तेरा पहला पाठ!"

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हस्तिनापुर के रंगमंच पर शकुनि का प्रवेश

शुकदेव का पीवरी से विवाह होने के बाद राजमाता, वाटिका तथा काशीराज की कन्याओं ने गोधूलि आश्रम से हस्तिनापुर जाने के लिए प्रस्थान किया। महामुनि द्वैपायन तथा उनके शिष्यों ने आर्यावर्त में घूम-घूमकर धर्म का प्रचार-प्रसार करने की अपनी संस्कार यात्राएँ शुरू कर दीं।

हस्तिनापुर में परिस्थितियाँ जिस सीमा तक पहुँच चुकी थीं उनसे राजमाता बहुत दुखी थीं। चित्रांगद और विचित्रवीर्य दोनों ही निस्सन्तान स्वर्गलोक को चले गए थे और उनके वंश में अब कोई नहीं बचा था।

कुरुओं को संगठित करके एक सशक्त सत्ता की स्थापना करने के उनके प्रयत्नों के बावजूद एक-पर-एक कई संकट उत्पन्न हो रहे थे। इन संकटों का सामना करने का वे ज्यों-ज्यों प्रयत्न करती थीं, त्यों-त्यों उन्हें और अधिक निराशा प्राप्त हो रही थी।

सम्राट शान्तनु का वंश चलता रहे, इसी दृष्टि से उन्होंने कठिनाईपूर्वक अपने पुत्र मुनि द्वैपायन को विचित्रवीर्य की विधवाओं के साथ नियोग करके पुत्र उत्पन्न करने के लिए सहमत किया था।

उन्होंने समझा था कि यदि अम्बिका और अम्बालिका के पुत्र होंगे, तब उनके दुखों का अन्त आ जाएगा, लेकिन विधि का विधान कुछ और ही था।

अम्बिका का पुत्र धृतराष्ट्र स्वस्थ तो था, किन्तु जन्म से ही अन्धा था। परम्परागत प्रथा के अनुसार वह या उसका कोई पुत्र गद्दी पर नहीं बैठ सकता था।

गान्धार का राजा सुबल अत्यन्त हिचकिचाहट के बाद अपनी पुत्री गान्धारी का विवाह धृतराष्ट्र से करने को राजी हुआ। लेकिन विवाह से पहले राजा सुबल ने यह शर्त रखी थी कि गान्धारी का भाई शकुनि अपनी बहन गान्धारी तथा उसके पुत्रों की सार-सँभाल के लिए हस्तिनापुर में रहा करेगा। यह एक अत्यन्त अपमानजनक शर्त थी किन्तु यदि धृतराष्ट्र के लिए गान्धारी चाहिए तो इसे स्वीकार करने के सिवाय दूसरा कोई चारा नहीं था।

पांडु हस्तिनापुर की गद्दी पर बैठा। स्वास्थ्य अच्छा न होने के बावजूद उसने कुरुओं पर कुछ समय तक पूरी शक्ति के साथ शासन किया।

भीष्म ने पांडु को युद्ध और शस्त्रकला में अच्छी शिक्षा दी थी। इसका स्तर उनके अपने गुरु परशुराम की परम्परा के अनुकूल था, ऊँचा और उत्तम।

कुरुओं पर आए संकट का लाभ उठाकर कई सामन्तों ने कुरु-साम्राज्यों से

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सम्बन्ध तोड़ लिया था, किन्तु पांडु ने सैनिक शक्ति के साथ उन सभी को इस बात का अनुभव करा दिया था कि कुरु-साम्राज्य अभी भी पूर्ण शक्तिशाली है। फलतः उन सभी ने पुनः कुरु-साम्राज्य की अधीनता स्वीकार कर ली थी।

पांडु का विवाह पराक्रमी यादव सरदार वसुदेव की बहन और राजा कुन्तीभोज द्वारा गोद ली गई पुत्री, पृथा के साथ हुआ था। लोगों में वह कुन्ती नाम से जानी जात थी। इसके अलावा पांडु का एक और विवाह मद्रदेश के राजा शल्य की बहन माद्री से हुआ था।

लेकिन कुरु राजवंश पर अब दूसरा संकट मँडराने लगा। पांडु को कोई शाप मिला हुआ था जिसके कारण वे सन्तान उत्पन्न नहीं कर सकते थे, किन्तु कुन्ती को बच्चों से बहुत प्यार था, इसलिए जब उसे यह तथ्य ज्ञात हुआ तो वह काँप गई।

राजमाता और जनसामान्य में भीष्म नाम से प्रसिद्ध, गांगेय ने फिर महामुनि द्वैपायन की राय ली। महामुनि ने सुझाव दिया कि परिपाटी के अनुसार कुन्ती और माद्री दोनों देवताओं के साथ नियोग द्वारा सन्तान उत्पन्न करें।

अपनी निष्फलता से दुखी होकर पांडु एकान्त जीवन व्यतीत करने के लिए अपनी पत्नियोंसहित हिमालय में चले गए थे।

अपने पति की सहमति से देवताओं के साथ नियोग द्वारा कुन्ती ने युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन इन तीन पुत्रों को जन्म दिया तथा माद्री ने नकुल और सहदेव नाम के दो जुड़वाँ पुत्रों को जन्म दिया।

यादव सरदार वसुदेव को जब इसका पता चला तो उन्होंने इन पाँचों को पांडु के पुत्र रूप में स्वीकार कर उन्हें उपहार भेजे। माद्री के भाई मद्रराज शल्य ने भी ऐसा ही किया।

धृतराष्ट्र को भी गान्धारी से कई पुत्र उत्पन्न हुए। इनमें सबसे बड़ा दुर्योधन था और उससे छोटा दुःशासन।

धृतराष्ट्र का मन बड़ा कमजोर और अस्थिर था। अन्धे होने के कारण वे गद्दी पर नहीं बैठ सके। यह सब हुआ तो परम्परागत रीति के अनुसार ही था, किन्तु भीतर-भीतर वे इससे बहुत दुखी रहते थे और यह दुख उनके हृदय को भीतर से काटता रहता था। उनकी कामना थी कि उनका ज्येष्ठ पुत्र दुर्योधन युवराज-पद प्राप्त करे और अन्त में कुरुओं के उत्तराधिकारी के रूप में उसे राजगद्दी मिले। वे सोचते थे और सच ही था उनका यह सोचना कि पांडु के पाँच पुत्रों को यदि स्वीकृति मिल जाती है तो उनमें सबसे बड़े युधिष्ठिर को ही राजगद्दी का अधिकारी माना जाएगा।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

रेशमी वस्त्र और मुकुट धारण किए हुए भीष्म ने मन्त्रणा प्रकोष्ठ में प्रवेश किया। वे आसन पर बैठे। दासियाँ चँवर डुलाने लगीं।

इस बैठक का आयोजन शकुनि की प्रार्थना पर किया गया था। उसने खड़े होकर भीष्म को नमस्कार किया और भीष्म के चरण-स्पर्श किए।

शकुनि दुबला-पतला, ऊँचे कद का और गहरी आँखोंवाला व्यक्ति था। कलाइयों में, भुजाओं पर और गले में उसने तरह-तरह के गहने पहन रखे थे। राजवंशी होने की सूचना देने के लिए उसके सिर पर एक छोटा मुकुट था और कमर में छोटी-सी रत्नजड़ित तलवार थी।

भीष्म के आसन ग्रहण करते ही उनके साथ आनेवाला राजसेवक बिना मुड़े पीछे हटते हुए द्वार पर जा खड़ा हुआ। भीष्म ने शकुनि की ओर देखा। उनकी आँखों में सदा की तरह वही तेजस्विता थी जिसके प्रभाव से उनके प्रति स्वतः आदर उत्पन्न हो जाता है। उन्होंने हाथ के संकेत से चँवर डुलानेवाली दासी को बाहर जाने का और शकुनि को अपने पासवाले आसन पर बैठने का संकेत किया। इससे शकुनि का मान बढ़ा। भीष्म किसी को अपने पास के आसन पर बैठने को आमन्त्रित करें, यह बहुत बड़ी प्रतिष्ठा की बात थी।

जब से शकुनि हस्तिनापुर आया था तभी से वह कोई-न-कोई षड्यन्त्रकारी काम करता रहता था। इसलिए भीष्म उससे शुरू से ही अप्रसन्न थे। उसकी नई योजना यह थी कि पांडवों को पांडु के पुत्रों के रूप में स्वीकृति न मिले। धृतराष्ट्र की ही तरह शकुनि और उसके पिता सुबल भी यही मानते थे कि पांडु निस्सन्तान मरेगा और कुरुओं की गद्दी पर दुर्योधन बैठेगा। इसलिए अब यदि पाँच भाइयों को पांडु के पुत्र के रूप में स्वीकार किया जाता है, तो इस आशा पर पानी फिर जाएगा।

"तुम्हारे पिता गान्धारराज कुशल तो हैं न?" भीष्म ने पूछा।

भीष्म के निपट निरपेक्ष ठंडे व्यवहार से शकुनि को कुछ निराशा-सी हुई। भीतर की बेचैनी छिपाते हुए उसने दोनों हाथ जोड़कर कहा, "मेरे पिताजी कुशल हैं। उनका सन्देश कुरुश्रेष्ठ को पहुँचाने के लिए ही मैं यहाँ उपस्थित हुआ हूँ।"

भीष्म ने पहले तो उसकी ओर घूमकर देखा फिर पूछा, "क्या सन्देश लाए हो?"

एक बार तो शकुनि घबरा गया लेकिन फिर सँभला और सोचा कि भीष्म की इस प्रकृति को देखते तो अभी उनसे कोई महत्त्वपूर्ण बात नहीं करनी चाहिए। किन्तु वह क्या करता? कोई और उपाय था भी नहीं। अतः बोला, "पुण्यश्लोक पांडुराज दिवंगत हो गए हैं इसलिए मेरे पिताजी की इच्छा है कि धृतराष्ट्र के ज्येष्ठ पुत्र दुर्योधन को राजसिंहासन दिया जाना उचित होगा!"

भीष्म एक क्षण शान्त रहे फिर उन्होंने पूछा, "बस, इतना ही? इसके अलावा

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

और क्या कहा है उन्होंने?''

''मेरे पूज्य पिता के मन में आपके लिए गहरा सम्मान है। उनको विश्वास है कि आप दुर्योधन के प्रति न्याय अवश्य करेंगे।'' शकुनि ने कहा।

''दुर्योधन और उसके भाइयों के प्रति न्याय हो, इसके साथ पांडवों के प्रति भी किस विधि से न्याय हो सकता है, इस बारे में भी क्या तुम्हारे पिताजी ने कोई सुझाव दिया है?'' भीष्म ने पूछा।

''मेरे पिता का जो विचार है और जो उन्होंने आप तक पहुँचाने को कहा है वह यह है कि...'' शकुनि अचानक रुक गया और फिर बोला, ''यदि पांडवों को पांडु के पुत्रों के रूप में स्वीकार कर लिया जाए तो भी राजसिंहासन तो दुर्योधन को ही मिलना चाहिए।''

भीष्म ने थोड़ी देर तक तो कोई उत्तर नहीं दिया। फिर उन्होंने पूछा, ''और कुछ?''

''और कुछ नहीं कुरुश्रेष्ठ! हाँ, मेरे पिताजी ने इस सन्देश का उत्तर माँगा है।''

भीष्म ने इस प्रश्न का उत्तर देने की बजाय उलटे शकुनि से प्रश्न किया, ''मैंने सुना है कि पांडवों को पांडु के पुत्र स्वीकार न किए जाने के लिए तुम कुछ कुरु सरदारों की सहायता लेने का प्रयत्न कर रहे हो, क्या यह सच है?''

सीधे किए गए इस प्रश्न का उत्तर देना शकुनि के लिए बड़ा कठिन था। उसकी जबान लड़खड़ाने लगी। आखिर उसने कहा, ''मैंने इसके लिए उनसे सम्पर्क नहीं किया था।''

''तुमने नहीं किया, किन्तु उन्होंने ही इस उद्देश्य से तुमसे सम्पर्क किया, यह तो सही है नं?''

शकुनि अभी भी सीधा उत्तर टालना चाहता था, ''उन्हें इस बात की चिन्ता है कि शायद आप पांडु के पुत्रों को स्वीकृति दे दें और युधिष्ठिर का अभिषेक कर दें...''

''यह तो बताओ कि तुम कितने श्रोत्रियों से मिल चुके हो?'' भीष्म ने पूछा। शकुनि का चेहरा सफेद पड़ गया। उसने गुप्त रूप से मुख्य-मुख्य श्रोत्रियों से सम्पर्क साधा था। भीष्म को इसका भी पता लग चुका था।

''मैं केवल परम्परागत चलन ही जानना चाहता था। मैं उनसे यही ज्ञात करने को उत्सुक था कि उस परम्परा के अनुसार दुर्योधन राजा बन सकता है या नहीं।'' शकुनि ने उत्तर दिया।

''क्या तुम हमारे भूतपूर्व पुरोहित आचार्य विभूति और वर्तमान पुरोहित आचार्य भारद्वाज से मिले थे?'' भीष्म ने पूछा।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"नहीं।" शकुनि ने उत्तर दिया।

"तुम उनसे प्राचीन परम्परा के विषय में चर्चा करो तो उत्तम रहेगा।" भीष्म ने कहा। फिर जैसे मन-ही-मन अपने-आपसे कह रहे हों, इस भाँति बोले, "सम्भवतः ऐसा तो कोई श्रोत्रिय नहीं होगा जो धर्मक्षेत्र की विद्वत्संसद द्वारा किए गए उस भाष्य को न माने जिसे महामुनि स्वयं मान्य घोषित कर चुके हों।"

"महामुनि की क्या राय है?" शकुनि ने पूछा। फिर फुसफुसाते हुए बोला, "महामुनि की राय का विरोध तो भला कौन करेगा?"

अब भीष्म का स्वर बदल गया था। आदेश देने के-से स्वर में उन्होंने घोषणा की, "पांडु कुरुओं के अन्तिम राजा थे। उनकी मृत्यु के बाद उनके अधिकार और उनकी सत्ता उनके पुत्रों को ही प्राप्त होनी चाहिए।"

फीकी हँसी हँसते हुए शकुनि ने कहा, "कुरुश्रेष्ठ, महामुनि की राय का आर्यावर्त में कोई विरोध नहीं कर सकता। लेकिन बदली हुई परिस्थितियों में इस प्राचीन विधान पर सम्भवतः अलग ढंग से विचार करना पड़ेगा। क्या मैं इसे थोड़ा और खोलकर कहूँ?"

"हाँ-हाँ, कहो? मैंने तुम्हें बोलने से रोका कब था?" भीष्म ने कहा। उनके स्वर में रूखापन था।

"गान्धारवासी कुरुओं के मित्र हैं। यह मित्रता दृढ़ रहे, इसलिए मेरे पिताजी चाहते हैं कि आप कृपया इस पर फिर से विचार करें।" फिर थोड़ा रुककर हाथ जोड़कर शकुनि बोला, "मेरे पिता आशा करते हैं कि गान्धारराज के साथ मित्रता रखने की आवश्यकता को आप स्वीकार करेंगे।"

"इस तरह से गोल-मोल बातें मत करो। जो बात कहनी हो वह सीधे कह दो। तुम्हारा पिता अपनी इच्छा हम पर लादना ही चाहता है न?" भीष्म ने शकुनि को तीक्ष्ण दृष्टि से देखते हुए कहा।

शकुनि उत्तर में कुछ कहनेवाला था, किन्तु उसे रोककर भीष्म बोले, "अपने पिता से कहना कि कुरुवंश की राजसत्ता को स्थायित्व देने के लिए भीष्म को किसी की भी सहायता की आवश्यकता नहीं है।"

"नहीं-नहीं-नहीं," शकुनि ने घबराकर कहा, "मेरे पिता की कुरुओं के मामलों में हस्तक्षेप करने की कोई इच्छा नहीं है।"

भीष्म ने अधिकारपूर्ण स्वर में कहा, "अपने पिताजी को कहना कि भीष्म ने पाँच भाइयों को पांडु के पुत्र रूप में स्वीकार करने का निर्णय कर लिया है। उन्हीं को उनके पिता की सत्ता सौंपी जाएगी।" और फिर यह और कहा, "यदि कुरुओं के मामले में किसी ने हस्तक्षेप किया तो कुरुगण अपने समस्त सहयोगियों के साथ पूरी शक्ति से उसका सामना करेंगे।"

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

राजसेवक ने अन्दर आकर करबद्ध कुछ निवेदन करने की अनुमति माँगी। अनुमति मिलने पर वह बोला, "महाराज, महामुनि को लेकर आनेवाली नौका दिखाई दे रही है। थोड़ी ही देर में यहाँ पहुँचनेवाली है।"

"ठीक है, राजमाता से कहो कि मैं महामुनि को लेकर उनके पास शीघ्र पहुँच रहा हूँ।"

भीष्म आसन से उठकर खड़े हो गए। शकुनि के प्रणाम को संकेत से स्वीकार करते हुए वे द्वार की ओर बढ़ गए।

शकुनि को उसके पिता ने यह समझाकर भेजा था कि वह कोई ऐसी बात न करे जिससे संघर्ष छिड़ने की स्थिति आ जाए। इसलिए उसने कहा, "अच्छा महाराज, फिर मैं निराशा लेकर ही जा रहा हूँ।"

भीष्म जाते-जाते रुके और शकुनि की ओर घूमकर बोले, "अपने पिता को मेरा सन्देश देने के लिए तुम तीन दिन के भीतर-भीतर प्रस्थान कर दोगे, यह मैं आशा करता हूँ।"

शकुनि समझ गया कि यह 'आशा' नहीं, 'आज्ञा' है। उसने हाथ जोड़कर उनसे अपना सिर छुआ, जिसका अर्थ था कि उसने उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर ली है।

भीष्म मन्त्रणाकक्ष से बाहर निकल गए।

भगवान द्वैपायन का विश्वास

राजमाता को आशा थी कि किसी-न-किसी दिन पांडु वनवास से वापस आकर शासन सँभाल लेंगे, लेकिन उनका देहावसान हो जाने से राजमाता का हृदय फिर टूट गया। वे फिर नैराश्य के सागर में डूब गईं।

हस्तिनापुर अब घरेलू झगड़ों का केन्द्र बनने लगा था। सम्राट शान्तनु की तरह पांडु भी हस्तिनापुर की शक्ति, सत्ता और वैभव को पुनः जीवित कर सकेंगे, यह आशा समाप्त हो चुकी थी। राजमाता का साहस क्षीण होने लगा था। वे बीमार पड़ गईं। भीष्म पितामह ने भगवान द्वैपायन को तत्काल हस्तिनापुर आने का बुलावा भेजा। सन्देश पाते ही वे हस्तिनापुर चले आए।

द्वैपायन तथा भीष्म जब राजमाता के कक्ष में पहुँचे तब वे शयन कर रही थीं। उनकी आँखें सूजी हुई थीं, चेहरा लाल था और शरीर तप रहा था। दासी ने उनकी बैठने में सहायता की। द्वैपायन ने माता के चरण-स्पर्श किए। माता ने उन्हें आशीर्वाद दिया।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भीष्म ने भी माता को प्रणाम किया। माता ने उन्हें भी आशीष दी। फिर दोनों को आसन पर बैठने को कहा।

कुछ पल के लिए माता ने आँखें बन्द कीं, फिर बोलीं, "कृष्ण, यह आघात अब सहन नहीं हो पा रहा है। जो कुछ हो रहा है सब मिथ्या लगता है। अब जीना वृथा है।" कहते-कहते उनका गला रुँध गया और आँखों से अश्रुधारा बहने लगी।

"कृष्ण, तू यहाँ मेरे पास बैठ। कितने दिनों से मैं तेरी राह देख रही हूँ। भगवान जाने अब और कितने दिन जीना है! अब वे जल्दी उठा लें तो अच्छा।"

इतना कहकर वे थक गईं। फिर जैसे स्वयं से बातें करती हों, कहने लगीं, "आर्यपुत्र के सपनों को साकार करने का मैंने बहुत प्रयत्न किया किन्तु मैं असफल रही। यह असफलता अब मुझे बहुत पीड़ा देती है।" इतना कहकर वे सुबकने लगीं। उन्होंने अपना मुँह तकिए में छिपा लिया।

फिर धीमे दुर्बल स्वर में कहा, "मेरा जीवन व्यर्थ गया। मैं अपने स्वामी को बलवान और दीर्घायु पुत्र भी नहीं दे सकी!"

तब उन्होंने भीष्म की ओर मुड़कर पूछा, "गांगेय, तुमने द्वैपायन को पूरी बात बता दी?"

"हाँ माँ, मैंने इन्हें सबकुछ कह दिया है।" भीष्म ने उत्तर दिया।

"तुम्हारी क्या राय है, द्वैपायन?" माता ने पूछा।

"गांगेय का निर्णय पूर्णतया सही है। कुरु सरदारों से जब उनकी बात हुई थी तब दोनों इस बात पर सहमत थे कि राजा पांडु की पत्नियों को नियोग से पुत्र उत्पन्न करने चाहिए। इस आधार पर कुरु सरदार पांडु-पुत्रों को स्वीकार करने के लिए वचनबद्ध हैं।"

"सही है।" भीष्म ने कहा, "हमने पाँचों भाइयों को पांडु के पुत्रों के रूप में माना है इसलिए स्वाभाविक है कि युधिष्ठिर को युवराज पद मिले।"

"कुरु सरदारों का क्या मत है?" राजमाता ने पूछा।

"उनमें से अधिकांश पाँचों भाइयों को पांडु-पुत्रों के रूप में ही स्वीकार करते हैं।" भीष्म ने उत्तर दिया।

"तुम कहते थे कि अभी तुम्हें शकुनि मिला था। क्या कह रहा था वह?" मुनि द्वैपायन ने पूछा।

तिरस्कार भाव से मुस्कराते हुए भीष्म ने कहा, "वह मुझे धमकाने आया था। उसने बड़ी सावधानी से बात को घुमाकर कहा कि उसके पिता का सन्देश है कि हम पाँच भाइयों को पांडु-पुत्र के रूप में स्वीकार न करें और यदि कर लें तो भी राजगद्दी दुर्योधन को सौंपें। उसने यह भी स्वीकार कर लिया है कि इस बारे में

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उसने कुछ श्रोत्रियों से भी बात की थी।''

''श्रोत्रिय लोग दुर्योधन के दावे का समर्थन कैसे करने लगे?'' महामुनि ने प्रश्न किया।

''मेरा विचार तो यह है कि शकुनि सच नहीं बोलता।'' भीष्म ने उत्तर दिया, ''हस्तिनापुर के समस्त श्रोत्रिय आचार्य विभूति और आचार्य भारद्वाज के मत का समर्थन करते हैं और वे दोनों एकमत से युधिष्ठिर के अधिकार को ही मानते हैं। इसके अलावा धर्मक्षेत्र की विद्वत्-सभा भी प्राचीन शास्त्रों के आधार पर युधिष्ठिर को ही उचित मानती है। उन्होंने उन्हीं शास्त्रों को आधार बनाया है, जिन्हें आपने प्रामाणिक माना है।''

''ये पाँचों भाई अन्तिम कुरु राजा के पुत्र हैं और इस कारण इनमें जो सबसे बड़ा है वही पिता के पद को प्राप्त कर सकता है।'' महामुनि ने कहा और क्षण-भर ठहरकर पूछा, ''गांगेय, फिर तुमने शकुनि को क्या कहा?''

''उस पापी प्रपंची से बात करते-करते मेरा तो धैर्य टूट गया।'' भीष्म ने कहा, ''मैंने उससे कहा कि पांडु-पुत्र को मिलनेवाले सारे अधिकार और पद इन पाँच भाइयों को ही मिलने चाहिए।''

राजमाता ने आँखें खोलीं। वे दासी का सहारा लेकर पुनः उठकर बैठ गईं और बोलीं, ''गांगेय के प्रभाव से कुरु संगठित रहे हैं। हमारी समस्त कठिनाइयों का मूल यह शकुनि है। इसे हम हस्तिनापुर से निकाल ही क्यों न दें?''

''माता, आपका कथन सत्य है। सब संकटों की जड़ यह शकुनि ही है।'' भीष्म ने कहा, ''लेकिन हम इसे निकाल नहीं सकते। धृतराष्ट्र को यह विचार बिलकुल जँचेगा नहीं। दूसरे, राजा सुबल भी समझेंगे कि उनका अपमान हुआ है। माता, शकुनि की चिन्ता मत कीजिए। कुरु लोग इसका उपाय कर लेंगे।''

कुछ देर चुप रहने के बाद भीष्म ने फिर कहा, ''अब यदि लड़ाई होती है तो वह कोई साधारण लड़ाई नहीं होगी, युद्ध होगा—महायुद्ध! इसमें बहुत-से राजा भाग लेंगे। राजा सुबल तथा कारुल और चेदि के राजा दुर्योधन का पक्ष लेंगे। मथुरा का राजा भी उसी का पक्ष लेगा। पांडवों के पक्ष में सरदार वसुदेव, राजा कुन्तीभोज और द्रुपदराज पांचाल रहेंगे।''

''कुरु सरदारों पर इसका क्या प्रभाव होगा माता? महिलाओं का क्या मत है?'' महामुनि ने पूछा।

''जिन-जिनसे मेरी भेंट हुई है वे तो सभी पांडवों के पक्ष में हैं।'' राजमाता ने कहा। कुछ देर तक वे चुप बैठी रहीं। फिर जैसे मन-ही-मन कह रही हों, ''मैंने तो सपने देखे थे कि मैं कुरुवंश को शक्तिशाली बनाऊँगी लेकिन मैं तो मूर्ख ही निकली। सचमुच ही मैं सपनों पर जी रही थी।''

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"ऐसा न कहो माता!" मुनि ने कहा, "आप गांगेय के लिए शक्ति-स्तम्भ के समान हैं। सभी कुरुगण आपको चाहते हैं, आपका आदर करते हैं। लेकिन हाँ, यह सही है कि यदि युधिष्ठिर का राज्याभिषेक होता है तो शकुनि एक आशंका रहेगा ही।"

"शकुनि क्षुद्र कीड़े के समान है। भले ही वह छोटा है, पर जिस पेड़ में घुसेगा उसे खोखला पर धराशायी किए बगैर नहीं रहेगा। कृष्ण, तुम कोई उपाय बताओ। है कोई उपाय ध्यान में? तू भी हम सभी की तरह कुरुओं की सत्ता से जुड़ा हुआ है।"

"हम एक संघर्ष के कगार पर पहुँच चुके हैं।" महामुनि ने कहा, "इसलिए मेरी स्थिति भी आप लोगों को स्पष्ट हो जानी चाहिए। मैं यदि कुरुओं की सत्ता का समर्थन करता हूँ तो अपने निजी कारणों से करता हूँ।"

"क्या हैं वे कारण? हमें भी तो बताओ!" राजमाता ने कहा।

महामुनि ने द्वार से आ रहे सूर्य के प्रकाश की ओर देखा, फिर कहा, "आपने मुझे उन कारणों को बताने के लिए कहा है जिनसे मैं कुरुओं की सत्ता का समर्थन करता हूँ। मैं उन्हें आपको बताऊँगा, परन्तु आप रुष्ट मत होना। आज तक मैंने इन कारणों को किसी के भी सामने रखा नहीं है। कुरु-सत्ता को मैं इसलिए समर्थन देता हूँ क्योंकि गांगेय में मुझे ब्रह्मतेज और क्षात्रतेज दोनों का समन्वय दिखाई देता है। मैं यह भी आशा करता हूँ कि कुरुवंश में कोई ऐसा चक्रवर्ती राजा होगा जो धर्मव्रती होगा और जिसका नैतिक प्रभाव प्रबलतम होता रहेगा। यदि कुरुओं में ऐसा राजा दिखाई नहीं दिया तो मुझे कोई अन्य राजा खोजना पड़ेगा।"

द्वैपायन थोड़ी देर तक चुप रहे। फिर विनम्र स्वर में बोले, "मुझमें अपूर्णताएँ तो बहुत हैं फिर भी भगवान सूर्यनारायण ने मुझ पर कृपा की है। इतनी शक्ति दी है और इतना प्रभाव दिया है कि धर्म की दृढ़ता बनाए रख सकूँ। आश्रमों की संख्या बढ़ रही है। श्रुति अर्थात् शब्द के प्रति लोगों का विश्वास पुनः सुदृढ़ होने लगा है। असंख्य श्रोत्रिय श्रुति का अभ्यास कर रहे हैं। विद्वान् श्रोत्रियों की एक नई पीढ़ी खड़ी हो गई है। जीवन के जिन मानदंडों में मेरी विश्वास है, जीवन के जिस स्वरूप को मैंने स्वीकार किया है और जिसमें मेरी पूर्ण श्रद्धा है, उसे उन्होंने भी स्वीकार किया है। एक सीमा तक मैंने नीतिमय जीवनयापन की भावना के प्रसार में सहयोग दिया है।"

"लेकिन ऐसा चक्रवर्ती सम्राट हमें मिलेगा कहाँ?" राजमाता ने उसाँस भरते हुए कहा, "मेरा पुत्र आज जीवित होता तो वह जरूर ऐसा हो जाता।" आँखों से बहते आँसुओं को उन्होंने पोंछकर फिर कहा, "मेरी कठिनाइयों को तुम नहीं समझ सकोगे, कृष्ण! अब मेरा अन्त समीप है।"

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"मैं समझ रहा हूँ।" मुनि द्वैपायन ने कहा, "पर इसके कारण मैं संघर्ष से विमुख नहीं हो सकता। माँ, मैं आपका आदर करता हूँ। इसलिए नहीं कि मैं आपका पुत्र हूँ। असल कारण है हस्तिनापुर की जनता पर आपका व्यापक नैतिक प्रभाव। उसी के कारण मैं आपकी पूजा करता हूँ।"

वे रुके। दरवाजे से होकर आ रहे सूर्य के प्रकाश पर दृष्टि गड़ाए रहे। फिर एक बार उनके स्वर में नम्रता आई। बोले, "लेकिन अब परिस्थिति अवश्य बदल जाएगी। मुझे स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि आनेवाले समय में हस्तिनापुर दो गुटों में बँट जाएगा। धर्म का लोप हो जाएगा। आपसी द्वेष रक्तपात को जन्म देगा और इस सबमें देव जीतेगा कि दानव, कौन कह सकता है?"

"कृष्ण, आज तू अत्यन्त निराश स्वर में बोल रहा है।" माता ने कहा, "सामान्यतया तो तू भविष्य के प्रति आशावान रहता है।"

"माता, कुरुओं में यदि आपसी विग्रह हुआ तो सारे संसार के टुकड़े-टुकड़े हो जाएँगे।" द्वैपायन ने कहा।

"क्या इसे रोकने का कोई उपाय नहीं है, द्वैपायन?" भीष्म ने पूछा।

"क्षात्रतेज और ब्रह्मतेज, दोनों से युक्त कोई सम्राट हस्तिनापुर के राज-सिंहासन पर बैठे तो सारे संसार पर उसका सही प्रभाव पड़ सकता है।" महामुनि ने उत्तर दिया।

वे कुछ पल तक चुप रहे, फिर बोले, "शकुनि तो भगवान शंकर के कंठ में फँसे विष के समान है—न निगला जा सकता है और न थूका जा सकता है।"

राजमाता ने धीमी आवाज में कहा, "तुम्हारी बात सही है। हम वास्तव में एक गम्भीर संकट के कगार पर पहुँच गए हैं।"

"माता, हमें इन संकटों का सामना करना होगा। सम्भव है ईश्वर हमें अपने संकटों से निपटने का कोई रास्ता बताए।"

राजमाता ने हताश होकर हाथ ऊँचा किया और कहा, "लेकिन मैं षड्यन्त्रों के इस वातावरण में कैसे जीवित रहूँगी? न तो मैं किसी का पक्ष ले सकती हूँ, न किसी का विश्वास प्राप्त कर सकती हूँ और न धर्म की स्थापना में ही कोई योग कर सकती हूँ।"

"आप यह सब कर सकती हैं। कैसे, सो मैं आपको बताता हूँ।" महामुनि ने कहा, "काशीराज की कन्याओं को लेकर आप पराशर आश्रम में जाकर रहिए। आप जाएँगी तब हस्तिनापुर के लोग आँसू बहाएँगे। ये आँसू उनके और आपके सम्बन्धों को सुदृढ़ बनाएँगे। षड्यन्त्रों की भूमि से आप दूर हो जाएँगी, तब आपका नैतिक प्रभाव भी बढ़ जाएगा और लोगों को यह भी लगेगा कि आपका उनके बीच होना अनिवार्य है। रक्तपात हुआ तो आप अवश्य मूक दर्शक बनी

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

रहेंगी, लेकिन अन्त में जब लोग युद्ध की निरर्थकता समझ लेंगे तब वे शक्ति की प्रेरणा प्राप्त करने भी आपकी ही शरण में आएँगे।''

राजमाता थोड़ी देर सोचती रहीं। फिर बोलीं, ''अच्छी बात है, मैं ऐसा ही करूँगी, कृष्ण।'' और उन्होंने गहरा निःश्वास छोड़ा।

''यदि हस्तिनापुर या किसी अन्य स्थान पर भी धर्म की रक्षा करनेवाला कोई चक्रवर्ती सम्राट पैदा नहीं हो सका तो क्या होगा?'' राजमाता ने पूछा।

''यह स्थिति भी मेरे ध्यान में है। मैं इसको अनदेखी करके नहीं चल रहा हूँ।'' भगवान द्वैपायन ने कहा, ''लेकिन जब तक ईश्वर का बुलावा नहीं आ जाता, तब तक मैं धर्म की सेवा में ही लगा रहूँगा और यदि कुरुओं में कोई चक्रवर्ती पैदा नहीं होता, तो भगवान सूर्य मेरे पगों को उस दिशा में मोड़ देंगे–

''जहाँ अनिष्ट को निर्मूल करके धर्म की प्रतिष्ठा करनेवाला शाश्वत-धर्म-गोप्ता निवास करता होगा। मुझे विश्वास है ऐसा अवश्य होगा।''

❑❑❑

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

राजकमल से प्रकाशित मुंशी-साहित्य

भगवान परशुराम

जय सोमनाथ

लोमहर्षिणी

लोपामुद्रा

तपस्विनी

कृष्णावतार-1 : बंसी की धुन

कृष्णावतार-2 : रुक्मिणीहरण

कृष्णावतार-3 : पाँच पांडव

कृष्णावतार-4 : महाबली भीम

कृष्णावतार-5 : सत्यभामा

कृष्णावतार-6 : महामुनि व्यास

कृष्णावतार-7 : युधिष्ठिर

राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली पटना इलाहाबाद कोलकाता

आवरण : बिजन चौधुरी

ISBN : 978-81-7178-111-9

₹ 200

उपन्यास

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection